51 महान आविष्कार

लेखक

राजेन्द्र कुमार राजीव

खारी बावली, दिल्ली -110006

गमावनार गप्त द्वारा पम्तक महल दिल्ली-110006
क लिए प्रकाशित

सहयोगी संस्थान

हिन्द पम्तक भण्डार दिल्ली–110006

बिक्री केन्द्र

- खारी बावली दिल्ली 110006 फान 239314
- गली क्दार नाथ चावडी बाजार दिल्ली-110006 - फान 265403 268292
- 10 B नता जी सभाष मार्ग नई दिल्ली 110002 - फोन 268293

प्रशासनिक कार्यालय

F 2 16 अन्सारी रोड दरयागंज नई दिल्ली 110002
फान 276539 272783 272784

मूल्य

पेपरबैक संस्करण 20/- बीस रुपये
लाइब्रेरी संस्करण 30/- तीस रुपये

प्रथम संस्करण अक्तूबर 1984
दूसरा संस्करण मार्च 1986

फोटो कम्पोजिंग निवेक फोटो कम्पोजिंग सिस्टम्स F 2 16 अन्सारी रोड नई दिल्ली 110002

मुद्रक [illegible] 110032

पुस्तक के बारे मे

आवश्यकता आविष्कार की जननी ह' यह उक्ति शत प्रतिशत सही ह। अतीत काल मे मानव क आविभाव आर विकास क साथ ही आविष्कारा का सिलसिला भी शुरू होता ह। इसा से करीब 100 000 वष पव एक अपक्षाकृत सभ्य मानव जाति, निएण्डरथाल न अपनी रोजमरा की आवश्यक्ताआ म सबसे पहल आवागमन के लिए स्लेज गाडी, पेड काटन आर शिकार के लिए लकडी आर पत्थर क अस्त्र-शस्त्र तथा आग का आविष्कार किया। जल वाहन के रूप मे डागी (छाटी नाव) आर सडक परिवहन क लिए पहिए का क्रातिकारी आविष्कार भी इसी युग मे हुआ।

इस प्रकार मनुष्य विपत्तिया स भरा आदिम जीवन सरल-सुलभ बनाने के लिए अपनी आवश्यकता के अनुरूप यत्रो-उपकरणा का आविष्कार करता रहा।
आज मनष्य ने इतनी तरक्की कर ली ह कि उसक कदम चाद पर भी जा पहुचे ह। ऐसे अतरिक्ष याना आर यत्रा का विकास हा चुका ह जा कराडो मील दूर परिक्रमा कर रहे अन्य ग्रहो की खाजबीन म लग ह आर नियमित रूप म विभिन्न जानकारिया आर चित्र भेज रहे हे।
मनष्य क जीवन म पग-पग पर काम आन वाल ऐस हजारा यत्रा उपकरणो का आविष्कार हो चका ह जिनस उसकी आवश्यकता का हर काय सरल-सुलभ आर आरामदायक हो गया हे। थमामीटर प्रशरकुकर टाइपराइटर टलीफान साईकिल कमरा रल, मोटर हवाइ जहाज, घडी, रेडियो टाजिस्टर, टेलीविजन कम्प्यूटर आदि अनेक ऐस उपयोगी साधन ह जिनका हम अपन जीवन म उपयाग तो करते ह परन्तु व कसे बने, उन्हे किसने बनाया, उनक काय करने का सिद्धान्त क्या ह, उनका आरभिक रूप कसा था आर आधुनिक रूप कस हुआ आदि बातो से अनभिज्ञ ह।
प्रस्तुत पुस्तक म हमन कुछ उन महत्त्वपूण आविष्कारो के बारे मे, जिन्होने समूच मानव जीवन म एक जबदस्त क्रातिकारी परिवतन ला दिया ह, विस्तृत, प्रामाणिक जानकारी दने का प्रयास किया ह। वस ता इस विषय पर कई पुस्तके प्रकाशित हुइ ह परन्तु सही प्रामाणिक जानकारी क अभाव म बच्चा को उचित मागदशन ओर ज्ञान देने म असफल रही ह। हमने इसी अभाव की पति हत उक्त पुस्तक को प्रामाणिक स्रोता, ग्रथो आर लेखो की सहायता लेकर सरल-सुबाध भाषा शली मे प्रस्तुत किया हे। विषय को रोचक बनाने आर ठीक से समझाने के लिए आविष्कारा से सम्बधित अनेक दुलभ चित्र भी दिए हे। हर प्रकार की सावधानी बरतने के बावजूद कुछ आविष्कारको अथवा आविष्कारो की तिथिया-नामा आदि मे थोडा बहुत अतर हो सकता ह। एसी स्थिति म हमने उन्ही नामो अथवा तिथियो को सम्मिलित किया हे जा अधिकाश ग्रथा, लखा मे उल्लिखित ह।
पुस्तक क बार मे हम अपने पाठको की राय आर सुझाव जानने के इच्छुक ह।

—प्रकाशक
—लेखक

पुस्तक महल की एक उद्देश्यपूर्ण योजना

प्रस्तुत पुस्तक 51-महान आविष्कार 'पुस्तक महल' की एक उद्देश्यपूण प्रकाशन योजना के अतर्गत आती है। इस योजना म हम बाल एव किशोरोपयोगी ज्ञान-विज्ञान का ऐमा माहित्य प्रकाशित कर रहे ह जा स्कली-ज्ञान के अतिरिक्त सामान्य ज्ञान-विज्ञान की प्रामाणिक व ज्ञानवद्धक जानकारी उपलब्ध कराता ह। शक्षाणक काल के बाद यह अतिरिक्त ज्ञानाजन ही बच्च क सुखद आर उज्ज्वल भविष्य का आधार बनता ह। इसी अतिरिक्त ज्ञानाजन द्वारा बच्च का बाद्धिक स्तर ऊचा हाता ह आर उमकी कल्पना तथा विचार शक्ति का तजी से विकास होता ह। वह जीवन के हर अवमर पर कामयाब होता ह जस अनेक प्रतिस्पधाओ म, वाद-विवाद म, निबध लखन मे, भाषण म इटरव्यू म तथा विचार गोष्ठियो मे।

इस योजना के अतर्गत निम्नलिखित बेस्ट सेलर्स हम पहले प्रकाशित कर चुके है –

1 चिल्ड्रम नॉलिज बक (1 स 5 भाग प्रकाशित छठा भाग प्रकाश्य)
2 101—साइम गेम्स
3 101—मजिक टिक्स
4 हम जीव-जन्तु
5 गिनम बुक ऑफ वर्ल्ड रिकाडम (चार भाग)
6 51—महान आविष्कार

योजना के आगामी चरण मे निम्नलिखित पुस्तके तैयारी मे है –

1 विश्व क महान धर्म, मत आर सम्प्रदाय
2 51—महान खाजे
3 विश्व के 51 महान युद्ध
4 101—साइम के प्रयाग
5 विश्व क महान साहमिक अभियान
6 विश्व क अजूबे रहस्य
7 1001—विश्व क अनूठ तथ्य आर आकडे (फेक्ट्स)
8 विश्व क महान विचारक आर उनक विचार

इस योजना की सभी पुस्तक हमारे सपादक मडल की कडी दखरेख म प्रामाणिक जानकारी के साथ तैयार की जाती ह। उन्ह अधिक स अधिक सरल-सुबोध बनान का प्रयाम किया जाता ह। उत्कृष्ट क्वालिटी क लिए उत्तम छपाइ, उत्तम कागज आर बाइंडिग का विशष ध्यान रखा जाता ह। मूल्य की दृष्टि स अन्यान्य उपलब्ध पुस्तकों की अपक्षा य पुस्तकें उचित मल्य पर बची जाती हे।

सपादक मडल के सतत प्रयाम आर पाठका क लगातार प्राप्त हाने वाल सुझावा क अनुरूप इनम सशाधन एव परिवधन भी हाता रहता है।

हम अपनी हर एक पुस्तक का एक प्रोजक्ट क रूप म कामयाब बनान म सदव गतिशील और प्रयत्नशील रहत ह।

—प्रकाशक

प्रकाश और किरणें (Light and Rays)

संचार (Communications)

परिवहन (Transport)

अस्त्र-शस्त्र (Weapons)

चिकित्सा (Medicine)

विविध (Miscellaneous)

1

प्रकाश और किरणें

दूरदर्शी का आविष्कार

दूरदर्शी या दूरबीन का आविष्कार सन् 1608 मे नीदरलेड के हैंस लिपरशी नामक एक ऐनकसाज ने किया था। यद्यपि यह दूरदर्शी बहुत ही साधारण किस्म का था परतु इसे ससार का प्रथम दूरदर्शी कहा जा सकता है।

इस दूरदर्शी का आविष्कार किसी विशेष प्रयास के फलस्वरूप नही हुआ, बल्कि यह एक आकस्मिक घटना का परिणाम था। घटना इस प्रकार है कि एक दिन हैंस की एनक की दूकान पर एक युवक आया। उसने सयोग से काच के दो लेसो को एक-दूसरे के समानातर रखकर आगे-पीछे किया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि इस तरह करने से दूर की वस्तुए बहुत ही पास दिख रही हैं। उसने यह बात हैंस को बतायी। हैंस भी इस बात से चकित रह गया। बाद मे उसने दो लेसो के सयोजन से एक छोटी-सी दूरबीन बनाई। जो भी ग्राहक उसके पास आता, वह उसे अपनी बनाई हुई दूरबीन का चमत्कार अवश्य दिखाता।

उन्ही दिनो इटली के वैज्ञानिक गैलिलियो भी दूरदर्शी बनाने मे लगे हुए थे। उन्होने पहला सफल दूरदर्शी सन् 1609 मे बनाया। इसके बाद उन्होने इसमे कई सुधार किए। अत मे वह एक ऐसी दूरबीन बनाने मे सफल हो गए, जिससे चद्रमा के पर्वत और सूर्य के धब्बे आसानी से देखे जा सकते थे। सूर्य, चद्रमा और तारो को इतने पास दिखाने वाला यह विश्व का पहला दूरदर्शी था।

अपने दूरदर्शी की सहायता से गैलिलियो ने कई खोजे की। उन्होने इस दूरदर्शी से बृहस्पति के उपग्रहो तथा शनि के वलयो का पता लगाया। उन्होने यह भी देखा कि हमारी आकाश-गगा अरबो दूरवर्ती तारो का समूह है, चद्रमा पर अनेक पर्वत और गड्ढे हें तथा सूर्य पर बहुत से धब्बे हैं।

गैलिलियो ने लेसो के समायोजन से जिस प्रकार की दूरबीने बनाई थीं, वे अपवर्तक दूरबीन (Refractor Telescope) कहलाती हैं।
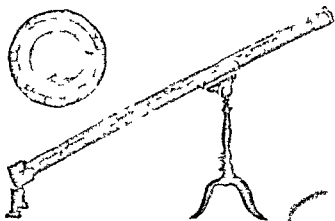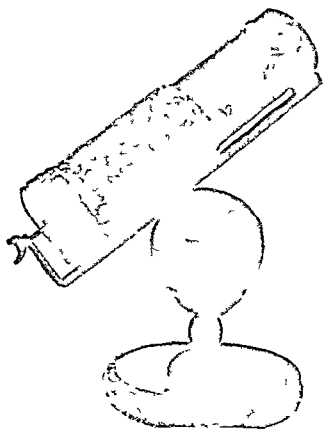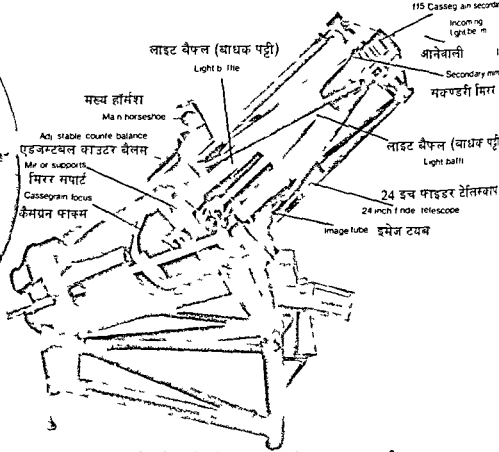
आधुनिक टेलिस्कोप के आंतरिक समायोजन का एक सरल चित्र

इसके बाद अंग्रेज वैज्ञानिक न्यूटन ने एक दूसरे प्रकार की दूरबीन का आविष्कार किया, जिसे परावर्तक दूरबीन (Reflector Telescope) कहते हैं। इसमे लेंसो के साथ दर्पणो का भी इस्तेमाल किया गया था। इसके पश्चात् एन कैसीग्रेन ने उत्तम प्रकार के परावर्ती दूरदर्शियो का विकास किया जो बहुत ही शक्तिशाली थे। इनमे लेंसो के साथ अवतल और उत्तल दर्पणो का प्रयोग होता था। इस किस्म की एक बडी दूरबीन अमरीका की कैलिफोर्निया मे स्थित वेधशाला मे लगी है। इस दूरबीन का सबसे बडा दर्पण लगभग 200 इंच व्यास का है और इसका भार 15 टन है। पूरी दूरबीन का वजन लगभग 500 टन है। यह अस्सी लाख डालर की लागत से बीस वर्षो में बनकर तैयार हुई थी।

विश्व की सबसे बडी परावर्तक दूरबीन रूस मे पास्तुखोव पर्वत पर 2080 मीटर की ऊंचाई पर लगी हुई है। इसके लेंस का व्यास छ मीटर (19 8 फुट) है। इसका वजन लगभग 70 टन है। इस दूरबीन के पूरे उपकरणो का कुल भार 827 टन है। यह दूरबीन इतनी शक्तिशाली है कि 15000 मील दूर जल रही एक मामूली-सी मोमबत्ती से आने वाले प्रकाश का भी पता लगा सकती है। एक अन्य इससे भी बडी दूरबीन का निर्माण कार्य चल रहा है, जिसका परावर्तक लेंस 10 मीटर (लगभग 32 फुट) का होगा।

विश्व की सबसे बडी अपवर्तक दूरबीन (Reflecting Telescope) अमेरिका की यर्कीज वेधशाला मे सन् 1897 मे लगायी गयी। इसकी लम्बाई 18 90 मी तथा व्यास 101 6 से मी है।

विश्व की सबसे बडी डिश वाली रेडियो दूरबीन पोर्टो रिको के आरेसियो नामक बंदरगाह मे एक पहाडी पर लगायी गयी है। इसके निर्माण पर लगभग नौ करोड रुपया खर्च हुआ था। इसकी डिश का व्यास 1000 फुट है। यह दूरबीन 1500 करोड प्रकाश वर्ष तक की दूरी से आने वाली रेडियो-तरंगो को ग्रहण कर सकती है।

विश्व का सबसे बडा सौर (Solar) टेलिस्कोप अमरिका के टैक्सन नगर के पास किट पीक नेशनल ऑब्जर्वेटरी मे लगा है। इसके दर्पण का व्यास 80 इंच है। इसका दर्पण इस प्रकार निरंतर घूमता रहता है कि सूरज हमेशा इसके सामने ही रहता है।

एक आधुनिक इलक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप

साधारण माइक्रोस्कोप म एक उत्तल लस होता ह। मिश्रित यानी कम्पाउड माइक्रास्काप म कम स कम दा या चार लसा का समायोजन होता ह। इन लेसो की फाकस लथ आर वधन-सामथ्य भी अलग-अलग हाती ह। इनम स जिस वधन-सामथ्य वाल लस की जरूरत हाती है, उस आखो क सामन कर लिया जाता ह।

सामान्य माइक्रास्काप म दा लसा की व्यवस्था हाती ह जिसमे स एक का 'आब्जक्टिव' और दूसरे को 'आइपीस' कहते है। 'आइपीस' वाला भाग आख के पास हाता ह। जिस वस्तु को देखना हाता है, उसे काच की दो पारदर्शक पट्टिया के मध्य रखकर 'आब्जेक्टिव' वाले सिरे की ओर रखा जाता ह। काच की पट्टियो का स्लाइड कहते ह। बढिया किस्म के माइक्रास्कोप म कडसर की भी व्यवस्था होती ह। यह कडेसर परीक्षण की जा रही वस्तु क ऊपर लाइट को केंद्रित (Focus) कर देता ह।

आरम्भ के माइक्रोस्कोपो म एक समस्या थी। लसा म स जब वस्तु को दखा जाता था तो उसके किनारा पर रग भी दिखायी पडत थे, अथात् इन सूक्ष्मदर्शियो मे रग दाष था। वस्तु क किनारे पर रगा की आभा आ जान से वस्तु का परीक्षण ठीक से नही हो पाता था। सन 1930 म जोजफ जक्सन लिस्टर नामक एक अग्रेज न जा आखा का विशपज्ञ था, एक ऐसे माइक्रोस्काप का निमाण किया, जिसमे वस्तु पर रगो की आभा नही आती थी। इस 'एक्रोमटिक' माइक्रोस्कोप कहत ह।

भिन्न–भिन्न वस्तुआ अथवा जीवाणुओ को देखने या परीक्षण करने के लिए अलग-अलग किस्म के माइक्रोस्कापो का उपयोग किया जाता ह। उदाहरण क लिए रिसर्च माइक्रोस्कोप, रसायन माइक्रास्कोप, प्रोजेक्टिग माइक्रास्कोप आदि। इनमे भी अलग-अलग आवधन क्षमता के माइक्रास्कोप हात ह।

दृश्य-प्रकाश (Visible light) माइक्रोस्काप की अपक्षा परा-बैगनी प्रकाश की व्यवस्था वाले माइक्रोस्काप अधिक शक्तिशाली होते ह। इनस वस्तु का 5 000 गुना बडा करके देखा जा सकता हे।

सन् 1923 मे वान वारिस ओर रस्का नाम क वैज्ञानिको ने इलेक्टॉन माइक्रोस्कोप का आविष्कार किया। इसम प्रकाश-पुज (Light beam) की जगह इलेक्टॉन-पुज का उपयोग किया जाता हे। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप म काच के लसा की जरूरत नही होती, वल्कि इनम विद्युतचुम्बकीय लस हात है, जो तार की कुडलिया म विद्युत-धारा गुजारकर निमित्त किए जाते हैं। इलेक्टॉन माइक्रास्काप की आवधन क्षमता10 0000 तक हाती है अथात इनम वस्तु एक लाख गुना वडी दिखाई दती है।

एक्सरे का आविष्कार
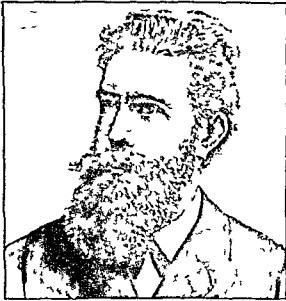
एक्स रे के आविष्कारक विल्हेम कॉनराड राजन

एक्सरे मशीन द्वारा चद मिनटो मे ही शरीर की हड्डियो की टूटफूट या दूसरे किसी रोग का चित्रण हमारे सामने आ जाता है। उस समय हम यह सोच भी नही पाते कि शरीर के अदर झाकनेवाले चिकित्सा-विज्ञान के इस अभिन्न अग का आविष्कार किसने व किस प्रकार किया था। इसका आविष्कार चिकित्सा विज्ञान मे एक क्रांति के रूप मे हुआ। इसकी कहानी किसी अन्य वैज्ञानिक आविष्कार से कम रोचक नही है।

इसके आविष्कार का प्रारम्भ सन् 1895 ई के दिसम्बर महीने मे हुआ। इन किरणो का आविष्कार जर्मनी के एक पचास वर्षीय वैज्ञानिक विल्हेम रॉन्जेन ने किया था। उन्होने इस आविष्कार का प्रदर्शन वार्जवार्ग के भौतिक और चिकित्सा-विज्ञान के कुछ वैज्ञानिकों के सामने किया।

विल्हेम रॉन्जेन का जन्म जर्मनी मे पुसिया केलेनय नामक स्थान पर सन् 1845 मे हुआ था। उनके पिता एक कृषक थे। उनकी मा डच महिला थी। रॉन्जेन की प्रारम्भिक शिक्षा हालैंड तथा उच्च शिक्षा स्विट्जरलेंड के जूरिख विश्वविद्यालय मे हुई। जूरिख विश्वविद्यालय म उन्हे डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया गया। अव वे वार्जवार्ग वापस आ गए थे। उन्होने कइ विश्वविद्यालयो मे अध्यापन कार्य किया। 1885 ई मे उनकी नियुक्ति वार्जवार्ग विश्वविद्यालय मे भौतिकशास्त्र के अध्यापक पद पर की गई।

इन्ही दिनो एक अग्रेज वैज्ञानिक सर विलियम क्रुक्स माइकेल फैराडे के गैसो मे विद्युत विसर्जन के प्रयोगो मे और अधिक सुधार लाने के प्रयत्न कर रहे थे। फैराडे तरल तथा ठोस पदार्थों और गेस जैसी प्रत्येक चीज पर विद्युत के प्रभावो का प्रयोग कर चुके थे। अब वे वायुशून्य पात्र मे विद्युत का प्रभाव देखना चाहते थे, लेकिन वायुशून्य करने के लिए कोई अच्छा पात्र न मिल सकने के कारण उनके प्रयोग अधूरे रह गए।

क्रुक्स ने काच की एक नली लेकर उसमे दो तार प्रविष्ट कराए तथा पम्प द्वारा वायुशून्य कर दिया। उन्होने दोनो तारो के बीच उच्च विभवातर की विद्युत-धारा लगाई। इससे नली के अदर लगे तार के ऋणात्मक छोर से एक प्रकार की किरणे निकली। इन्हे
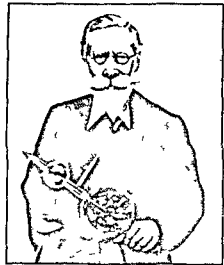
विलियम क्रुक्स (1832 1919) अपनी कैथोड ट्यूब के साथ
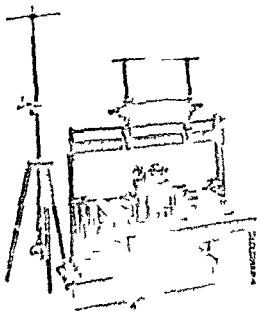
एक्स रे की एक आरंभिक मशीन

कैथाड किरणो का नाम दिया गया। नली क अदर बनी एक छोटी स चरखी को कथाड किरणा द्वारा घमाया जा सकता था तथा एक चुबक द्वारा इनकी दिशा म परिवतन लाया जा सकता था।

यह उपकरण 'क्रक्स की टयूब' क नाम स प्रसिद्ध ह। कथाड किरण काच पर पडन पर एक हर रग की रोशनी उत्पन्न करती थी इस फ्लोरसन्स कहा ह। क्रक्स द्वारा बनाए गए इसी उपकरण को आज हम आधुनिक दूरदर्शन यत्र म लगाए जान वाल छविट्यूब (पिक्चर टयूब) क रूप म दखत ह।

प्रोफसर रान्जन अपनी प्रयोगशाला म क्रक्स द्वारा निर्मित इस टयूब पर कुछ प्रयोग कर रह थे। उन्हान टयूब को एक अधर कमर म चालू किया। उन्हान दखा कि इस टयूब क किनार स कुछ एस विकिरण निकल रह ह, जो बरियम प्लाटिनट लग कागज पर पडत ह। तो प्रतिदीप्ति पैदा करत ह। इन विकिरणो को उन्हे उस समय कुछ ज्ञान न था इसलिए इनका नाम एक्स किरण रख दिया। एक्स का अर्थ अज्ञात होता ह। प्रयोगो क दौरान उन्ह इन किरणो क कुछ विशष गुण दिखाई दिए। उन्हान दखा कि य किरण कागज शीशा रबड तथा अन्य अनक धातुओ की पतली चादरो को भद सकती ह। उन्हान फोटो फिल्म और कागज म अपना हाथ लपटा तथा उस सामन रखकर मशीन चला
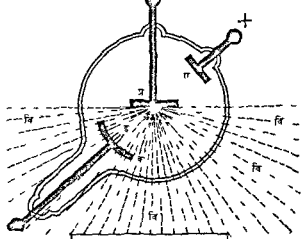
एक्स रे टयूब की प्रक्रिया

दी। बाद मे फिल्म को डेवलप करने पर चित्र म अपन हाथो की हडिडयो की तस्वीर दिखाइ दी। इस तरह उन्हान दुनिया की सबस प्रथम एक्सरे मशीन का आविष्कार किया।

एक्स-किरणो के आविष्कारक रॉन्जन और उनक दो अन्य साथी जिन्होन इसे विकसित करने म महत्त्वपूर्ण योग दिया, इनक घातक प्रभाव से बडी दयनीय स्थिति म उनकी मत्यु हुइ। रॉन्जन क अलावा इनम एक गाइडो हाल्जकनस्ट और डॉ काइजर थे, जो जीवनदायी किरणो क घातक प्रभाव स मौत क शिकार हुए।

एक्स-किरणो स कवल शरीर की हड्डियो क चित्र लने का काम ही नही लिया जाता, बल्कि कइ रोगो जस कसर का इलाज भी इनस होता ह। इसक अलावा हवाइ जहाज क इजन वाल बयरिग रबर क टायर तथा रेडियो वाल्वो क निर्माण म भी एक्स-किरणो का प्रयोग किया जाता ह। अपराधियो द्वारा शरीर क किसी हिस्स म छुपायी गयी मूल्यवान धातु या हीरे-मोती का पता भी एक्सरे द्वारा चल जाता ह।

एक्स-किरण टयूब क आतरिक भाग म कथाड का आकार अवतल (concave) दर्पण क समान होता ह। इसस इलक्ट्रान बीम शक्वीय (conical) हो जाती ह और उसका शिखर प्लेटिनम प्रति कथाड पर प्रहार करता ह। इस प्रकार एक्स-किरण की उत्पत्ति होती ह। य किरण सभी दिशाओ म काच क आरपार होती हुइ सामन रखी वस्तुओ म सचरण करती ह। एक्स-किरण क मध्य किसी वस्तु को रखन पर उस वस्तु का छाया-चित्र उस प्रतिदीप्त पर्दे पर बन जाता ह।

मेसर और लेसर किरणों का आविष्कार

मेसर ओर लेसर किरणो की खोज अमेरिका क कोलंबिया यूनिवर्सिटी क डा चार्ल्स टाउन्स तथा बल प्रयोगशाला के डॉ आर्थर शलाव ने की। इसका प्रयोगात्मक माडल सबस पहल कलीफार्निया की एक प्रयोगशाला मे कार्यरत डॉ टी एच ममन ने किया।

लेसर से पहले मेसर-किरण की खोज हुइ। डॉ टाउन्स काफी समय से इस विषय पर विचार कर रहे थे कि प्रकाश-किरणा को अति लघ तरगा म परिवर्तित कर कला-सम्बद्ध (Coherent) करना सभव हाना चाहिए, जैसी कि रेडियो-तरग अनुशासित आर प्रवर्धित की जा सकती ह। वे इस काय मे लग गए आर तीन वर्ष के कड़े परिश्रम के बाद उन्हे इसमे सफलता मिली। उन्होने अपन साथिया के साथ मिलकर जिस पद्धति से प्रयोग कर तरगा का कला-सबद्ध किया, उसके लिए एक नया नाम दिया गया। यह नाम था 'माइक्रोवेव एम्पिलफिकशन बाइ-स्टिम्युलटेड एमिशन ऑफ रेडिएशन । इस प्रकार इस नाम के शब्दो के प्रथम अक्षरो का लकर इसका संक्षिप्त नाम 'मेसर' बना। सभी प्रकार के पदार्थों पर प्रयाग करने के बाद टाउन्स को एक पेंसिल जितनी मोटी सश्लिष्ट माणिक्य (रूबी) छड द्वारा पहली मेसर बनाने मे सफलता प्राप्त हुइ।

उन्हान माणिक्य को सबसे पहले परम शून्य (—273°) तक ठडा किया। इस तापक्रम पर विद्युत प्रतिरोधकता खत्म हो जाती ह। उसक बाद इस छड पर सूक्ष्म-तरग डाली गयी। उसी समय लाखो परमाणु न्यूनतम से अधिकतम ऊर्जा के स्तर तक जा पहुचे। उसके बाद सूक्ष्म-तरगो की आवृत्ति (Frequency) म परिवतन किया गया, जिसस परमाण अचानक न्यूनतम स्तर तक पहुच गए। इसस सम्प्रेरक-तरगो की आवृत्ति पर ही फोटॉन का उत्सर्जन हाने लगता ह। हर फोटॉन दूसरे परमाणुओ को आकर्षित कर सम्प्रेरित करता ह ओर इस तरह प्रत्याशित उत्सर्जन शृखला प्रक्रिया शुरू हो जाती ह ओर परमाणुओ के अवघात ऊर्जा के बहुत ही निचले स्तर पर जा पहुचते हें। परिणामस्वरूप बहुत तेज विद्युत-चुम्बकीय सकेत उत्पन्न हात हें। इन्ही को मसर कहते हें।

इसके बाद टाउन्स के एक अन्य सहयागी भोतिक शास्त्री रिचड गॉडन गुल्ड न 'प्रकाशकीय मेसर' के विकास पर आर परीक्षण किए जो लेसर' की खोज मे
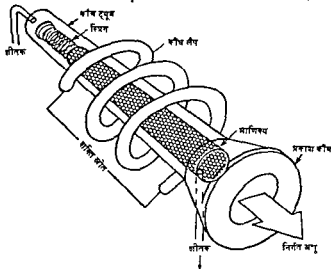
प्रथम निर्मित माणिक्य मसर का एक रेखाचित्र
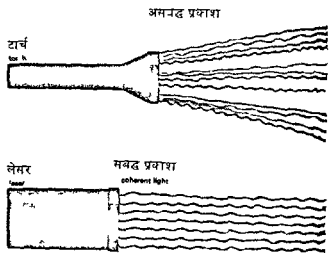
टार्च का प्रकाश कला सबद्ध नही होता जबकि लसर म उत्पन्न प्रकाश कला सबद्ध हाता है
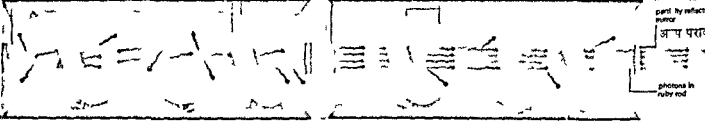
रूबी रॉड में फोटोन पम्प करना

रूबी लेसर की प्रक्रिया

पहला कदम थे। गुल्ड ने अपनी विकसित प्रणाली को लिख भी लिया था और उसका नाम 'लाइट एम्प्लिफिकेशन बाइ स्टिम्युलेटेड एमिशन ऑफ रेडियेशन रखा जिसका संक्षिप्त नाम 'लेसर' था। लेकिन टी एच मेमन ने सन् 1960 में गुप्त रूप से लेसर का सबसे पहले बनाने का श्रेय प्राप्त किया।

मेसर की ही तरह लेसर के प्रवर्धन का माध्यम भी संश्लिष्ट माणिक्य की शलाका थी, जो लगभग एक सिगरेट के बराबर थी। इसके दोनो सिरे एकदम चिकने सपाट थे, जिन्हे दर्पण बनाने के लिए चादी का लेप कर दिया गया था। एक सिरे को कम लेप लगाकर अर्ध-पारदर्शक बनाया गया था। इस शलाका का एक शक्तिशाली कुडलाकार जीनोन फ्लैशलेम्प मे लपेटा गया था। जब प्रकाश का छोटा स्पद माणिक्य मे पम्प किया गया तो अर्ध-पारदर्शक सिरे से गहरे लाल रग का चमकीला प्रकाश-पुज (Light Beam) उत्पन्न हुआ। इस प्रकाश किरण मे ऊर्जा का घनत्व बहुत अधिक था।

आजकल अन्य पदार्थों से भी लेसर-किरण प्राप्त होने लगी है, जो इतनी शक्तिशाली साबित हुई है कि पृथ्वी के कठोर से कठोर पदार्थ को भी काट सकती हैं या वाष्पित कर सकती हैं। 1962 मे लेसर किरण द्वारा चद्रमा का एक छोटा-सा क्षेत्र प्रकाशित किया गया था और चद्रमा की सही दूरी मापी गयी थी। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया कि लेसर-बीम को आकाश में नापने के फीते की तरह भी इस्तेमाल किया जा सकता

लेसर की महीन बीम से सिगरेट जलाने की क्रिया

लेसर आयधों का यद्ध मे प्रयाग
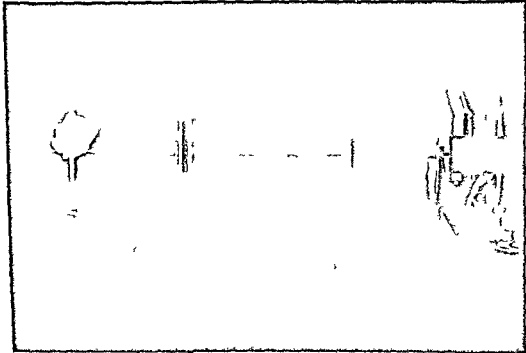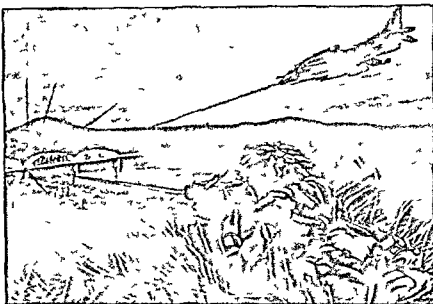
है। साथ ही सटेलाइट ओर पृथ्वी के बीच लेसर-किरण कमजार सकेता के सचरण मे भी काम आ सकती है। उन पर नियत्रण भी किया जा सकता है और उन्हे निर्देशित भी किया जा सकता हे।

लेसर को तीन वर्गो मे बाटा जा सकता है -

पहले वर्ग मे रूबी, याग, निओडोमियम ग्लास आदि ठोस पदार्थ आते हे। दूसरे मे, गैसीय पदार्थ ओर तीसरे मे अर्धचालक आते है। गैसो मे हीलियम, निआन और कार्बनडाइआक्साइड मुख्य हैं तथा अर्धचालको मे गैलियम आर्सेनाइड से लेसर किरण प्राप्त की जाती है।

कार्बन डाइआक्साइड से उत्पन्न लेसर-किरणो की लबाई कम होती है, लेकिन ये अधिक शक्तिशाली होती हे। ये जिस पदार्थ पर डाली जाती हैं, उसे बहुत गर्म कर देती हे। आशा है वर्तमान युद्धकला मे कार्बन डाइआक्साइड से उत्पन्न लेसर ही 'मृत्यु-किरण' के रूप मे कहर ढाएगी।

एक विशेष प्रकार की लेसर पिस्तौल से आप बातचीत कर सकते है। इस पिस्तौल से एक पतला-सा प्रकाश पुज निकलता हे, जो आपकी बातचीत द्वारा माइक्रोफोन की मदद से अधिमिश्रित होता ह। फिर रिसीवर द्वारा यह पुज (बीम) सुनने लायक ध्वनि मे बदल जाता है।

लेसर का उपयोग उद्योग-धधो मे भी होने लगा है। लेसर-किरण का उपयोग एक ड्रिल के रूप मे किया जाता है। यह इस्पात को काटने या छेद करने के काम मे आती है। यह हीरे तक मे छेद कर डालती हे। खदान खोदने और सुरग बनाने मे भी लेसर को पूर्णतया सक्षम पाया गया है।

चिकित्सा क्षेत्र मे भी लेसर किरण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। लेसर की एक बारीक किरण आख के रेटिना के आपरेशन तक मे प्रयुक्त की जा रही है। चीर-फाड के लिए भी लेसर-किरण का चिकित्सक उपयोग करने लगे हे। भूकम्प का पूवानुमान लेसर से सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

लेसर और कम्प्यूटर मे आपसी तालमेल वैठाकर बहुत से कार्य किए जा रहे हैं, जिसमे सचार व्यवस्था एक है।

लेसर का सबसे ज्यादा-चमत्कारी उपयोग फोटोग्राफी मे हो रहा हे। लेसर द्वारा फोटोग्राफी की इस पद्धति को होलोग्राफी नाम दिया गया है।
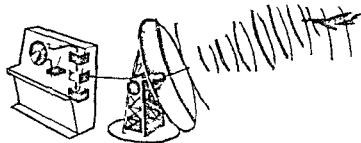
2
संचार
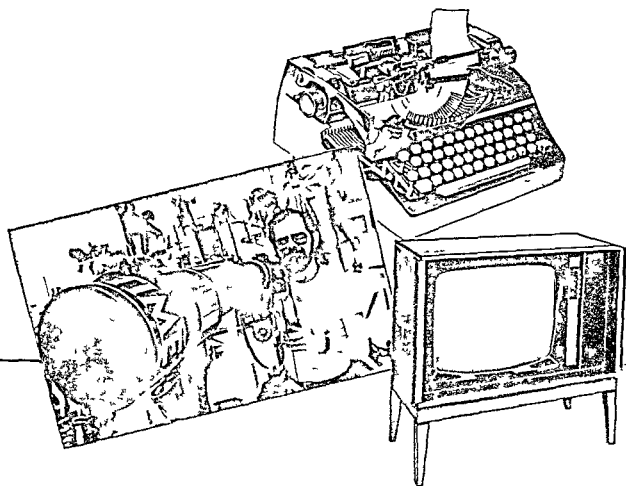
मुद्रण का आविष्कार

कागज और मुद्रण-कला का आविष्कार सबसे पहले चीन मे हुआ था। ससार की सबसे पहली मुद्रित पुस्तक लकडी के ठप्पो से छापी गई थी। पुस्तक का नाम था—'हिराका सूत्र'। यह पुस्तक 838 ई मे छपी। बाद मे देखा गया कि लकडी के ठप्पे नर्म होने की वजह से जल्दी खराब हो जाते थे। अत लोगो का ध्यान धातु के ठप्पे बनाने की ओर गया, लेकिन ठोस ठप्पे विकसित करने मे लगभग 400 वर्ष लग गए।

तेरहवी शताब्दी मे चीन के एक व्यक्ति ने जिसका नाम पी शेग था—सबसे पहले सख्त मिट्टी और धातु के टाइप बनाने मे सफलता प्राप्त की। 1314 ई मे वाग चुग नामक एक अन्य चीनी ने ठोस, सख्त लकडी के टाइपो का निर्माण किया।

इसके बाद 1319 मे कोरिया के एक राजा ने धातु के टाइप ढालने का एक कारखाना लगवाया। इस कारखाने मे कासे के टाइप बनाए गए। इन कासे के टाइपो से 1409 ई मे एक पुस्तक प्रकाशित की गयी।

पद्रहवी शताब्दी के लगभग मुद्रण-कला की यह विकसित पद्धति चीन से यूरोप के देशो मे फैलनी शुरू हुई। पद्रहवी शताब्दी के अत तक यूरोप के अनेक देशो ने विभिन्न व्यक्तियो के प्रयासा से अपने-अपने ढग के मुद्रणालयो की स्थापना की। इन व्यक्तियो मे हालेंड के लारेस जेनसन कोस्टर और जर्मनी के गुटेनबर्ग का योगदान उल्लेखनीय है।

यूरोप मे मुद्रण उद्योग के सौ वर्ष के भीतर ही सन् 1556 मे मुद्रण की मशीने भारत मे पहुचने लगी। भारत मे पहला छापाखाना सयोग से ही पहुचा। हुआ यो कि एक ईसाई पादरी एक छापाखाना अबीसीनिया ले जा रहा था, जब वह गोआ के तट पर पहुचा तो वहा उसकी अकस्मात मत्यु हो गयी और वह छापाखाना भारत मे

जोहास गटेनबर्ग
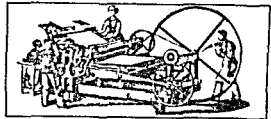
आरंभिक हैंड प्रेस
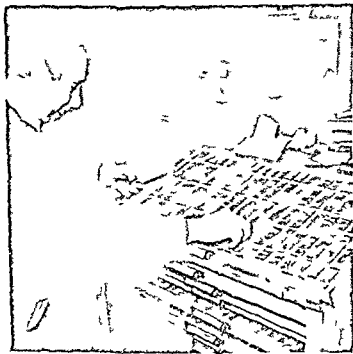
हाथ स कम्पाजग

ही रह गया। इस प्रकार भारत म पहल छापेखान की स्थापना हुइ।

वणमाला क प्रत्यक अक्षर का अलग-अलग टाइप एक सी ऊचाइ का बनाना आर उन्ह आपस म जाडकर शब्दा आर वाक्या की पक्तिया बनाने क सुदृढ तरीके का विचार जमनी क गटनवग क दिमाग म ही आया आर उसन इस कायरूप म परिवर्तित करन क लिए छाट-बड अक्षरा के अलग-अलग साचे बनाए। इसके लिए गटनबग का एक विशष वणमाला की रचना करनी पडी, जा ढलाइ क लिए उपयुक्त हान क साथ-साथ जाडकर एक स आकार, अतर आर ऊचाइ म पक्तिबद्ध की जा सक। कम्पाज किए गए मैटर पर एक समान स्याही पातन क लिए उन्हान कइ नयी युक्तिया निकाली। जरूरत क मुताबिक उचित दबाव डालन वाली हाथ से चालित एक प्रस मशीन भी उन्होंने बनायी। अपने प्रस म उन्हान सबसे पहल बाइबिल की छपाइ का काम सभाला। यह पुस्तक 1282 पृष्ठ की थी। उस समय क साधना क अनुसार यह एक बहुत बडा काय था।

जमनी क बाद इटली और फ्रास म मुद्रण-उद्योग का विकास हुआ और बहतर किस्म क प्रसा की स्थापना हुइ। इसक बाद इग्लैंड ने भी इस ओर कदम बढाया। इग्लड के विलियम कैक्स्टन नामक व्यक्ति ने हामर क महाकाव्य 'इलियड' का अग्रेजी म अनुवाद छापन का काय किया। अपने जीवन के 70 वर्ष पूरे हाने तक उसन 80 महत्त्वपूण पुस्तका का प्रकाशन किया।

पुस्तक समाचार-पत्र और प्रचार-सामग्री सभ्य जीवन क अभिन्न अग बन गए। परतु गुटेनबग के समय स लकर लगभग साढे तीन शताब्दी तक मुद्रण की तकनीक म काई विशेष सुधार नही आया। टाइप क अक्षर हाथ से ही कम्पोज किए जाते थे और छपाइ की मशीन भी हाथ स ही चलायी जाती थी।

सन 1812 क लगभग जमनी के एक मुद्रक फ्रेडरिक कोनिग न वाष्पचालित मुद्रण-मशीन का आविष्कार किया। यह व्यक्ति जमनी स इग्लड आकर बस गया था। यहा उसने अपने सहयोगियो के साथ मिलकर 'दि टाइम्स' तथा 'इवनिग मेल' समाचार-पत्रो क लिए दा डबल मशीनें बनान का अनुबध किया और दा वष म मशीन तयार कर दी। कोनिग ने इन मशीनो म मुद्रण की तकनीक मे काफी सुधार किया। उसन टाइप के फर्मे को इस तरह व्यवस्थित किया कि वह स्याही पोतन वाले एक सिलिडर के नीच, आगे-पीछे आसानी स सरक सक। हाथ स अब केवल कागज की शीट को सरकात रहन का काय रह गया था। स्याही-लेपन के लिए भी इन मशीनो मे अलग सिलिडरो की व्यवस्था थी। इस प्रकार काफी श्रम की बचत हो गयी और एक घट मे हजार प्रतिया छापी जान लगी। कोनिग और उसक साथी बायर को इस नयी मशीन क आविष्कार के लिए सम्मान के साथ-साथ मुसीबतें भी झेलनी पडी।

ऐसा समझा जाता है कि पहली भारतीय पुस्तक सन् 1557 म मुद्रित हुई, जिसका नाम था—'दाउ त्रिनाक्रिस्टा'। मलयालम और तमिल भाषा क टाइप पहली बार कोचीन मे सन् 1577 मे एक स्पेनी युवक ल ब्रदर द्वारा ढाल गए। भारत मे हिन्दी और बगला टाइप ढालन का श्रेय पचानन कमकार आर एक भारतीय भाषा प्रमी विदेशी युवक विल्किन्स को है। पचानन लोह का काम करता था। विल्किन्स न टाइप के आकार-प्रकार की योजना बनायी थी। हिन्दी म मुद्रित प्रथम ग्रथ 'मर्मिया', सिहासन बत्तीसी' और 'माधवानल' हैं, जो 1802 म छपे।

मुद्रण मशीनों का आविष्कार

ट्रेडिल प्रिंटिंग मशीन

टेडिल मुद्रण मशीन को सबसे पहले रगल्स नाम के व्यक्ति ने सन् 1830 मे बनाया था। उन्होने अपनी मशीन का नाम 'रगल्स काड-प्रेस' रखा। लेकिन इस मशीन मे एक दोष था। वह चारो तरफ एक-सा दबाव नही डाल पाती थी, जिससे अक्षरो का उभार समान नही होता था। इसके कुछ समय बाद डेजेनर नामक व्यक्ति ने 1860 मे अपेक्षाकृत सुधरी हुई ट्रेडिल मशीन का निर्माण किया। कुछ दोषो के कारण यह भी पूरी तरह सफल सिद्ध नही हुई।

1851 मे जॉर्ज गार्डन ने एक ट्रेडिल मशीन बनायी, परन्तु वे इससे सतुष्ट नही थे। अत वे बराबर इसमे सुधार करते रहे। 1861 मे जाकर उन्होने 'फ्रकलिन गाडन' नामक एक ट्रेडिल मशीन बनायी, जो काफी सफल सिद्ध हुई। इसमे सही दाब और स्याही छोडने की उचित व्यवस्था थी। वर्तमान मे जिन ट्रेडिल मशीनो का प्रयोग हो रहा हे, वे सभी इसी मशीन का परिष्कृत रूप हैं।

ट्रेडिल मशीन मुख्य रूप से रसीदे, पर्चे, ग्रीटिंग कार्ड, वेडिंग कार्ड, इश्तहार आदि छापने के छोटे-मोट कामो के लिए इस्तेमाल की जाती हे।

ट्रेडिल मशीने आमतोर पर दो तरह की होती हैं—हल्की ट्रेडिल मशीन (लाइट ट्रेडिल) और भारी टेडिल (हैवी आर्ट प्लेटन मशीन)। ये कई आकारो मे बनती हैं, उदाहरणार्थ–8″ X 12″, 10″ X 15″, 12″ X 18″ आदि। ट्रेडिल मशीन के निम्न भाग होते हैं —

स्याही का भाग मशीन के सबसे ऊपरी भाग मे स्याही एक आयताकार बॉक्स में भरी होती हे, जहा से बेलन स्याही लेकर दूसरे बेलनो तक पहुचाते हैं।

सिल यहा पर स्याही को बेलनो द्वारा अच्छी तरह पीसा जाता है।

हैंड पावर प्रेस जा अपेक्षाकृत विकसित था
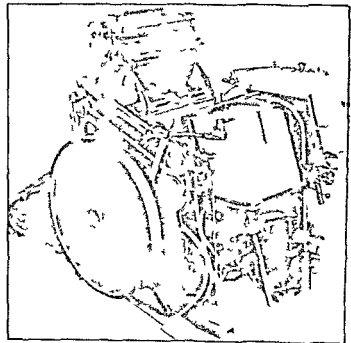
ऑटामैटिक प्लेटन मशीन

प्लेटन इस पर कागज की गद्दी-सी बनी होती हे। इसी पर छपने वाला कागज रखा जाता है।

ग्रिपर्स कागज को पकडने के लिए लम्बे चिमटे प्लेटन के साथ लगे रहते हैं। छाप लेते समय ये कागज से चिपके रहते हैं। प्लेटन के छाप लेकर लौटते समय ये चिमटे हट जाते हैं और कागज निकाल लिया जाता है।

बेलन स्याही के बॉक्स से स्याही निकालना, उसे सिल पर पीसना और फिर मैटर पर लगाने का कार्य बेलनो द्वारा होता है।

थ्री ऑफ लीवर दाहिनी आर पहिए के पास यह लीवर लगा रहता हे, जिसे यदि आगे की ओर कर दिया जाए तो मशीन तो चलती रहती ह, लेकिन कागज पर छाप नही आती। इसका उपयोग तब किया जाता हे, जब कागज किमी कारण से लग नही पाता या मशीन मेन की अपनी अन्य कोइ समस्या होती हे।

सिलिडर मशीन

छपाइ की पहली सिलिडर मशीन को जर्मनी के एक मुद्रक फ्रेडरिक कोनिग ने 1812 मे बनाया था। उनके द्वारा निर्मित मशीन मे टाइप का फमा सामन रखने की व्यवस्था की गयी थी। स्याही लगाने के लिए इस मशीन म वेलनो का प्रयोग भी किया था।

कोनिग ने बहत सूझ-बूझ से मुद्रण की यह सरल विधि निकाली थी। दूसरी मशीन म उन्होने काफी कुछ सुधार किया। टाइप पर स्याही लगाने के लिए इस सुधरी मशीन म चमडे से बने वेलनो का इस्तेमाल किया था।

कुछ दिनो बाद कोनिग की भेट एक जमन इजीनियर आद्र फ्रेडरिक बॉवर से हुइ। बॉवर ने उन्नत किस्म की सिलिडर मशीन के निर्माण मे कोनिग की बडी मदद की।

इम मशीन मे छपन वाला कागज सिलिडर की सहायता स मैटर क पास पहुचता था। एक व्यक्ति कागज को

सिलिडर मशीन क आविष्कारक फ्रेडरिक कोनिग

मैटर पर खिसकाता और छपा हुआ कागज मैटर के ऊपर से उठाता जाता था। इस मशीन को भाप-यत्र की सहायता से चलाया जाता था।

कोनिग लगातार अपनी मशीन मे सुधार करने के प्रयास करते रहे। 1817 मे वे बॉवर के साथ जर्मनी चले गए ओर वहा उन्होने 'कोनिग एड बॉवर' नाम स सिलिडर मशीन बनाने का एक कारखाना स्थापित किया। मुद्रण-जगत मे उस समय कोनिग की सिलिडर मशीनो की धूम मच गई थी।
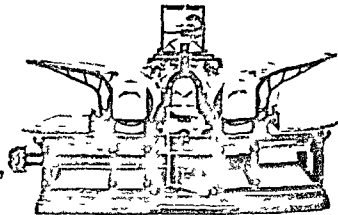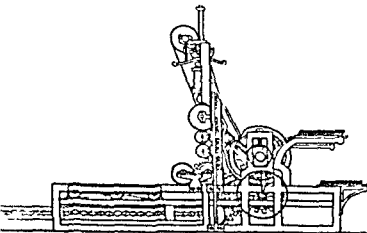
कोनिग द्वारा निर्मित सिलिडर मशीन और वाष्प द्वारा चालित सिलिडर मशीन

लगभग डेढ-पौने दो सो वर्ष पहले की और आज की सिलिंडर मशीनो म बहुत अतर है।

प्लेटन और सिलिंडर मशीन मे काफी अतर है। प्लेटन मशीन मे टाइप-बेड खडी स्थिति मे होता हे और दूसरी ओर के खडे प्लेटन पर कागज लगाया जाता हे। यह कागज वाला प्लेटन फर्मे वाले प्लेटन के पास जाकर दब जाता हे, परतु सिलिंडर मे टाइप-बेड लेटी हुइ स्थिति मे होता है। इस पर कागज लगाया जाता हे और ऊपर से सिलिंडर घूमता हुआ इस पर दाब देता है। कागज एक दूसरे सिलिंडर के माध्यम से मेटर तक पहुचता है।

सिलिंडर मशीने कई तरह की होती ह, जैसे-स्टॉप सिलिंडर मशीन, टू रिवोल्यूशन सिलिंडर मशीन, डाइरेक्ट इंप्रेशन स्टॉप सिलिंडर मशीन और परफेक्ट डिलीवरी मशीन।

सिलिंडर मशीन का पूरा ढाचा मोटे तोर पर दो बाहरी ओर दो भीतरी फ्रेमो पर खडा होता है। इसमे बहुत छोटे-छोटे और जटिल पुर्जे नही होते। जो भीतरी फ्रेम होते हैं, उन पर दातेदार चक्को का रेक लगा रहता है। इन्हे कॉग-रैक कहते हैं। रैक के जरिये दातेदार चक्के आगे-पीछे चलते हैं, जिससे टाइप-बेड भी आगे-पीछे खिसकता रहता है। बाहरी फ्रेमो पर सिलिंडर लगे रहते हैं, जो कॉग-रेक के विपरीत होते हैं। इस बाहरी फ्रेम के साथ स्याही और कागज को डिलीवरी-बोर्ड तक ले जाने वाले फ्लायर का भी सबध रहता है। बाहरी सिलिंडर मे एक ग्रिपर की व्यवस्था भी होती है, जो कागज को उठाकर मैटर तक पहुचाने का कार्य करता है।

मशीन के एक ओर मशीन-मेन कागज लगाता रहता है। वहा फीड-बोर्ड भी लगा रहता है, जहा से स्याही वाला सिलिंडर स्याही प्राप्त कर अन्य बेलनो पर उसकी पिसाई करने के लिए पहुचाता है। जब मशीन-मैन छपने वाले कागज को 'फ्रट ले' के निकट लाता है, तो फ्रट-बोर्ड जरा-सा ऊपर उठ जाता है और सिलिंडर मे लगा ग्रिपर कागज को पकडकर खीच लेता है। ग्रिपर से खिचकर कागज दूसरे सिलिंडर से सट कर मैटर तक पहुच जाता है और मुद्रण कार्य पूरा हो जाता है।

लीथोग्राफी पद्धति

मुद्रण की लीथोग्राफी प्रणाली का आविष्कार जर्मनी के सेनेफेल्डर नामक व्यक्ति ने किया था। इसके आविष्कार के बारे मे एक रोचक घटना है।

सेनेफेल्डर मुद्रण के लिए एक पत्थर को तेयार कर रहा था। तभी कपडे लेने के लिए धोबिन आ गयी। कपडे लिखने के लिए पास मे कुछ न देख जल्दी-जल्दी मे सेनेफेल्डर ने मुद्रण के लिए बनायी हुई मोम, काजल और कास्टिक सोडे से बनी स्याही से उस पत्थर पर ही कागज पर उतार लिया, लेकिन जब पत्थर पर लिखे कागज पर उतार लिया। लेकिन जब पत्थर पर लिखे हुए हिसाब को मिटाने का सवाल आया तो समस्या उत्पन्न हो गयी, क्योंकि पानी से वह लिखा हुआ साफ नही हो पाया। तब उन्होने अनायास ही इसके लिए नाइट्रिक एसिड ओर बबूल की गोद का इस्तेमाल किया। बस, इसी प्रयोग ने एक नयी मुद्रण प्रणाली को जन्म दिया। सेनेफेल्डर के मस्तिष्क मे जब यह विचार अचानक कौंधा तो उसने इस पर अनेक प्रयोग किए। कई महीनो के परिश्रम के बाद वह इस प्रणाली को व्यावहारिक रूप देने मे सफल हो पाया। सन् 1799 मे उसने अपने इस आविष्कार का पेटेन्ट करा लिया।

उसके बाद फ्रास के इगलमेन ने इस प्रणाली मे समुचित सुधार कर इसका काफी प्रचार-प्रसार किया।

लीथोग्राफी एक प्रकार से 'रासायनिक मुद्रण' कहलाता है। इसमे पत्थर एक माध्यम या साधन के रूप मे लिया जाता है। इसके असली तत्त्व हैं—ग्रीज और पानी। पत्थर की जगह वैसे आजकल धातु-पत्रो का इस्तेमाल किया जाता हे, लेकिन रासायनिक क्रिया वही है।

जब स्याही को पत्थर या धातु-पत्र पर लगाया जाता है, तो जितनी जगह मे स्याही लगती है, वह ऊपरी ही उभरी रहती हे, जज्ब नही हो पाती। तेलीय स्याही मे अम्लो की भी कुछ मात्रा होती है। रासायनिक तरीके से साफ किए हुए पत्थर के ऊपर अम्लो की प्रक्रिया से स्टियरेट बन जाता हे। यह पानी मे घुलनशील नही होता, परतु इसमे ग्रीज को आकर्षित करने के गुण होते हैं। वास्तव मे लीथोग्राफी के पत्थर मे पानी और ग्रीज

दाना को आकर्पित करने का गुण होता है, जबकि पानी आर ग्रीज दानो आपस मे विराधी स्वभाव के ह।

जव पत्थर पर ग्रीज वाली स्याही से कुछ लिख कर उस पर पानी डाला जाता हे, तो स्याही वाले भागा को छाडकर वाकी जगह पानी का प्रभाव रहता हे। ग्रीज के आकपण का समाप्त करने के लिए इस पर बबूल के गाद का इस्तेमाल किया जाता हे। इस गाद मे एसिड की काफी मात्रा होती हे। गोद का यह एसिड पत्थर के चूने म मम्पक करता हे। इम तरह पत्थर की सतह ऐसी बन जाती ह कि न ता इमम ग्रीज का आकर्पित करने की शक्नि रहती हे आर न ही पानी म घुलनशीलता की। गाद क घाल को पत्थर पर लगाने के बाद और पत्थर का पानी म धान पर घाल का घुलनशील पदार्थ पानी से धुल जाएगा परतु सतह पर उसका कोइ प्रभाव नही पडता। इमका कारण यह है कि इस पर लगा पदार्थ पानी म अघुलनशील हे।

जा मैटर छापना हाता हे, उसे तेयार पत्थर पर जमा दिया जाता हे। उसके बाद उसे बबूल के गाद के घोल से धो दिया जाता ह। स्याही लगा स्थान इससे प्रभावित नही होता। शेप भाग मे ग्रीज को आकर्पित करने की शक्ति समाप्त हो जाती हे। पत्थर जाचने के लिए उम पर गाद का लेप पुन कर उसे पानी से धो दिया जाता ह। तब उम पर बलन से स्याही लगायी जाती ह। पत्थर पर ग्रीज लगा भाग स्याही को आकर्षित करेगा, शेप भाग पर स्याही नही लगगी।

इस प्रकार तैयार हुए पत्थर के ऊपर कागज का रखकर छापा जा सकता हे। छापने क लिए इम पत्थर को मशीन पर लगा दिया जाता ह। लीथो ओर लटर प्रस की मुद्रण पद्धति म कोइ फक नही ह, परतु लीथा ओर लेटर प्रेस की स्याही म जरूर फर्क होता ह।

ऑफसेट मुद्रण

बुनियादी तार पर लीथोग्राफी ओर ऑफसेट मुद्रण का सिद्धात एक ही ह, परतु ऑफसेट प्रणाली काफी विकसित प्रणाली हे।
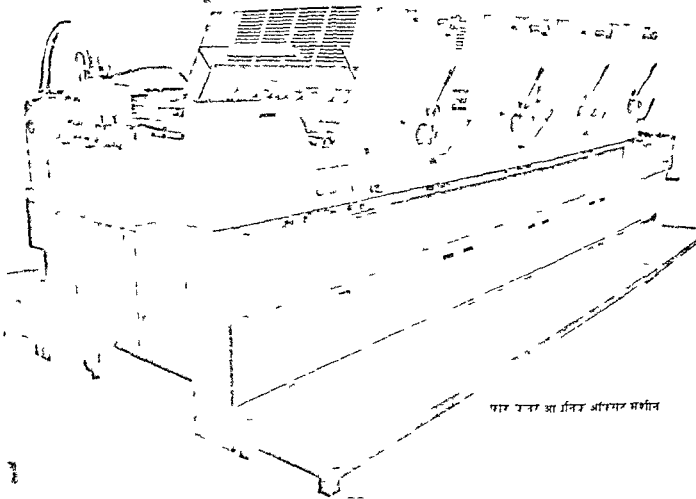
फार रगा आ [illegible] ऑफसेट मशीन

लीथोग्राफी अथवा लेटर-प्रिंटिग म छपाइ के समय कागज पर काफी दवाव दने की आवश्यकता होती हे। मोटे अथवा रूखे कागज पर ता आर भी ज्यादा दवाव दना पडता ह परत इसके विपरीत यदि रबर-शीट पर छपाइ करते ह, ता थोड स दवाव म ही छपाइ हो जाती हे। हल्के स्पश मे छपाइ सुदर स्वच्छ होती ह आर कागज पर दबाव क निशान भी नही उभरत। ऑफसेट छपाइ म हल्के स्पश वाली विधि का ही इस्तेमाल किया जाता ह।

इसकी मशीन पर एक प्लेट सिलिडर, दूसरा ब्लेंकेट सिलिडर ओर तीसरा इम्प्रेशन सिलिडर मुख्य होता हे। प्लेट सिलिडर स रबर पर इम्प्रशन पडता हे तथा रबर मे कागज पर छपाई होती ह।

ऑफसेट प्रणाली म छपने वाल मटर का फोटो लकर उसे प्लेट पर उतारते हैं। प्लेट पर यह मटर सीधा अकित हो जाता ह। इस सीधे मटर की छाप रबर ब्लेंकेट पर जव पडती हे, तो मटर उल्टा हो जाता है और उस रबर ब्लकेट से जब कागज पर छपाइ होती है, तो मटर सीधा छप जाता हे।

ऑफसेट प्रिंटिग के लिए प्लेट तयार करने की विधि लगभग लीथोग्राफी की विधि की तरह ही हे। इसमे भी प्लेट की ग्रेनिग (घिसाई) की जाती है तथा रासायनिक घोल की मदद से उसे सवेदनशील बनाया जाता हे। प्लेट के तैयार होने पर उस पर प्रिंटिग मैटर का फोटो उतार लिया जाता हे। उसके बाद इस प्लेट को सिलिडर पर व्यवस्थित कर दिया जाता ह। इस प्लेट पर स्याही केवल उभरे हुए अक्षरो पर ही लगती ह।

ऑफसेट प्रिंटिग मे स्याही के साथ प्लेट को गीला बनाए रखने की भी आवश्यकता होती हे। यह व्यवस्था मशीन मे ही रहती है। प्लेट को गीला रखने का कारण यह हे कि मशीन के चलने से उत्पन्न हुई गर्मी से रासायनिक घोल से उभरे अक्षर कहीं विकृत या मेले न हो जाए।

ऑफसेट प्रिंटिग का सबसे बडा फायदा यह है कि इसकी छपाई साफ और दोषरहित होती है। इसम चूकि मैटर टाइप के रूप मे उभरा नही होता, अत बहुत कम दवाव की जरूरत पडती है, जिससे कागज पर सिकुडन या दाब के निशान नही पडते।
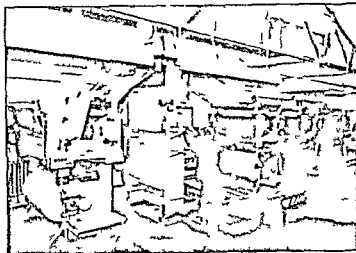
रोटरी प्रिंटिग मशीन

रोटरी मुद्रण मशीन

कोनिग की मुद्रण-मशीन के आविष्कार के 50 वर्ष बाद एक अन्य महत्त्वपूर्ण मशीन का आविष्कार हुआ। वह थी—रोटरी छपाई मशीन। इस ढग की पहली मशीन अमरीका के विलियम बुलक नामक व्यक्ति ने सन् 1864 मे निर्मित की, लेकिन दुर्भाग्यवश अपने प्रेस मे हुई एक दुर्घटना मे उसका निधन हो गया।

रोटरी मुद्रण मशीन मे कागज की अलग-अलग शीट लगाने का झझट नही रहता। इसमे कागज का रोल एक सिलिडर पर लिपटा होता है। साथ ही टाइप का पटल भी समतल, सपाट न होकर बेलनाकार होता है। इस प्रकार कागज, स्याही तथा टाइप सभी घूमने वाले बेलनो (सिलिडर) पर लगे होते हैं। इस पद्धति से एक घटे मे हजारो प्रतिया छप जाती है। आज की आधुनिक रोटरी मशीन पर जिसमे 24 सिलिडरो का समायोजन होता है, एक घटे मे 12 लाख प्रतिया तक छप सकती हैं। रोटरी मशीन मे कागज की शीट काटने, तह करने आर क्रम मे लगाने, अलग-अलग प्रतियो के बडल तेयार करने आदि की भी व्यवस्था रहती है।

इसके पटल पर टाइप और चित्रो के ब्लॉक एक सपाट फ्रेम म कम्पोज किए जाते हैं। उसके बाद साचा एक पेपरमेशी (फ्लाग) मे तैयार किया जाता है और इससे एक निश्चित आकार-प्रकार की चक्राकार ... ली जाती है। इस प्लेट को सिलिडर मे ... जाता है। इसी से छपाई का काम ...

कम्पोजिग मशीन का आविष्कार
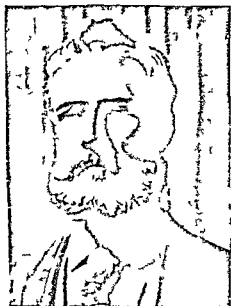
लाइनोटाइप मशीन क आविष्कारक मर्जेथलर

लाइनो टाइप मशीन

लाइनो टाइप मशीन के आविष्कार का श्रेय जमनी के आन्मर मर्जेन्थेलर नामक व्यक्ति का हे। हालाकि इस ढग की मशीन वनाने म कइ व्यक्ति महनत कर रहे थे, पर सफलता मर्जेन्थेलर का ही मिली। उन्हान इस मशीन क अनक खाक तेयार किए आर नष्ट किए। इसके अनेक मॉडल तैयार किए आर तोडे। अत मे सन् 1886 म व पहली मशीन वनान म मफल हुए जिसका नाम ब्लाअर मशीन रखा गया। इस का नाम ब्लाअर इसलिए रखा गया कि यह हवा की धौकनी म चलती थी। उसक पश्चात इस आविष्कार का व्यापारिक नाम 'लाइनो टाइप मशीन पडा।

इस मशीन म धातु की पूरी शब्द-पक्तिया तेयार होती । इसे स्लग कहा जाता है। प्रत्यक स्लग समाचार पत्र या पुस्तक क आकार क हिसाब म एक ही लम्बाइ का बनता है। चालक जब की-बाड पर शब्दा को मैटर क अनुसार दबाता है ता ऊपर लगी मैगजीन म स मैट्रिक्स निकलती है। यह एक छाट

से कम्पोजीशन बॉक्स मे लगातार घूमती रहने वाली पट्टी पर आकर गिरती हे। शब्दो के मध्य अतर को छोटे-छोटे टाको के द्वारा स्वचालित रीति से बेठाया जाता हे, जिसस पंक्तिया ठीक लम्बाई की हो।

एक पक्ति के कम्पोज होते ही चालक (ऑपरेटर) हेंडिल खीच देता है, जिससे लाइन वहा से हटकर ढलाई वाले भाग मे पहुच जाती हे। छिद्रा की पक्ति म पिघली हुइ धातु भर जाती हे ओर जमकर ठोस हो जाती हे। उसके बाद ढली हुई लाइन छूटकर मशीन के सामने की आर पहुच जाती हे ओर मेट्रिक्स उठकर ऊपर चली जाती हे ओर मेगजीन मे जाकर अपन-अपन खाना म पुन वितरित हो जाती ह। हर मेट्रिक्स म छोटे-छोटे दाते उभरे हाते ह। मेगजीन मे हर मेट्रिक्स के लिए एक अलग खाना वना होता हे। इन दाता की मदद से प्रत्येक मेट्रिक्स अपने निश्चित खाने मे जाकर गिरता है।

मर्जेन्थेलर के इस ऑटोमेटिक वितरण सिद्धात की वजह से ही लाइनो टाइप आपरेटर लगातार स्लग तेयार कर पाता है। मेट्रिक्स के मेगजीन मे लाटते रहन की वजह से नये टाइपा के ढलकर पंक्तिवद्ध होते रहने का
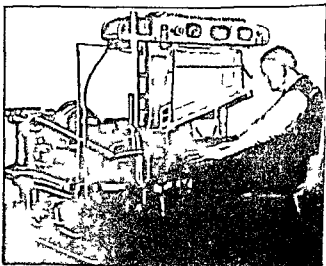
मर्जेंथलर की पहली [illegible] लाइनोटाइप मशीन
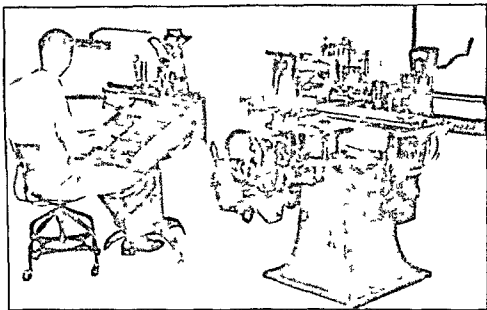
आरंभिक मोनो टाइप मशीन

सिलसिला लगातार चलता रहता हे। तब इस मशीन के सभी मेट्रिक्स हाथ से ही बनाए जाते थे, जिसमे बडी कुशलता की जरूरत होती थी। लिननायड बेटन नाम के एक अमरीकी आविष्कारक ने टाइप बठाने वाली मशीन के स्थान पर पेंटोग्राफ सिद्धात पर मशीनी पचकटर बनाकर इस कठिनाइ को भी दूर कर दिया।

आज बहुत तीव्र गति से लाइन ढालने वाली केवल हस्त-चालित ही नही, बल्कि पचटेपो से काय करने वाली मशीने विकसित हो गई हे, जिनसे कागज की रीलो पर छिद्रो के प्रतिरूप कटते जाते हे ओर ये बडी तेज गति से आटोमेटिक लाइनो टाइपो मे पहुच जाते ह। इस तरह जो टेप तेयार होता हे, उसे एक कम्प्यूटर मे डाला जाता हे, जो एक दूसरा छिद्रित टेप तेयार करता है, जो लाइन ढालने वाली मशीन मे पहुच कर धातु की ढली लाइन तेयार करते हे। इस प्रकार अब आधुनिक लाइनो टाइप मशीनो से सारा कार्य बडी तेजी मे हो जाता हे। आज लाइनो टाइप मशीने ससार के अनगिनत छापाखानो मे मुद्रण का कार्य बेजोड रीति से कर रही है।

मोनो टाइप मशीन

मोनो टाइप कम्पोजिग मशीन का आविष्कार उन्नीसवी शताब्दी के नवे दशक (1890 के लगभग) मे टालबर्ट लैन्स्टन नामक अमरीकी युवक ने किया था। इस मशीन का बुनियादी सिद्धात तो लगभग लाइनो टाइप मशीन से मिलता-जुलता है।

इस मशीन मे दो अलग-अलग भाग होते है। एक की-बोर्ड वाली मशीन कागज की टेप को निश्चित प्रतिरूपो मे छिद्रित करती है। इनमे से हर प्रतिरूप एक अक्षर प्रस्तुत करता है। दूसरा भाग है ढलाई (कास्टर) वाली मशीन का। छिद्रो से उठकर मैट्रिक्स इस भाग मे आते हे और यहा से अक्षर टाइपो मे ढलकर निकलते हे। ये टाइप स्वचालित रीति से शब्द ओर पंक्तियो मे जुडते जाते हें ओर साथ ही शब्दो के बीच के फासले का समायोजन भी होता जाता है।

मोनो टाइप मे की-बोर्ड के सहारे छोटे-बडे 300 अक्षर और सभी प्रकार के विशेष चिन्ह तथा टाइप बैठाने की युक्तियो का समायोजन रहता है।

फोटो कम्पोजिग मशीन

फोटो कम्पोजिग मशीन का मुद्रण क्षेत्र मे एक क्रांति न कहकर कई क्रांतियो का समन्वय कहे तो अधिक उपयुक्त होगा। फोटो कम्पोजिग मशीन का विकास फोटोग्राफी के विकास पर निर्भर था ब्रिटिश फोटो-ग्राफार विलियम फ्रीग्रीन ने इस प्रकार की एक मशीन को सन् 1895 में पेटेन्ट कराया, लेकिन इस मशीन का
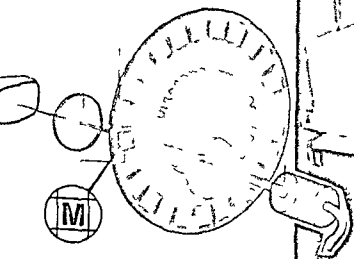
फोटो टाइप सटर की कायप्रणाली
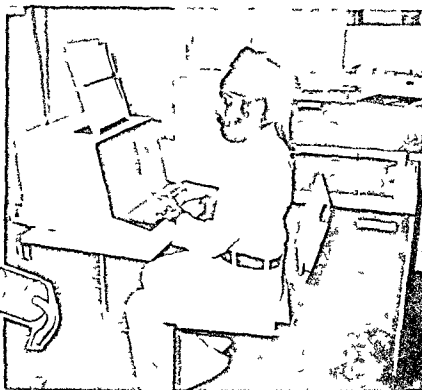
फोटो कम्पोजिंग कम्प्यूटर

आधुनिक रूप देने म कई व्यक्तियों का हाथ था। सन् 1947 म पहली कारगर फोटोकम्पोजिंग मशीन का निमाण हुआ जो विलियम फ्रीग्रीन की मशीन का ही विकसित रूप था।

इस उपकरण म एक की-बोर्ड यूनिट एक फोटो यूनिट टेप एडिटर संशोधक (करेक्टर) तथा कम्पोज करने वाला यंत्र होता है। आपरेटर मेटर को एक की-बोर्ड पर टाइप करता है और टेप पर अपेक्षित प्रतिरूपों (पैटर्न) के छिद्र करता है। अनेक छिद्रित टेप एक ही फोटो यूनिट को भेजे जा सकते है। ये एक बडे से बन्द भाग मे पहुचते है और छिद्रित प्रतिरूप कागज अथवा फिल्म पर टाइपों का रूप ले लेते है। अगर कोई संशोधन करना हुआ तो यह करेक्टर (परिशोधक) वाले भाग म कर दिया जाता है। गलत लाइन के स्थान पर एक नयी संशोधित लाइन जोड दी जाती है जिसे फोटो यूनिट गैली के रूप म सीधे करेक्टर म पहुंचा देता है। यहा आँटोमेटिक तरीके से गलत लाइन हटाकर उसके स्थान पर नयी लाइन जोड दी जाती है।
फिल्म या निगेटिव से पर पृष्ठ की सजावट कम्पोजर म की जाती है। यह एक विद्युत-चालित फोटोग्राफी मशीन होती है। इस मशीन में समाचार पत्र अथवा पुस्तक के टाइप आवश्यक आकार ओर स्थिति म सज्जित किए जाते है। इस मशीन पर किसी भी टाइप को 4 पाइंट से लेकर 216 पाइंट तक घटाया या बढाया जा सकता है। कम्पोजर पृष्ठ को कागज या फिल्म पर उतार देता है और फिर उस पर चित्र आदि लगाए जाते है। इस प्रकार पृष्ठ पूरी तरह तैयार होकर प्लेटमेकर के लिए तैयार हो जाता है।

परिष्कृत फोटो कम्पोजिंग मशीन म मेमोरी की व्यवस्था भी जोड दी गयी है। इसमे प्रत्येक अक्षर कम्प्यूटर विधि वाली मेमोरी को दिए गए निर्देश के अनुसार सूक्ष्म खण्डो म जोडा जाता है। फिर इसे विद्युत तरंगो की मदद से निगेटिव स्क्रीन पर प्रक्षेपित (Project) किया जाता है। स्क्रीन के आगे इसके साथ ही साथ एक कैमरा चालू रहता है जिससे बहुत तीव्र गति से आते हुए अक्षरों व चित्रों का फोटोचित्र तैयार होता जाता है। इस प्रकार जो फिल्म तैयार होती है उससे मुद्रण की प्लेट तैयार कर ली जाती है।

कुछ आरंभिक टाइपराइटर

एक आधुनिक टाइपराइटर

दिया गया, जिसके डायरेक्टर्स एच एच बेनेडिक्ट और फाइलो रेमिंग्टन थे। एक हजार टाइपराइटर मशीन के निर्माण के इकरारनामे पर सहमति हुई और टाइपराइटर मशीन का व्यापारिक नाम 'रेमिंग्टन टाइपराइटर मॉडल-1' रखा गया। सन् 1875 में यह टाइपराइटर बाजार में बिकने लगा।

1878 में इसके 'माडल-2' को 'की-शिफ्ट' युक्ति से परिष्कृत किया गया। अमरीका से यूरोप में टाइपराइटर ज्यादा तेजी से लोकप्रिय हुआ। रेमिंग्टन ने 1883 में जर्मनी, 1884 में पेरिस तथा 1886 में इंग्लैंड में कार्यालय खोलकर टाइपराइटर को सारे संसार में लोकप्रिय बनाने का अभियान शुरू किया। रूसी भाषा के अक्षरों वाला एक विशिष्ट टाइपराइटर रूस में सन् 1885 में चलाया गया। यूरोप में टाइपराइटर का सबसे पहले इस्तेमाल करने वाले सुप्रसिद्ध लेखक लियो टॉल्सटॉय थे। उनकी पुत्री जो उनसे टाइपराइटर पर डिक्टेशन लेती थी, संभवतः यूरोप की पहली टाइपिस्ट महिला थी।

आजकल अंग्रेजी, हिन्दी के अलावा अरबी, उर्दू, मलायी, हिब्रू आदि भाषा लिपियों के टाइपराइटर भी बनने लगे हैं,जिनका टाइप बार टाइप करते वक्त दायीं ओर से बाएं की बनिस्पत बायीं ओर से दायीं ओर जाता है।

अब विद्युत चालित टाइपराइटरों का निर्माण भी होने लगा है। ये टाइपराइटर टाइप करने के स्थान पर टाइप ढालते हैं। ऐसी टाइप मशीनों का उपयोग फोटो-ऑफसेट प्रिंटिंग प्रणाली में किया जाता है। एक अन्य प्रकार के विशेष टाइपराइटर में आवश्यकता पड़ने पर दूसरे आकार के टाइप अक्षर बठाए जा सकते हैं।

सन् 1960 में आइ बी एम ने पहली बार एक विशेष 'सिंगल एलिमेंट' विद्युत टाइपराइटर का निर्माण कर टाइपराइटिंग क्षेत्र में एक नयी क्रांति ला दी। इस टाइपराइटर में टाइप बार तथा मूविंग करेज की व्यवस्था के स्थान पर एक गोलाकार गेंद जैसे पुर्जे में टाइप अक्षर सेट होते हैं। जिस अक्षर की 'की' दबायी जाती है, गेंद घूमकर वही अक्षर सामने लाकर उसे पेपर पर दबा देती है। इस विधि में टाइप एक दूसरे में फंस नहीं सकते और कार्य भी तेजी से होता है।

इलक्ट्रानिक टाइपराइटरों में टाइप किए गए मैटर का रिकॉर्ड करने की व्यवस्था होती है। मैग्नेटिक टेप पर रिकार्ड मैटर पुनः टाइप किया जा सकता है। डिक्टेशन टेप कराकर उसे इलेक्ट्रानिक टाइपराइटर में लगा देने से मैटर टाइप होता जाता है। इन नये आधुनिकतम टाइपराइटरों ने टाइपिंग प्रणाली को आश्चर्यजनक गति विशुद्धता दी है।

सिंगल एलिमेंट विद्युत टाइपराइटर
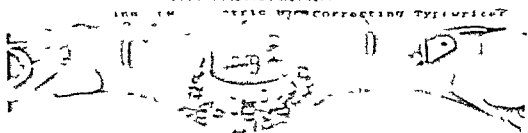
टेलीग्राफ और टेलीप्रिंटर का आविष्कार

टेलीग्राफ

टेलीग्राफ प्रणाली द्वारा सदेश भेजने की विधि का आविष्कार अमरीका के एक वैज्ञानिक, चित्रकार सेम्युएल फिन्ले ब्रीस मोर्स ने सन् 1837 मे किया।

आविष्कारक सैम्यएल फिन्ले ब्रीस मोर्स

एक बार चित्रकला से सबधित काय के लिए उसे यरोप जाना पडा। तीन वर्ष बाद लाटते समय जहाज पर उसने किसी व्यक्ति के पास विद्युत-चुम्बक दखा। बातचीत के दारान मोस को यह पता चला कि विद्युत-चुम्बक मे बिजली की धारा बडी तेजी मे प्रवाहित होती है। मोर्स के दिमाग मे तुरत एक बिचार कोध गया कि ऐसे तेज वाहक स क्यो न सदेश भेजने का काय लिया जाए। उसने वापम लाटते ही इस पर काय करना आरम्भ कर दिया।

सदश भेजने के यत्र के साथ सकेत-लिपि बनाने की भी आवश्यकता थी। उन्हाने बिन्दु ओर डश क माध्यम से विभिन्न अक्षरो के लिए सकेत-प्रणाली का विकास किया। इस प्रणाली को मोर्स-कोड कहते है। 24 जनवरी 1838 को एक विश्वविद्यालय मे 'मोर्स-कोड' यानी मोस-सकेत लिपि को प्रदर्शित किया गया। इसके बाद मोर्स ने सदेश भेजने के लिए तार बिछाने के लिए सरकार से सहायता की माग की, जो 1843 मे स्वीकृत हुई। अमरीका मे धीरे धीरे तार लाइनो की व्यवस्था होने लगी और सदेश भेजे जाने लगे। यूरोप मे पहली मोर्स तार लाइन 1848 मे हैम्बर्ग और कुक्सहैवेन के मध्य बिछायी गयी।
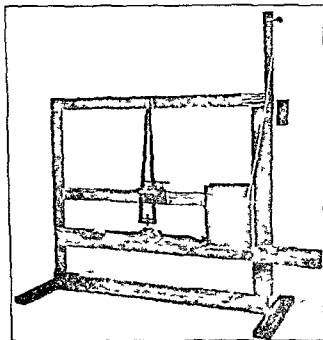
मोर्स द्वारा बनाया गया पहला टलीग्राफ उपकरण

मोस की टेलीग्राफ प्रणाली मे अमरीका के एडिसन, जमनी के वनर साइमेम तथा इग्लैंड के विलियम ने काफी सुधार किए। एक अग्रेज सर चार्ल्स व्हीटस्टोन ने सन् 1867 मे तेज रफ्तार की एक स्वचालित प्रणाली

का आविष्कार कर तार-संदेश के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण विकास किया। उनके यंत्र में एक छिद्रण मशीन की व्यवस्था थी। छिद्रण मशीन से आपरेटर छिद्र काटता था, जो कि कागज की रील में मोर्स-संकेतों को दर्शाता जाता था। इस रील को एक ट्रांसमीटर में लगा दिया जाता था जो छिद्रों को विद्युत-संवेगों में बदलता रहता था। रिसीवर में मोर्स-संकेत वास्तविक संदेश में बदल जाते थे।

इसके बाद फ्रांस के एक तार अधिकारी बादो ने मल्टीप्लेक्स (बहुधारा) तार-प्रणाली का आविष्कार किया।

टेलीग्राफ के आविष्कार और विकास के साथ ही वैज्ञानिकों ने दूरस्थ स्थानों तक संदेश भेजने के लिए प्रयोग में आने वाले तारों की समस्या कम करने की कई विधियाँ खोजीं क्योंकि अधिक दूरी के लिए तार और खम्भे लगाना बहुत जटिल और महंगा काम था। अतः वैज्ञानिकों ने एक ही तार में संदेश लाने-ले जाने की विधि ढूंढी। उसके बाद एक ही तार पर दो फिर अनेक संदेश भेजे जाने की विधियाँ भी विकसित कर ली गयीं। समुद्री केबल से संदेश एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में भेजने की विधि का भी विकास हुआ।

आज तार से संदेश भेजने और पाने के कई आधुनिक तरीके हैं। इनमें टेलीप्रिंटर मशीन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इसका प्रयोग लगभग विश्व के सभी देशों में हो रहा है।

टेलीप्रिंटर

टेलीप्रिंटर का आविष्कार ब्रिटेन के डेविड एडवर्ड ह्यूजस ने सन् 1854 में किया था। इस मशीन के आविष्कार ने मोर्स-संकेतों को अक्षरों और शब्दों में अनुवाद करने की समस्या को हल कर दिया। टेलीप्रिंटर 52 भिन्न-भिन्न अक्षरों, अंकों और आवश्यक चिन्हों को सीधे प्रेषित करता है। इन सबको प्रदर्शित करने के लिए इसमें सफेद और काले रंग की कुंजियाँ लगी रहती हैं। जब इनमें से किसी एक कुंजी को दबाया जाता है, तो गंतव्य स्थान पर इसके अनुरूप अक्षर छप जाता है।

टेलीप्रिंटर ऊपर से देखने में एक बड़े टाइपराइटर जैसा दिखायी देता है। इसमें समान अवधि के पांच विद्युत-संवेगों (Electrical impulse) की शक्ल में हरेक अक्षर प्रेषित होता है। ये संकेतग्राही (Receiver) वाले भाग में पहुंचने के बाद फिर से अक्षरों में परिवर्तित हो जाते हैं।

एक टेलीप्रिंटर [illegible] उपकरण
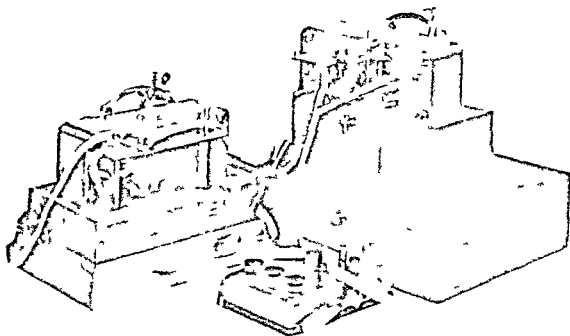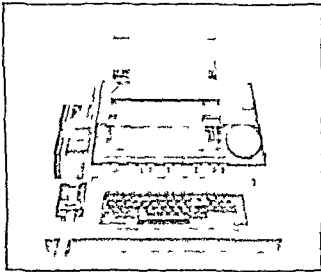
आधुनिक टेलीप्रिंटर मशीन

टलीप्रिंटर आज क मवाधिक जटिल उपकरणा मे म एक ह। विश्व क अधिकतर दशा म पुरानी पद्धति का छोड अब इमी का उपयाग होता ह। आधुनिक टेलीप्रिंटरा म एक टलीफान भी माथ जडा रहता ह। जिसे मदेश भेजना हा उसका नम्बर-डायल कर सम्पक स्थापित कर मदश भज दिया जाता ह। दमरी ओर का टेलीप्रिंटर उम मदेश का अक्षरा-शब्दा म ढालकर उस टाइप कर लता ह।

टलीप्रिंटर म जा पाच काड विद्युत-मवेगा के रूप मे उपयाग म आते ह उनक आपम म मयाग म अक्षरों को प्रदर्शित किया जाता ह।

टाइप यनिट को सरकान अक्षरा को मरकान, करिज का आग-पीछ करन लाइना का ऊपर-नीचे व्यवस्थित करन आर शब्दो क मध्य स्पेम छोडन की व्यवस्था टलीप्रिंटर म रहती ह।

टलीप्रिंटर म क्वल अग्रजी के कपिटल अक्षरा की ही व्यवस्था हाती ह। अब हिन्दी टलीप्रिंटर भी प्रचलित हा गए ह।

एक ओर म जब परा मदश जा चुका होता है, तो की रिलीज हा जाती ह। दमर मदश के लिए इम पुन दबाकर मकत बटना द्वारा दूमरा सदश भजा जाता ह। जाने वाले मदश जो मकत रूप म हाते ह, दूसरी ओर अक्षरा आर शब्दा म टाइप होते जाते ह आर दूमरी आर म आने वाल मकत इम आर अक्षरा आर शब्दो के रूप म टाइप हाते जात ह। मकत आन पर मशीन म लगा इडीकटर सूचना देता ह आर मकत एक कागज के टेप पर छिद्रित हात जात ह। उमक बाद य मकत शब्दो मे टाइप होत जात ह।

ग्रामोफोन का आविष्कार

अमरीका के महान आविष्कारक टामस अल्वा एडिसन का नाम हम सभी ने सुना हे। वे बहुत से महत्त्वपूर्ण आविष्कार कर चुके थे। एक दिन उनके मन मे विचार उठा कि क्या ध्वनि-तरगा को किसी नरम प्लास्टिक पर इस प्रकार अकित किया जा सकता हे कि उन्हे पुन उसी रूप में सुना जा सके। यह विचार उनके दिमाग मे महसा उम समय उत्पन्न हुआ, जब वे अपनी प्रयोगशाला म तार सकेतो के लिए एक रिकार्डिग मशीन बनाने मे जुटे हुए थे। इस मशीन मे एक मोम का सिलिडर था, जिसमे एक सूई मोस कोड के बिन्दुओ और डैशा को अंकित करती जाती थी। एक दिन जब वे इस पर कार्य करते समय अपने एक सहायक से बात कर रहे थे, तो सहायक के मुह स बात करते समय जो आवाज निकली, उसके कपन से सूई हिल गयी और एडिमन की अगुली मे जा चुभी। बस, एडिसन के दिमाग म उक्त विचार कौध गया कि अगर मनुष्य की आवाज द्वारा उत्पन्न प्रेरित कम्पन इतने शक्तिशाली हे कि सूइ का हिला सकते है और चिन्ह अंकित कर सकते हैं, तो किमी उपयुक्त पटल पर ध्वनि को अंकित कर, फिर इस प्रक्रिया का उलटकर और चिन्हा पर सूई चलाकर ध्वनि को पन उत्पन्न किया जा सकता है।
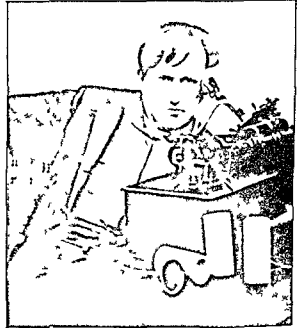
टॉमस अल्वा एडिसन

एडिसन क दिमाग म एक मशीन का जो रूप उभरा, उसने उसका एक खाका खीचकर अपने सहयोगियो स उसे तुरत तैयार करवाया। वैसे बुनियादी तोर पर यह एक बहुत सरल-सीधा विचार था, परतु इसे वास्तविक रूप देने मे एडिसन को कइ वर्ष लग गए।

आरंभिक ग्रामोफोन

विकसित रिकार्ड प्लेयर

शुरू मे पीतल का एक सिलिंडर लिया गया था, जिसे एक तिरछे स्पिडल पर लगाया गया। इसे घुमाने के लिए एक हेडिल लगाया गया। सिलिंडर के पिवट (धुरी) पर एक प्रकार का कान का छिद्र था, जिसमे पर्दे के तौर पर एक पार्चमेंट का टुकडा लगाया गया था। एडिसन ने एक नर्म टीन की पन्नी सिलिंडर पर लपेट दी और हैडिल से उसे घुमाना शुरू किया। फिर सूई को पन्नी पर स्पर्श कराकर बोलना शुरू किया। यह एक बालगीत था-'मेरी हेड ए लिटिल लेम्ब, इट्स फ्लीस वाज व्हाइट एज स्नो ।' उसके बाद सूई को उसने पुन शुरू से अंकित चिन्हो पर लगाकर हेडिल घुमाया तो उसमे से धीमी किन्तु स्पष्ट ध्वनि निकली। एडिसन इस प्रयोग से फूला न समाया। यही ग्रामोफोन के रिकार्ड का प्रथम सरल रूप था।

अगर हम किसी रिकार्ड को ध्यान से देखे तो हमे उस पर टेढ़ी-मेढ़ी नालिया-सी दिखायी देगी। इन नालिया मे कही ज्यादा और कही कम गहरायी भी नजर आयेगी। जब भारी आवाज रिकार्ड की जाती है, तो इन नालियो का टेढ़ा-मेढ़ापन अधिक होता है और हल्की आवाज की रिकार्डिंग मे कम। अर्थात आवाज के कम-ज्यादा कम्पन के साथ नालिया भी उसी तरह का रूप लेती जाती हे। जब ध्वनि भारी होती हे, तो हवा के अणु एक दूसरे से अधिक तेजी से टकराते है और वे ध्वनि अंकित करने वाले डायफ्राम पर अधिक बल से टकराते हे। इस प्रकार सूई अधिक चोडाई मे या आयाम मे चलती

एक अन्य प्रकार का आधुनिक रिकार्ड प्लेयर

ग्रामोफोन का आविष्कार

टॉमस अल्वा एडिसन

अमरीका के महान आविष्कारक टामस अल्वा एडिसन का नाम हम सभी ने सुना है। वे बहुत से महत्त्वपूण आविष्कार कर चुके थे। एक दिन उनके मन मे विचार उठा कि क्या ध्वनि-तरगो को किसी नरम प्लास्टिक पर इस प्रकार अकित किया जा सकता है कि उन्हे पुन उसी रूप मे सुना जा सके। यह विचार उनके दिमाग मे सहसा उस समय उत्पन्न हुआ, जब वे अपनी प्रयोगशाला मे तार सकेतो के लिए एक रिकार्डिग मशीन बनाने मे जुटे हुए थे। इस मशीन मे एक मोम का सिलिडर था, जिसमे एक सूई मोर्स कोड के बिन्दुओ ओर डैशो को अकित करती जाती थी। एक दिन जब वे इस पर कार्य करते समय अपने एक सहायक से बात कर रहे थे, तो सहायक के मुह से बात करते समय जो आवाज निकली, उसके कपन से सूई हिल गयी और एडिसन की अगुली मे जा चुभी। बस, एडिसन के दिमाग मे उक्त विचार कोध गया कि अगर मनुष्य की आवाज द्वारा उत्पन्न प्रेरित कम्पन इतने शक्तिशाली है कि सूई को हिला सकते है और चिन्ह अंकित कर सकते हैं, तो किसी उपयुक्त पटल पर ध्वनि को अंकित कर, फिर इस प्रक्रिया को उलटकर ओर चिन्हो पर सूई चलाकर ध्वनि को पुन उत्पन्न किया जा सकता है।

एडिसन के दिमाग मे एक मशीन का जो रूप उभरा, उसने उसका एक खाका खीचकर अपने सहयोगियो स उसे तुरत तेयार करवाया। वैसे बुनियादी तौर पर यह एक बहुत सरल-सीधा विचार था, परतु इसे वास्तविक रूप देने मे एडिसन को कई वर्ष लग गए।

आरंभिक ग्रामोफोन

विकसित रिकार्ड प्लेयर

शुरू म पीतल का एक सिलिंडर लिया गया था जिसे एक तिरछे स्पिडल पर लगाया गया। इसे घुमाने के लिए एक हेडिल लगाया गया। सिलिंडर के पिवट (धुरी) पर एक प्रकार का कान का छिद्र था, जिसमे पर्दे के तौर पर एक पार्चमेंट का टुकडा लगाया गया था। एडिसन ने एक नर्म टीन की पन्नी सिलिंडर पर लपेट दी ओर हेंडिल से उसे घुमाना शुरू किया। फिर सूई को पन्नी पर स्पर्श कराकर बोलना शुरू किया। यह एक बालगीत था-'मेरी हेड ए लिटिल लैम्ब, इट्स फ्लीस वाज व्हाइट एज स्नो ।' उसके बाद सूई को उसने पुन शुरू से अंकित चिन्हो पर लगाकर हेडिल घुमाया तो उसमे से धीमी किन्तु स्पप्ट ध्वनि निकली। एडिसन इस प्रयोग से फूला न समाया। यही ग्रामोफोन के रिकाड का प्रथम सरल रूप था।

अगर हम किसी रिकार्ड को ध्यान से देखे तो हमे उस पर टेढ़ी-मेढी नालिया-सी दिखायी देगी। इन नालियो मे कही ज्यादा ओर कही कम गहरायी भी नजर आयेगी। जब भारी आवाज रिकार्ड की जाती हे, तो इन नालियो का टेढ़ा-मेढापन अधिक होता हे ओर हल्की आवाज की रिकार्डिग मे कम। अर्थात आवाज के कम-ज्यादा कम्पन के साथ नालिया भी उसी तरह का रूप लेती जाती हे। जब ध्वनि भारी होती है, तो हवा के अणु एक दूसरे से अधिक तेजी से टकराते हैं और वे ध्वनि अंकित करने वाले डायफ्राम पर अधिक बल से टकराते है। इस प्रकार सूई अधिक चोडाई मे या आयाम मे चलती

एक अन्य प्रकार का आधुनिक रिकार्ड प्लेयर

एक आधुनिक कैसेट टेप रिकार्डर

प्रभावशाली और टिकाऊ साबित हुआ। इस पर अंकित ध्वनि भी स्पष्ट होती थी।

अब तक टेपों के निर्माण तथा रिकार्डिंग के क्षेत्र में बहुत उन्नति हो चुकी है। टेप की नयी विकसित प्रणाली के जरिये अब केवल ध्वनि ही नहीं, चित्र भी टेप किए जा सकते हैं, जिन्हें फिल्म की तरह वीडियो कैसेट रिकार्डर की सहायता से टी वी स्क्रीन पर देखा जा सकता है।

टेप-रिकार्डिंग का सिद्धांत यह है कि कुछ पदार्थ चुम्बकीय क्षेत्र में आने पर चुम्बकीय गुणों से प्रभावित हो जाते हैं। जब तक वे किसी अन्य चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव में न आएं चुम्बकीय बने रहते हैं। इसके अलावा उन पदार्थों के भिन्न-भिन्न स्थानों पर चुम्बकत्व भी अलग-अलग होता है। चुम्बकीय ध्वनि रिकार्डिंग इन्हीं दो तथ्यों पर आधारित है।

टेप पर जिस व्यक्ति की आवाज को रिकार्ड करना होता है वह माइक्रोफोन के सामने बोलता है। माइक्रोफोन द्वारा व्यक्ति की ध्वनि विद्युत-धारा में बदल जाती है। यह विद्युत-धारा काफी कम होती है। इसे एम्पलीफायर द्वारा प्रवर्धित करके लोहे पर लिपटी तार की एक कुंडली में गुजारा जाता है। इससे लोहे का टुकड़ा चुम्बक बन जाता है। इसका चुम्बकीय क्षेत्र ध्वनि के अनुसार ही बदलता है। इसी दौरान आयरन आक्साइड से युक्त टेप को एक मोटर द्वारा चुम्बक के बीच से गुजारा जाता है। इस पर लगा आयरन आक्साइड ध्वनि के द्वारा पैदा हुई विद्युत से चुम्बक में बदलता जाता है। इस प्रकार टेप पर ध्वनि चुम्बकीय क्षेत्र के रूप में अंकित हो जाती है। इसलिए इस प्रणाली को चुम्बकीय रिकार्डिंग कहते हैं। ध्वनि अंकित इस टेप को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

रेडियो का आविष्कार

रडियो के आविष्कार मे इटली के गगलील्मा मार्कोनी, जमनी के हनरिख हटज ओर अमरीका क ली डे फोरेस्ट का विशेष हाथ रहा ह। रेडियो म जिन अनक उपकरणा का प्रयोग किया जाता हे, उनका आविष्कार अनेक वेज्ञानिका ने किया। यदि ये आविष्कार न हुए होते तो रेडिया का आविष्कार न हा पाता।

रडियो-तरगा को कृत्रिम रूप म उत्पन्न करन का आविष्कार जमनी क हर्नरिख हट्ज न किया। उन्होने कुछ उपकरणो की मदद स धातु क दा गोला क मध्य विद्युत का प्रबल तनाव उत्पन्न किया। इमस इन गालो क मध्य चिनगारी के रूप मे विद्यत एक आर से दूसरी ओर प्रवाहित हो गयी। इस परिवतन क परिणामस्वरूप उत्पन्न हान वाली तरगा का हटज ने करीब दम मीटर की दूरी पर ग्रहण किया। इसके लिए उन्होन धात क तार का एक गेमा गोला लिया, जिसके दाना सिर अलग थे आर उन सिरा पर छोटे छोटे से गोल लगे थे। इन दोना सिरा क बीच थोडा-सा अतर था। जब इन गाल के दाना सिरो के बीच का अनर थोडा कम किया गया तो गोल क बीच चिनगारी के बाद नन्हा-सा स्फुलिग दिखायी पडा। अत यह सिद्ध हा गया कि विद्युत की ऊजा तरगो क रूप मे यहा तक पहुच गयी थी। इस प्रकार रेडियो-तरगा को उत्पन्न कर उन्हे दूर तक प्रेषित करन मे हट्ज ने सफलता प्राप्त की।

मार्कोनी और उसका रिसीवर सेट
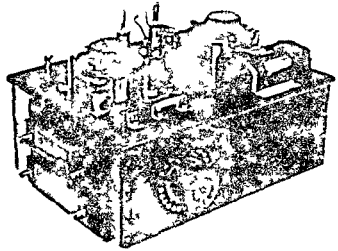
रेडिया सट का एक पुराना मॉडल

मार्कोनी ने हट्ज के इस प्रयोग का विवरण पढा ओर उससे प्रेरणा पाकर उन्हाने अपने रेडियो उपकरण मे इनका उपयाग करन के लिए प्रयोग करने शुरू किए। तरगा के प्रेषण मे उन्होन सुधार कर उन्हे शक्तिशाली बनाया।

इन तरगो की मदद से उन्होने तार भेजने मे भी सफलता प्राप्त की। कुछ दिना बाद इन तरगो की मदद से टेलीफान की तरह बात करने म भी सफलता प्राप्त की।

सन 1896 म उन्होन अपना रेडिया सेट तयार किया आर रडियो प्रणाली का व्यवहार मे लाने के लिए इसे पटन्ट करवा लिया।

इस प्रकार हर्ट्ज की रेडिया-तरगा की उत्पादन प्रणाली का अपनाकर मार्कोनी ने रेडियो का आविष्कार किया। इन दाना के अलावा रेडिया विज्ञान क्षेत्र म अन्य कइ वज्ञानिको का हाथ ह। फ्रास के एडवर्ड ब्रानले और दा फारस्त, रूस के पोपॉफ, एडीसन ओर भारत के जगदीशचन्द्र बसु का नाम लिया जा सकता है।

जगदीशचद्र बसु ने छोटी लम्बाइ की तरगो के ग्रहण करने के लिए एक विशेष विधि का आविष्कार किया था।
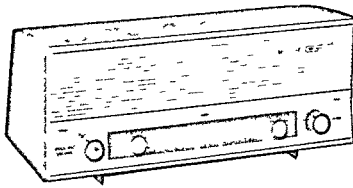
आधनिक रडिया मट

मार्कोनी ने पूजी इकट्ठी कर रेडियो उपकरण निर्माण की एक कम्पनी स्थापित की। इम प्रकार अनेक वेज्ञानिको की युक्तिया आर आविष्कृत उपकरणो के सहयोग से मार्कोनी न रेडियो सेट बनाने मे सफलता प्राप्त की।

रेडियो तरगे मूल रूप से एक विशेष परिपथ मे उत्पन्न की जाती है। इन तरगो का एरियल द्वारा रेडिया सेट मे ग्रहण किया जाता हे। यहा इन तरगो को कई बार प्रवधित (एम्प्लीफाइ) करक शक्तिशाली बनाया जाता हे। मेक्मवेल नामक वेज्ञानिक ने 1864 मे रेडियो-तरगो के बारे मे सबसे पहले जानने का प्रयास किया था। इन तरगो को इकट्ठा करके रेडियो सर्किट से जाडन की युक्ति सर ओलिवर लाज ने निकाली।

रेडिया मचार के लिए मुख्य रूप से दा प्रकार के यत्रो की आवश्यकता होती हे। टासमीटर जो रेडियो-तरगो को उत्पन्न कर रेडियो मेट तक भेजता ह। टासमीटर ध्वनि मदेश को विद्युत-धारा मे बदलकर केरियर तरगा से मिश्रित करके भजता हे और दूसरा रिसीवर होता हे, जो स्वयम् रडिया सट ही होता हे। यह रेडियो-तरगा को ध्वनि-तरगो मे बदलकर हू-ब-हू आवाज पेदा करता ह। टासमीटर से चलने वाली रेडियो-तरग दा तरह से गमन करती ह। पहली प्रकार की तरगे धरती मे कुछ ऊचाइ पर प्रवाहित हाती हे। य तरगे निश्चित दूरी तक ही जा पाती ह। अधिक दूरी के लिए तरगा को अधिक ऊचाइ पर प्रवाहित करना पडता ह। ऊचाइ जितनी अधिक होती ह उतनी ही अधिक दूरी तक सदेश प्रसारित किए जा सक्त ह।

रेडियो-तरग पृथ्वी की गालाइ म मुड नही पाती, ये सीधी रखा म ही गमन करती है, परन्तु अतरिक्ष म आयन-मडल से परावर्तित होकर ये रेडियो-सदेश ले जाने के लिए उपयोगी बन जाती ह। आयन-मडल की भिन्न-भिन्न सघनता की परते होती ह, जिनसे कुछ तरग पहली परत से परावर्तित होती ह ओर कुछ पहली को भेद कर दूसरी या तीसरी परत मे परावर्तित होती ह। परत की शक्ति ओर रेडियो-तरगा की फ्रिक्वसी क अनुसार उनकी प्रतिक्रियाए भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। यही कारण ह कि किसी निर्धारित फ्रिक्वेसी पर विश्व के एक सिरे से दूसरे सिरे तक रेडियो सचार व्यवस्था स सदेश प्रसारित किए जा सकते ह।

आमतोर से रेडियो-सेट मे पाच मुख्य सेक्शन होते हे, जो अपना अपना कार्य करते हे।

एरियल द्वारा रेडियो-तरगे ग्रहण की जाकर रेडिया सट तक पहुचायी जाती है। ये रेडियो-तरगे 186000 मील प्रति सेकण्ड के वेग से चलती हे।

रेडियो फ्रिक्वेसी एम्प्लीफायर प्राप्त सदेशो को प्रवर्धित करके आगे के सर्किट मे भेजता हे।

डिटेक्टर इन प्राप्त सदेशो को जो ए सी करेट की हाई-फ्रिक्वेसी पर होते है, डी सी मे बदल देता है। अब ये सुनने योग्य स्थिति मे आ जाते हैं।

आडियो सिग्नल एम्प्लीफायर प्राप्त सदेशो की शक्ति को और बढा देता हे। उसके बाद लाउड स्पीकर इन विद्युत-सकेतो को आवाज मे बदलकर सुनने लायक बना देता ह।

इस तरह इलेक्ट्रॉनिकी के भिन्न-भिन्न परिपथा, जैसे-एम्प्लीफायर, ऑसीलेटर, डिटेक्टर, आडिया एम्प्लीफायर, लाउडस्पीकर के प्रयोग से भिन्न-भिन्न मनोरजक कायक्रम रेडियो सेट द्वारा हम तक पहुचते हैं। इन उपकरणो मे डायोड, ट्रायोड, रेजिस्टर चाक, कडसर, टासफामर आदि अनेक छोटे बडे कल-पुर्जो का इस्तेमाल होता ह। अब डायोड, टायाड वाल्वो क स्थान पर सेमीकडक्टर डायोड ओर टॉजिस्टर प्रयोग म आने लग ह।

ससार का सबसे छोटा रेडिया सट ताशिबा ए एम—एफ एम 302' जनवरी 1983 म बना। इमका आकार 4 9x3 5x2 2 इच हे। इसका कुल भार केवल 85 ग्राम है।

ट्रांजिस्टर का आविष्कार
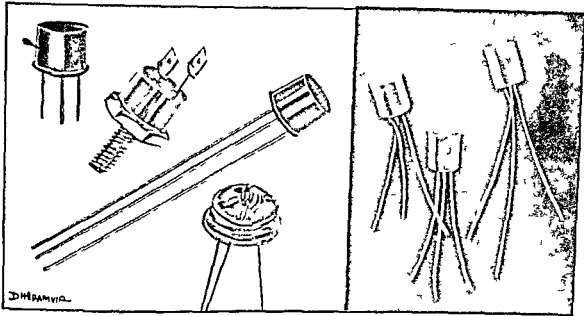
कुछ विभिन्न आकार प्रकार के ट्रांजिस्टर

ट्राँजिस्टर का आविष्कार सन् 1948 में हुआ। इसके आविष्कार का श्रेय अमरीका के तीन वज्ञानिकों, जॉन बारडीन, विलयम शौकले तथा वाल्टर ब्राटेन को जाता है। इस अद्वितीय आविष्कार के लिए इन तीनो को सन् 1956 का नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

ट्रांजिस्टर नाम का यह अवयव रेडियो मे वाल्वो की जगह इस्तेमाल किया जाता है। टाजिस्टर के छोटे आकार की वजह से रेडियो का आकार बहुत छोटा बनाने मे सफलता मिली। जिस रेडियो सेट मे वाल्वो की जगह ट्रांजिस्टर इस्तेमाल किए जाते हे, उसे आजकल आम भाषा म 'ट्राजिस्टर' अथवा 'ट्रांजिस्टर रेडियो' कहा जाता हे।

ट्रांजिस्टर जर्मेनियम और सिलिकन नामक तत्त्वो से बनाया जाता है। ये दोनो तत्त्व अर्धचालक कहलात हें। इनमे जब कुछ दूसरे पदार्थो को मिलाया जाता ह, तो इनकी विद्युत चालकता बदल जाती है ओर इन्हे बेहतर अर्धचालक के रूप मे प्रयोग किया जा सकता हे।

जिन अधचालको मे विद्युत चालकता इलेक्ट्रोनो से होती है, उन्हे 'N' प्रकार का अर्धचालक कहा जाता हे। इसी तरह जिन अर्धचालको मे धनात्मक 'होल्स' विचरण करते है। उन्हे 'P' प्रकार का अर्धचालक कहा जाता हे। अर्धचालका की सामान्य युक्ति तब बनती है, जब 'N' प्रकार का एक छोटा-सा आयताकार टुकडा 'P' प्रकार के इतने ही आकार के टुकडे के साथ जोड़ दिया जाता है। इन अर्धचालको मे अन्य चालक-पदार्थों की तरह के धनात्मक कण नही हात। य कुछ भिन्न होत हें। इनका अस्तित्व एसा हे, जेस कोइ इलेक्टॉन अपनी जगह से हट गया हा ओर वहा कोई नन्हा-सा छिद्र रह गया हो। इसी छिद्र को धनात्मक होल्स कहा जाता ह। जब इस तरह बने टुकडे मे करेट पास किया जाता है, ता 'P' वाले भाग के 'होल्स' बैटरी के धन-विभव स दूर हटते हें और 'N' भाग के इलेक्ट्रॉन ऋणात्मक सिरे स दूर हटत ह, क्योंकि बैटरी का धनात्मक सिरा इस टुकड के 'P' सिर मे आर ऋणात्मक सिरा 'N' सिरे स जाडा जाता है। अत य दोनो प्रकार के कण परे हटकर टुकड

ट्रॉजिस्टरा क प्रकार क आतरिक भाग

एक आधुनिक ट्रॉजिस्टर

क मध्य भाग की आर आकर्षित होते हैं। यहा विरोधी (ऋण और धन) हान के कारण ये कण आपस म मिल जाएगे ओर इसके अदर स करट का प्रवाह आरम्भ हो जाएगा। यदि बटरी के सिरे बदल कर विपरीत स्थिति मे लगाए गए ता विद्युत-धारा का प्रवाह नही हो पाएगा। यही स्थिति डायोड वाल्व मे हाती है। अत इस प्रकार से बना P-N' जन्क्शन 'डायोड वाल्व की तरह कार्य करता हे।

जक्शन प्रकार के ट्राजिस्टर बनाने के लिए 'P' प्रकार के टुकडे के दोनो ओर 'N' प्रकार के टुकडे जोडने म 'N-P-N' प्रकार का ट्राजिस्टर बन जाता हे जिस जक्शन ट्रॉजिस्टर कहत है। इसी तरह 'N' प्रकार के अधचालक टुकडे के दोनो ओर 'P प्रकार के दा टुकडे जाडने मे 'P-N-P' प्रकार का ट्राजिस्टर बन जाता है।

विभिन्न उपकरणो म उपयोग के लिए अनक विधिया स अनक प्रकार के टाजिस्टर बनाए जाते ह। टॉजिस्टर का उपयोग एम्प्लीफायर आम्सीलेटर आदि सभी प्रकार के उपकरणा म किया जाता ह।

रेडियो सेटो म तो टाजिस्टरो का उपयाग हुआ ही साथ ही ये श्रव्य साधना (Hear adding) गिटार अतरिक्ष राकेट, कम्प्यूटर, टलीविजन वी सी आर तथा इलक्टॉनिक इजीनियरी के हर क्षेत्र मे प्रयुक्त किए जा रह ह। वाल्वा का उपयाग बडी तेजी से कम हा गया ह। ट्राजिस्टरा का आकार बहुत छाटा होने की वजह सभी यत्र छाटे आकार के बनन लग ह। इसक अलावा ये कम वोल्टेज पर कुशलता स काय कर सकने म समथ ह। वाल्वो की अपक्षा य अधिक टिकाऊ आर सुरक्षित साबित हुए ह।

इलक्टॉनिकी के क्षेत्र म शायद ही काइ ऐसी युक्ति बची हा जिसम टाजिस्टर का उपयाग न हा रहा हा।

टॉजिस्टर म तीन सिर होत ह जिन्ह एमिटर बस आर 'कलेक्टर' कहा जाता ह। 'N-P-N टॉजिस्टर म एक 'N सिरा ऐमिटर का काय करता ह तथा दूसरा कलेक्टर का। बीच का P' भाग बस का काय करता ह। इसी प्रकार 'P-N-P टॉजिस्टर मे एक P' सिरा एमिटर का तथा दूसरा 'P सिरा कलक्टर का तथा बीच का 'N' भाग बस का काय करता हे। इन्ह उपयुक्त विद्युत-परिपथो म जाडकर वांछित कार्यों के लिए प्रयोग म लाया जाता ह।

टेलीविजन का आविष्कार

टलीविजन का आविष्कार किसी एक व्यक्ति द्वारा एक दिन म नहीं हुआ, बल्कि इसका विकास अनक वैज्ञानिकों क वर्षों के प्रयास का परिणाम ह। लकिन फिर भी सफल टलीविजन के विकास का श्रेय एक स्कॉटिश पादरी युवक जॉन लागी बेयड को जाता ह। उन्होन 26-27 जनवरी सन् 1926 म ससार क पहले सफल टलीविजन का प्रदशन किया। इसस पहल इस दिशा मे किए गए प्रयासो का भुलाया नही जा सकता।

1842 मे अलक्जेडर बन नाम के एक अन्य स्कॉटिश वैज्ञानिक ने विद्युत-तार मे चित्र प्रेषित करने क लिए एक यत्र बनाया था। इस यत्र को बाद म बेकल ने विकसित किया। इसके बाद एक जमन भौतिकशास्त्री आथर कोन न विद्युत रसायन के स्थान पर प्रकाश विद्युत प्रभाव का इस्तेमाल कर इसे और परिष्कृत किया।

टेलीविजन के लिए सबसे बडी समस्या स्केनिंग यानी सक्ष्मावलोकन की थी। इसका समाधान कुछ अश तक बलिन विश्वविद्यालय क पाल निकोव नामक युवक ने करने का प्रयास किया। स्केनिंग और उसे फिर से वास्तविक रूप म सजीकरण के लिए उन्होने गत्ते का डिस्क लिया आर उस पर छोटे-छोटे सूराखो को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि वे इसकी कोर (Core) के
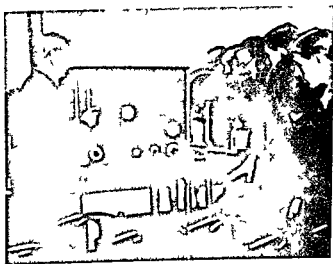
एक आरभिक टेलीविजन सेट

जॉन लोगी बेयर्ड का आरंभिक टलीविजन

पास एक सर्पिल वृत्त बना सके। एक विशेष प्रकार के केमरे मे इस डिस्क को लगाया। इस केमरे के सामने किसी हरकत करती वस्तु पर छिद्रित डिस्क के घूमने से केमरे मे लगे एक तेज रोशनी वाले लेम्प से प्रकाश किरण निकलकर वस्तु या दृश्य पर पडती थी। इस प्रक्रम स वह वस्तु छोटे-छोटे बिन्दुओ मे बट जाती थी। छिद्रो का आकार डिस्क पर सर्पिल रूप मे होने से वस्तु का सूक्ष्मावलोकन डिस्क की एक ही परिक्रमा मे हो जाता था। एक प्रकाश सवेदी (Light sensitive) सेल जो बैटरी से जुडा होता था और जिसका सबध रिसीवर से होता था, इस वस्तु या दृश्य को विद्युत सवेगो मे बदल कर लगातार प्रेषित करता रहता था। एक दूसरे छिद्रित डिस्क मे सर्पिल वृत्त मे बने सूराखो के सहारे तेज और मद प्रकाश के असख्य बिन्दुओ के सम्मिलन से पूरा दृश्य फिर से निर्मित हो जाता था, लेकिन निकोव इसे अधिक विकसित नही कर पाए, क्योंकि इसम तकनीकी बाधाए बहुत थी।

इसी बीच टेलीविजन के दो बुनियादी यत्रो का विकास हुआ। स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय क प्रोफेसर फर्डिनाड
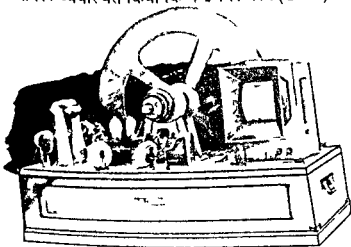
ब्राउन ने क्रुक्स की केथोड-ट्यूब में संशोधन किया। उन्होंने ट्यूब के चौड़े सिरे वाले भाग पर चमकीले इमल्शन का लेप करके कैथोड से निकलने वाले इलेक्ट्रॉनों के प्रवाह को दिखने योग्य बना दिया। वे इस नली का उपयोग 'ओसिलोस्कोप' (दोलनमापी) के रूप में करते थे।

दूसरा यंत्र था 'प्रकाश विद्युत सेल'। इसका आविष्कार 1905 में जर्मनी के जूलियस एल्स्टर और हाम गाइटेल ने किया।

सन 1909 में म्यूनिख के एक इंजीनियर मैक्स डाइकमान ने भी कैथोड किरणों के माध्यम से एक छोटा-सा मॉडल बनाया जो छाया चित्रों का प्रेषण कर सकता था।

बेयर्ड ने इन सभी प्रयासों से पर्याप्त लाभ उठाया और सन् 1925 में उन्हें अपने टेलीविजन मॉडल से एक मनुष्य की आकृति को एक कमरे से दूसरे कमरे में प्रेषित करने में सफलता मिली।

बेयर्ड ने अपने मॉडल में निकोव द्वारा प्रयुक्त छिद्रित डिस्क का उपयोग किया था। बेयर्ड ने अपने मॉडल द्वारा प्रेषित चित्र को और साफ-सुथरा बनाने के लिए बेतार द्वारा प्रेषण का क्षेत्र बढ़ाने के प्रयास किए। बेयर्ड द्वारा निर्मित टेलीविजन सेट का प्रायोगिक प्रेषण बी बी सी में सन 1929 में शुरू किया गया।
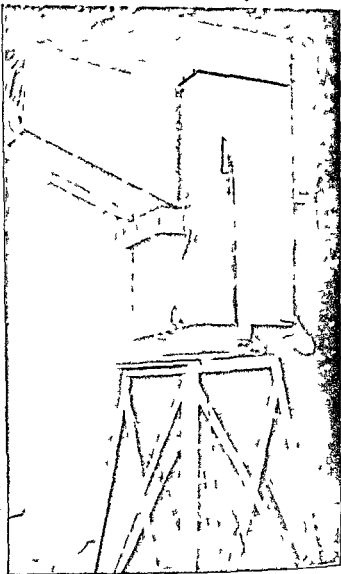
आरंभिक टेलीविजन कैमरा

इन्हीं दिनों अमरीकी प्रयोगशालाओं में भी टेलीविजन की इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली का बहुत अधिक विकसित कर लिया गया। यहां के वैज्ञानिक फिलो टी फार्न्सवर्थ और डॉ वी के ज्वोरिकिन ने इस क्षेत्र में बड़े असाधारण कार्य किए। 1928 में ज्वोरिकिन ने टेलीविजन के आधारभूत साधन 'आइकानोस्कोप' बनाया। यह एक बिल्कुल नयी इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली का नियोजन था, जिसे निकोव डिस्क और ब्राउन नली के स्थान पर लगाया गया। टेलीविजन बिम्बों को शीघ्र और कुशलता से प्रेषित करने में यह एक क्रांतिकारी विकास था जो आज भी टेलीविजन का आधारभूत साधन बना हुआ है।

टी वी सेट के अंदर एक कैथोड नलिका होती है, जिसमें चौड़े सिरे के भीतरी भाग में प्रतिदीप्त जिंक सल्फाइड का लेप होता है। यही टी वी का स्क्रीन कहलाता है। जब इलेक्ट्रॉन गन से निकलने वाले इलेक्ट्रॉन स्क्रीन पर पड़ते हैं, तो यह स्क्रीन चमक उठता है। यह विशेष पदार्थ पूरे स्क्रीन पर छोटे-छोटे कणों के रूप में फैला होता है। इन कणों से उसी मात्रा में प्रकाश के स्फुलिंग निकलते रहते हैं जिस अनुपात में उस पर इलेक्ट्रॉन टकराते हैं। जिस प्रकार से इलेक्ट्रॉन गन टी वी कैमरा में क्रमवीक्षण करता है उसी तरह केथोड-किरण ट्यूब तेज रफ्तार में इलेक्ट्रॉनों को दाएं-बाएं शूट करती रहती है और स्क्रीन पर हरकत करते चित्र दिखाई देते रहते हैं।

टी वी प्रसारण केन्द्र में एक खास किस्म के कैमरे से पर्दे पर वह दृश्य डाला जाता है जिसे प्रसारित करना होता
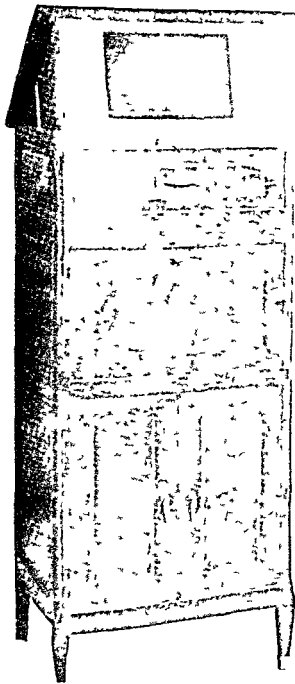
एक आरंभिक टलीविजन सट

ह।यह स्क्रीन लाखो छोटे-छोटे कणो से निर्मित होता ह। इन कणो को अभ्रक की पट्टी के एक तरफ जमा दिया जाता ह। इन कणो का आकार इच के हजारवे भाग के बराबर हाता है। आस-पास के कण एक-दूसरे से विद्युत रूप स पृथक-पृथक होते ह। इन कणो मे प्रकाश की क्रिया तेजी और बहुलता से होती है। इन कणो पर जब प्रकाश डाला जाता हे, तो इनमे से इलेक्ट्रॉन-कण निकलने लगते हे। इन इलेक्ट्रॉना की सख्या प्रकाश की मात्रा पर निर्भर करती हे। कैमरे के दूसरी तरफ इलेक्ट्रॉन-गन की व्यवस्था होती ह, जो इलेक्ट्रॉन-कणो का स्रोत होती हे। इलेक्ट्रान-गन मे से निकलने वाली इलेक्टॉन बीम दाए-बाएऔर ऊपर नीचे क्रम से घुमायी जाती हे। यह क्रम-वीक्षण (Scanning) कहलाती ह। इन इलेक्टॉन-कणो की सख्या के अनुरूप विद्युत-धारा उत्पन्न होती है, जो नन्हे-नन्हे पुजो की शक्ल मे होती है। विद्युत-धारा के इन पुजो को एम्प्लीफायर द्वारा प्रवर्धित (Amplified) किया जाता ह। उसके बाद इन्हे प्रसारित करन के लिए रेडियो-तरगो पर सवार कर दिया जाता हे। एंटिना के माध्यम से टेलीविजन मेट मे पहुचने पर ये तरगे पुन दश्य रूप कसे पाती हैं, यह पहले बतलाया जा चुका है। टेलीविजन के स्क्रीन पर विद्युत-पुजो को पृथक करके उसी क्रम मे ऊपर-नीचे दाए-बाए घुमाया जाता हे, जिस क्रम मे प्रसारण केन्द्र मे घुमाया गया था। तभी दृश्य उभरता हैं।

रगीन टेलीविजन मे दृश्य तीन मूल रगो के मेल से बनता है-लाल, नीला ओर हरा। दृश्य को इन्ही तीन रगा के
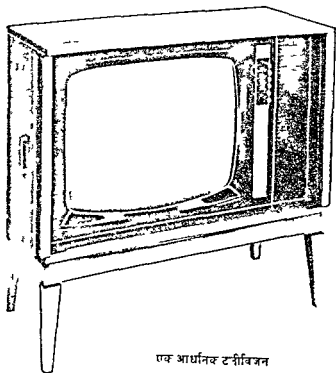
एक आधुनिक टलीविजन
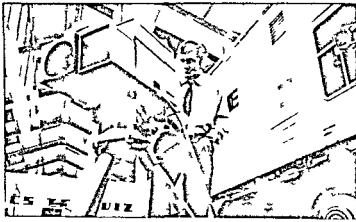
एक आधुनिक टलीविजन कैमर म कायक्रम प्रसारण

खण्डो मे विभाजित किया जाता हे। तीनो मूल रगो के हिस्से तीनअलग-अलग केमरो के स्क्रीन पर डाले जात हैं। ये तीनो केमरे रगो के अनुरूप विद्युत-धाराओ क तीन क्रम उत्पन्न करते है। फिर ये स्वतत्र रूप स रेडिया तरगो के ऊपर सवार करके प्रसारित कर दिए जाते ह।

रगीन टेलीविजन सेट मे अलग-अलग रगो के लिए तीन इलेक्ट्रॉन-गने होती हैं। ये गन विद्युत-धारा म से अपने क्रम वाली तरगे चुनकर उन्हे इलक्ट्रॉन-पुजा क रूप म स्क्रीन पर एक साथ प्रक्षेपित करती हैं। तीन पक्तियो मे से प्रत्येक पक्ति के कण अलग-अलग रगो का प्रकाश स्क्रीन पर डालते है। तीना रगो के मेल से स्क्रीन पर रगीन दृश्य उभर आता है।

टलीविजन प्रसारण का क्षेत्र बढान क लिए आजकल दा प्रणालिया अधिकतर अपनायी जा रही ह। पहली माइक्रावव प्रणाली तथा दसरी सचार उपग्रह प्रणाली।

माइक्रावव प्रणाली द्वारा टलीविजन क कायक्रम प्रसारित करन की सक्षिप्त कायप्रणाली इस प्रकार ह-जिस कायक्रम का टलीविजन पर दिखाना होता ह, वहा स चित्र आर आवाज की तरग माइक्रोवव डिस्क द्वारा टलीविजन सटर म भजी जाती ह। केन्द्र पर लगी दूसरी माइक्रावव डिस्क उन्ह ग्रहण करती ह। टेलीविजन कन्द्र के टावर से ये तरगे मास्टर स्विचिंग रूम (एम एस आर) म पहुचती ह।

यदि कायक्रम का अन्य कन्द्रो से भी रिले करना हो ता य तरग एम एस आर से कोएक्सियल केबल जो जमीन क अदर बिछी होती ह उसके द्वारा पोस्ट एड टेलीग्राफ के माइक्रावेव म पहुचती ह। फिर माइक्रोवेव डिस्क क जरिए इन्हे दूसरे केन्द्र तक भेजा जाता हे। एक केन्द्र स दूसरे के मध्य मे हर सौ किलामीटर पर एक रिपीटर स्टशन होता है। ये रिपीटर स्टेशन तरगो को आग बढाते रहते हे। उदाहरण के तौर पर बम्बई से दिल्ली के टेलीविजन केन्द्र तक 26 रिपीटर स्टेशन है। यदि बम्बई से कोइ कायक्रम दिल्ली के लिए प्रसारित किया जाता ह, तो तरगे एक क बाद एक इन्ही रिपीटर स्टेशनो से होती हुइ दिल्ली केन्द्र तक पहुचती ह। दूसर
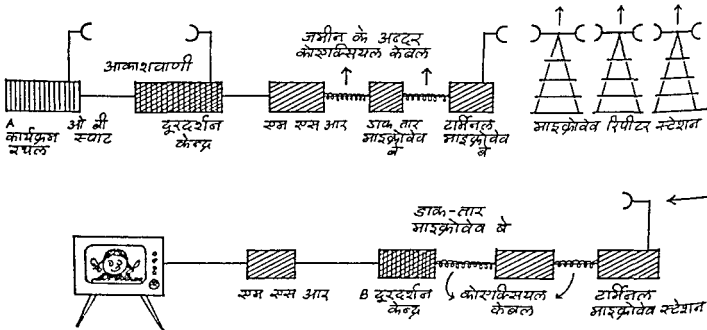
टलीविजन प्रसारण की माइक्रावव प्रणाली का सरल चित्र
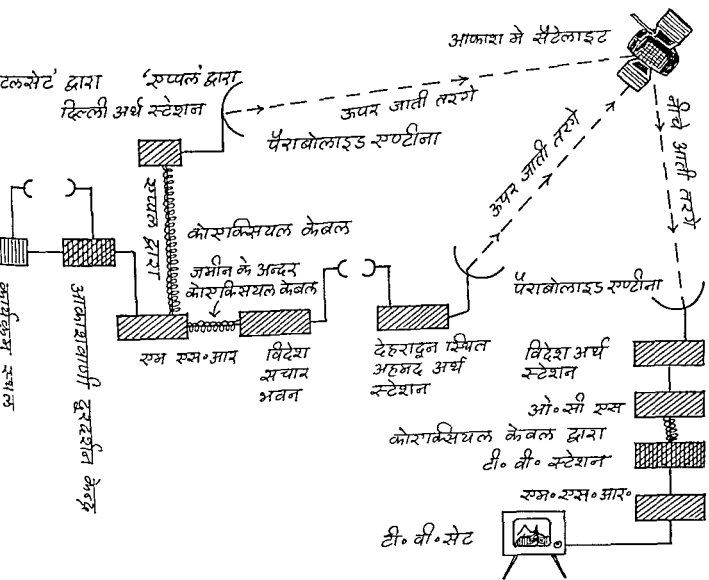
टलीविजन प्रसारण की सैटलाइट प्रणाली का एक सरल चित्र

क द्र के एम एस आर पर पहुचकर ये तरगे टेलीविजन सिस्टम से होती हुई टेलीविजन सेट तक पहुचती है।

सेटलाइट द्वारा टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए जिस स्थान का कायक्रम दिखाना होता है, वहा भी माइक्रोवेव डिस्क की व्यवस्था की जाती है। उदाहरण के तौर पर यदि दिल्ली के किसी कायक्रम को विदेश अथवा बहुत दूर के शहर मे प्रसारित करना हो तो दिल्ली के आ बी स्पॉट से माइक्रोवेव डिस्क द्वारा दिल्ली टेलीविजन से एम एस आर की ओर तरगे भेजी जाती हैं। वहा से उन्हें जमीन के अदर बिछे कोएक्सियल केबल के माध्यम से दिल्ली क विदेश सचार भवन मे भेजा जाता है। उसके पश्चात उन्हे माइक्रोवेव डिस्क के माध्यम से देहरादून मे लगे अथ स्टेशन की ओर भेजा जाता है। वहा स्थित पराबोलायड एटेना के माध्यम से आकाश मे स्थित सैटेलाइट की ओर तरगे भेजी जाती हैं। उसके बाद सटेलाइट से इन तरगो को उस देश का सचार माध्यम प्राप्त कर शेष पूर्वविधि से उसे अपने टेलीविजन केन्द्रो से प्रसारित करने की व्यवस्था कर लेता है।

हमारे दश मे इन दोना ही सचार प्रणालियो का उपयोग टेलीविजन क कायक्रम सारे देश म प्रसारित करने क लिए किया जा रहा है।

टेलीविजन मे क्रातिकारी विकास

वेज्ञानिको ने एक नयी तरह की विधि का भी विकास किया हे। एक विशेष प्रकार के एटेना का निमाण किया गया हे, जो विश्व के किसी भी स्थान से किसी भी सचार उपग्रह से सिग्नलो को ग्रहण करके सीधे टेलीविजन स्क्रीन पर दिखा सकता ह। इस विधि से आप विश्व क किसी भी देश मे हा रहे टलीविजन कार्यक्रम को देख सकते हे।

एक ओर नए तरह का टेलीविजन सेट विकसित किया गया हे, जो एक साथ दो कार्यक्रम टेलीविजन स्क्रीन पर प्रेषित करता हे। टी वी के बडे स्क्रीन के मध्य मे नीचे की ओर एक छोटा-सा स्क्रीन होता हे, जिस पर अलग से कायक्रम आता हे। यदि कोइ रोचक कार्यक्रम देखन के साथ-साथ आप उस दिन चलने वाले क्रिकेट मेच का भी आनद लेना चाहे तो इस प्रकार का टी वी हाजिर हे।

दो कायक्रम एक साथ दिखाने वाले इस टेलीविजन सेट का प्रचलन यूरोप के देशा मे हो चुका हे।

इलक्टॉनिक यत्रो का आकार वाल्वो के स्थान पर ट्रॉजिस्टरो और ट्रॉजिस्टरा के स्थान पर सिलिकोन चिप्स का विकास करके घटाया गया। अब एक ओर नये विकास का तेजी क साथ आगमन हो रहा हे। इस नये विकास का नाम 'ऑप्टिकल फाइबर' हे। अमेरिका की बेल लेबोरेटरीज मे इसके विकास पर जोरशार से कार्य हो रहा हे।

किसी भी घर की सचार लाइन मे यह ऑप्टिकल फाइबर नामक सूक्ष्म यत्र लगा देने से अनेक सचार चैनलो से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता हे। एक ही
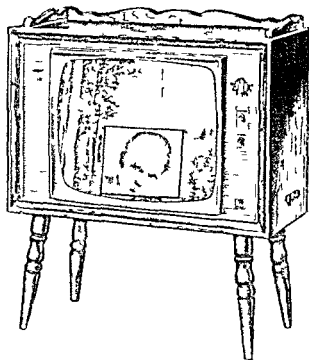
टेलीविजन स्क्रीन पर एक साथ दा कार्यक्रम प्रसारित

लाइन से टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर आदि जोडे जा सकते ह। महिलाए बटन दबाकर बाजार म वस्तुओ का भाव मालूम कर घर बेठे ही आर्डर भी द सकती ह। टेलीविजन पर मनचाहे कार्यक्रम, बाजार भाव बच्चो की शिक्षा मे सबधित उपयोगी कायक्रम, टेलीफान पर वार्ता, रेडियो पर कार्यक्रम, कम्प्यूटर म पहले से सेट किए गए कार्यो आदि को एक ही लाइन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। कम्प्यूटर पहले से सेट कार्यो को समय-समय पर टी वी के पर्दे पर पेश करता रहेगा। इस प्रकार 'ऑप्टिकल फाइबर' से होन वाली क्रांति का क्षेत्र बहुत विस्तत हे।

वीडियो कैसेट रिकार्डर का आविष्कार
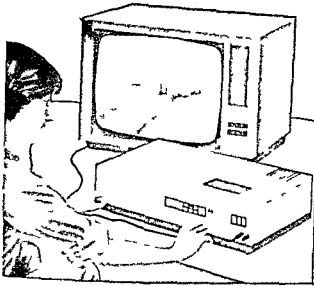
वीडियो सेट

जब से चुम्बकीय टेप पर ध्वनि रिकार्डिंग की प्रणाली विकसित हुइ ओर टेप-रिकार्डर का आविष्कार हुआ, तभी से वज्ञानिक चुम्बकीय टेप पर दृश्यो को टेप करने की विधि विकसित करने मे गभीरता से परीक्षण करने म जुट गए।

इस कार्य मे रेडियो कार्पोरेशन ऑफ अमेरिका (आर सी ए) के अनेक वैज्ञानिका ने कठिन परिश्रम करक सन् 1953 मे रगीन और सादे-टेलीविजन कायक्रमो को चुम्बकीय टेप पर रिकार्ड करने की प्रणाली विकसित कर ली और उसका सफल प्रदर्शन किया।

ध्वनि सवेगो को रिकार्ड करना सरल था, लेकिन दृश्य सवेगा को रिकाड करने का कार्य साधारण नही था। लेकिन इन दोनों को रिकार्ड करने के तरीके मे कोई खास बुनियादी अतर नही था। ध्वनि रिकार्डिग के लिए टेप की दर 16000 हर्ट्ज थी, परतु दृश्य रिकार्डिग के लिए यह दर कम से कम 50 लाख हर्ट्ज होनी आवश्यक थी। रगीन रिकार्डिग के लिए ता इससे भी दोगुनी दर की आवश्यकता होती है। वीडियो टेप प्लास्टिक की एक पतली टेप होती है, जिस पर आयरन आक्साइड की एक बहुत ही पतली तह चढी होती हे। टेप की चोडाई 1 25 से 2 5 से मी होती है। किसी भी कार्यक्रम को रिकार्ड करने के लिए टेप रिकार्डर पर टेप को चलाया जाता हे। टेप करते समय टेलीविजन केमरा चित्रो को विद्युत सदेशो मे बदल देता है। उसी समय एक माइक्रोफोन ध्वनियो को विद्युत सदेशो मे बदल देता है। ये दोनो सदश टेप-रिकार्डर के हैड द्वारा चुम्बकीय क्षेत्र मे बदल जाते हे, जिससे टेप पर चुम्बकीय पेटर्न बन जाते हें, जो कार्यक्रम की प्रतिलिपि मात्र होते ह। इमी टेप को अब मूल ध्वनि को सुनने ओर चित्र को देखने के लिए प्रयोग किया जाता है।

वीडियो टेप-रिकार्डर की मशीन अमरीकी टेलीविजन स्टूडियो मे सन् 1958 मे लगायी गयी। अनेक कार्यक्रमो को वीडियो टेप पर रिकार्ड कर पुन प्रसारित करने के परीक्षण किए गए जो काफी सफल रहे। टेलीविजन पर दिखायी जाने वाली फिल्मो को वीडियो टेप पर स्थानातरित कर उसे भी सफल रूप से प्रदर्शित किया गया।

इसके बाद वीडियो कैसेट रिकार्डर का विकास हुआ। घर या स्कूल के टेलीविजन सेट से इस मशीन के द्वारा
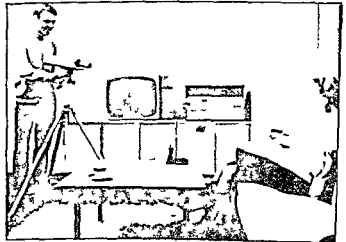
वीडियो कैसेट म शूटिग
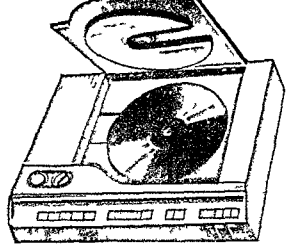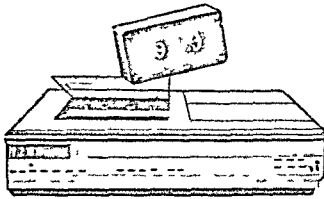
वीडियो कैसट और वीडियो डिस्क रिकाडर

टेप पर आरेखित कार्यक्रमो का पुन दृश्य रूप मे परिवर्तित किया जा सकता था। इस तरह अपनी पसद का कायक्रम टेलीविजन पर वीडियो कसट रिकाडर (वी सी आर) द्वारा किसी भी समय देखा जा सकता था।

वीडियो टप की सबसे बडी विशेषता यह ह कि इसके टेप को धोने या प्रिंट करन की आवश्यकता नही रहती ओर इसे ज्यो का त्या प्रदर्शित किया जा सकता ह। इसके अतिरिक्त एक ही टेप को साफ करके इस पर कइ बार कायक्रम रिकार्ड और प्रदर्शित किए जा सकते हे। अत वीडियो टेप प्रणाली के प्रयोग से फिल्म उत्पादन का खर्च काफी कम हो गया।

आज वीडिया ने विश्व के देशा मे हलचल मचा रखी हे। वी सी आर सेट को एक तरह से छोटा-सा टेलीविजन-कद्र कहा जा सकता ह। जिस प्रकार हम दूरदर्शन केंद्र से प्रसारित कार्यक्रमो को टेलीविजन पर देखते हें उसी प्रकार वीडियो द्वारा इच्छित टेप लगाकर टेलीविजन पर कार्यक्रम देखे जा सकते हैं। भारत के कई शहरो मे आज वी सी आर प्रयाग मे लाये जा रहे हैं।

वी सी आर मे जिस प्रकार वीडिया केसेट टेप पर चित्राकन कर कायक्रम टेप किए जाते हें, उसी तरह वीडिया डिस्क पर भी कायक्रम रिकाड किए जाते हैं। वीडियो डिस्क बिल्कुल लाग प्ले रिकाड की तरह होती है। परन्तु इस पर रिकाड किया गया कायक्रम हटाकर दूसरा भरा नही जा सकता, जबकि वीडियो कैसेट पर कायक्रम कइ बार टेप किए जा सकने हें। वेसे वीडिया डिस्क वीडिया टेप स सस्ती होती है, परन्तु घरेलू उपयाग क लिए वीडियो डिस्क उपयुक्त नही है। वैस यह सही है कि वीडिया डिस्क पर रिकाड कायक्रम बडे ...पित और बढ़िया ध्वनि वाल हाते हें तथा लम्बे समय तक सुरक्षित रख जा सक्त हें। वीडिया डिस्क का उपयाग आद्योगिक आर शिक्षा क क्षेत्र मे बहुत अच्छी तरह हो सकता ह। वीडियो डिस्क क लिए वी सी आर विशेष प्रकार का होता है। कसट वाले वीडियो रिकाडर मे वीडियो डिस्क का इस्तमाल नही हा सकता। वीडियो डिस्क के भी कइ प्रकार होत ह।

रिमोट कट्रोल

रिमोट कट्रोल का अथ है दूर स किसी यत्र पर नियत्रण रखना। ऐसे यत्र को रिमोट कट्रोलर या दूरस्थ नियत्रक कहा जाता है।

रिमाट कट्रालर दो प्रकार के हाते हें। एक प्रकार के तो इलेक्ट्रिक केबल से सम्बद्ध होते हं और दूसरी प्रकार क अदश्य इन्फ्रारेड किरणा की सहायता स टेलीविजन या वीडिया रिकाडर पर नियत्रण रखते हें।

इन्फ्रारेड किरणो क आधार पर काय करनेवाला रिमाट कट्रोलर सोर्स कोड प्रणाली की तरह ही प्रकाश सकत के रूप म सूचना-निर्देश टलीविजन सट तक पहुचाता हे। टेलीविजन मे विशष प्रकार का यत्र इन्फ्रारड किरणा क सकेता क निर्देशानुसार उन सकतो को प्रकाश सकेता आर बाद म विद्युत-सकता मे परिवतित कर देता है। इसके बाद स विद्युत-सक्त टेलीविजन म दूसर उचित यत्र तक पहुचकर उसक अनुसार टलीविजन क अन्य यत्रा का नियत्रित करते हें।

इस प्रकार टेलीविजन या वीडिया सट से दूर बठ-बैठे ही रिमोट कट्राल पद्धति स उस नियत्रित या ऑफ किया जा सकता है। आजकल जितन भी वीडिया सेट आ रह हैं, रिमाट कट्राल व्यवस्था से यक्त है।

फोटोग्राफी का आविष्कार

ब्लक एण्ड व्हाइट फोटोग्राफी का आविष्कार फ्रास क लइ दाग्युर आर रगीन फोटाग्राफी का आविष्कार भी फ्रास के ही एक अन्य युवक गब्रिएल लिपमन न किया था।

अठारहवी शताब्दी मे वज्ञानिको न कछ एस रसायनिक पदार्थो को पता लगाया जा धप के प्रभाव म चित्र उभार सकते थे। सन 1760 म एक फ्रासीसी यवक ताइफ दि लाराश न अपनी एक पस्तक म एक एस ही पदाथ सिल्वर नाइट्रट म प्रकाश क माध्यम म चित्र उभारन का उल्लेख किया था। हाइडाजन गब्बारे क आविष्कारक प्राफेसर चार्ल्स न सिल्वर क्षारा की मदद स अनक छाया चित्र बनाकर दिखाए।

सन 1811 म फ्रास के एक भूतपूव सनिक अधिकारी निसफार नाइस ने प्रकाश सबधी रसायना पर अनेक प्रयाग किए परत वह फोटोग्राफी विकसित करन म सफल न हो सका। फिर भी उसन दा महत्त्वपूण काम किए। पहला उसने 'फोटोग्राफी' शब्द का जन्म दिया। दूसरा उसने चित्र उतारन के लिए सबसे पहले 'केमरा आब्स्यारा' अर्थात् 'अध-कक्षा' क प्रयोग की महत्त्वपूर्ण बात सझायी।
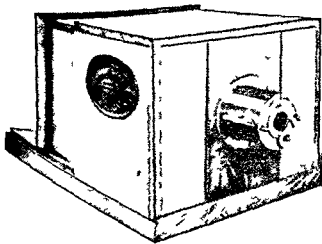
दाग्यरे का प्रथम आब्स्योरा कैमरा

फोटोग्राफी क आविष्कारक दाग्यरे

सन् 1869 मे गाम्बातिस्ता देला पोर्ता नाम के एक इटालियन भौतिकविद् ने एक बडा आब्स्योरा केमरा बनाया। इसके अध-कक्षा के ऊपरी भाग मे एक छेद था और इस छेद के पीछे एक कॉनवेक्स (उत्तल) लेस लगाया गया था। इसके ऊपर क्षैतिज रेखा मे 45 अश क कोण पर एक दर्पण लगाया गया था। इस व्यवस्था से प्रकाश की किरणे नीचे की ओर लम्बवत परावर्तित हो जाती थीं। यह केमरा आज भी एडिनबरा के सग्रहालय मे रखा है।

निसेफार नाइस को इस विषय पर काम करते लगभग बीस वष हो चुके थे। तभी उसक सम्पर्क मे लुइ जक मादे दाग्युरे नामक एक व्यक्ति आया। वह भी इसी विषय पर काय कर रहा था। अब दोना न मिलकर इस विषय पर काम करना आरम्भ किया। दाग्युरे ने कुछ प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला कि चित्र उतारने की

35 एम एम का आधुनिक कैमरा
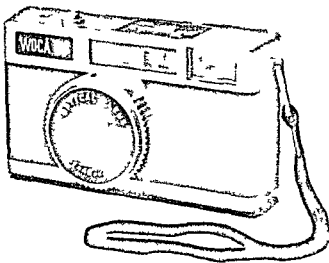
विधि म इस्तेमाल किए जाने वाले पदाथ सिल्वर नाइट्रेट स सिल्वर आयाडीन अधिक उपयोगी है। उधर नाइस ने फाटोग्राफी क काम मे आने वाला केमरा ओर भी निर्दोष बना लिया था, परतु दुर्भाग्यवश इमी बीच नाइस की मृत्यु हो गयी। दाग्युरे अपने प्रयोगा मे लगा रहा। नाइस के अनुभव से उसने वहुत कुछ सीख लिया था।

एक दिन दाग्युर ने एक आश्चर्यजनक नजारा देखा। उसने कुछ दिन पहले कुछ तेयार प्लट एक जगह रख दी थी। बहुत दिन तक प्रयाग मे न लाने के कारण वह यह मान बेठा था कि ये प्लटे खराब हा गयी होगी। उसने उन्हे धाकर दुवारा काम मे लान के उद्देश्य से उठाया तो वह यह दखकर चकित रह गया कि इन प्लेटो पर कुछ स्पष्ट चित्र उभरे हुए थे। आखिर यह सब कुछ केसे हुआ? उसने वहा रखा सब सामान उलट-पलट कर देखा-तो पाया कि प्लेटो के नीचे एक दरार-सी थी, जिसमे से पारे की कुछ छोटी-छोटी बूदे चमक रही थी। उसके मस्तिष्क मे एक विचार कोधा। उसने एक प्लेट को कुछ देर धूप मे रखने के बाद जब अधेरे कमरे मे एक गम बर्तन मे पारा रखकर उसके ऊपर रखा तो चित्र जादू की तरह उभर आया। उसने उस सोडियम सल्फेट म धोकर पक्का कर दिया। अपनी इस आकस्मिक खोज का प्रदशन उसने अकादेमी ऑफ साइस के सचिव प्रसिद्ध भौतिकविद् फ्राकाइ आर्गो के सामने किया। चित्र उतारने की पद्धति का आविष्कार करन के लिए उसे अकादेमी द्वारा सम्मानित किया गया।

आरम्भ मे चित्र उतरवान के लिए कमरे के सामने, धूप मे आधे घटे के लगभग बठ रहना पडता था।

कुछ दिना बाद विल्टशायर के एक युवक लकाक ऐबी न कागज पर चित्र उतारने आर निगेटिव तथा पॉजिटिव बनान की प्रक्रिया का सूत्रपात किया। दाग्युरे क कमर म सीधा पॉजिटिव चित्र बनता था जिसमे आर प्रतिया बनाना सभव न था।

दाग्युर के साथी नाइस क भतीजे न निगटिव क लिए कागज के इस्तेमाल के स्थान पर शीश की प्लट का इस्तमाल किया। इससे फाटाग्राफी की कला का आर भी तेजी म विकास हआ।

सन् 1871 मे दा अग्रजा डा आर एल मडाक्स आर सर जोजेफ विल्सन स्वान ने फोटा खीचन के लिए जिलटिन इमल्सन आर सवदी सिल्वर ब्रोमाइड के मिश्रण स सूखी प्लेटे तेयार करने की विधि निकाली ताकि बाहरी

120 का एक आधुनिक कैमरा
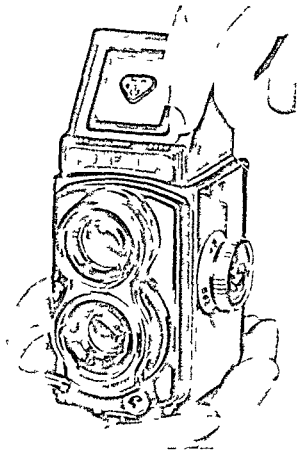
फोटोग्राफी के लिए इन्हे सुरक्षित रूप से ले जाया जा सके। सन् 1891 मे ईस्टमैन और उसके साथी हैनिबाल गुर्डविन (अमरीका) ने फोटोग्राफी के लिए सेलुलाइड का उपयोग कर सवेदी फिल्म बनाने का आविष्कार किया। इस रोल फिल्म को कैमरे मे लगाया जा सकता था और कई फोटो खीचे जा सकते थे।ईस्टमैन ने एक छोटे आकार का 'कोडक' कैमरा शौकिया लोगो के लिए निर्मित किया। इससे एक सेकण्ड के छोटे से अश मे ही शटर दबाकर तस्वीर खीची जा सकती थी। फ्लैश सिस्टम ने धूप की रोशनी का झझट भी दूर कर दिया। आज के आधुनिक कैमरो मे शूटिंग सम्बधी ढेरो सुविधाए रहती है।

स्टीरियोस्कोप अथवा त्रिविमितिदर्शी फोटोग्राफी का आविष्कार 1855 मे एक अग्रेज वैज्ञानिक सर चार्ल्स व्हीटस्टन ने किया था। स्टीरियोस्कोप फोटोग्राफी की विधि मे दो लेस अलग-अलग चित्र खीचते है। जब इन प्रिंटेड चित्रो को देखा जाता है, तो ये स्वाभाविक गहराई से युक्त दीखते हैं। आजकल त्रिविमितीय फोटोग्राफी की आधुनिक विधि का नाम 'होलोग्राफी' है। इसके लिए लेसर किरणो का प्रयोग किया जाता है।

फोटोग्राफी का उपयोग आजकल मुद्रण नक्शो के निर्माण आदि मे भी हो रहा है।

एक अन्य क्रातिकारी आविष्कार है-एक्सरोग्राफी। एक अमरीकी वैज्ञानिक चेस्टर कार्लसन ने इसका आविष्कार 1940-50 के मध्य किया था। फोटोग्राफी की इस प्रणाली मे निगेटिव प्लेटो का इस्तेमाल बार-बार किया जा सकता है और फोटो को किसी भी प्रकार के कागज पर प्रिंट किया जा सकता है। प्रिंटिंग प्रोसेस मे किसी भी प्रकार के तरल द्रव का इस्तेमाल नही किया जाता।

इस विधि मे धातु की एक चादर पर एक प्रकाश-सवाही (Light Convection) लेप का इस्तेमाल किया जाता है। प्रकाश सवाहकता एक विशेष प्रकार का प्रकाश विद्युत प्रभाव है। इसमे सेलेनियम जैसे कुछ खास पदार्थों की विद्युत सवाहकता इन पर पडने वाले प्रकाश से तेजी के साथ बढ जाती है। प्लेट पर लगा लेप अधकार मे विद्युत आवेपित हो जाता है। इसे किसी बिम्ब पर एक्सपोज करने के बाद पाउडर बुरका जाता है। पाउडर से निर्मित स्थिर प्रतिबिम्ब किसी भी कागज पर उतार लिया जाता है।

रगीन फोटोग्राफी

रगीन फोटोग्राफी का आविष्कार किसी एक व्यक्ति का नही बल्कि कई व्यक्तियो के मिल जुले प्रयास का परिणाम है। इनमे मुख्य रूप से गेटे, लिपमेन, ईस्टमैन, टॉमस यग आदि का नाम लिया जा सकता है।

गेटे ने सबसे पहले 1812 मे अपने शोध लेख 'प्रकाश का सिद्धात' मे सिल्वर क्लोराइड पर रगीन प्रकाश के प्रभाव का उल्लेख किया था। एक अग्रेज टॉमस यग ने एक सिद्धात के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि तीन मूल या बुनियादी रगो का यदि अलग-अलग अनुपात मे लेकर मिश्रित किया जाए तो सभी प्रकार के रग बनाए जा सकते हैं।

चार्ल्स क्रास नाम के एक फ्रासीसी ने पहली बार यग-हैल्महोल्ज के सिद्धात पर रगीन फोटो लिए। चार्ल्स क्रास के एक अन्य साथी ड्यूको दुआरो ने एक दूसरे ही तरीके को अपनाया।इसमे वैसे तो मूल रगो के तीन फिल्टरो का इस्तेमाल किया गया लेकिन नेगेटिवो को पूरक रगो मे रगा गया, जैसे—हरा लाल का पूरक और बैंगनी नीले का आदि। इन नेगेटिवो को चित्र प्रिंट करने

ससार का सबसे छोटा मिनोक्स पॉकेट कैमरा

क काम मे लाया जाता ह आर फिर सुपर इम्पोजिशन द्वारा रगा को पलट दिया जाता ह, लकिन अमरीका, जमनी, इटली, ब्रिटेन आदि देशो म एक नयी तकनीक म रगीन फोटो खीच जाने लगे। इन फिल्मो मे इमल्सन की तीन परते होती हे। इनमे एक नीले रग के प्रति मवदनशील होती हे, दूसरी केवल हरे आर तीमरी कवल लाल के प्रति सवेदनशील हाती ह। नेगटिव फिल्म क तीन इमल्सनो की तरह पोजिटिव बनाने वाले कागज पर भी तीन ही इमल्सन हाते ह।

मिनमा उद्योग के तेजी से विकाम के कारण मिनफाटोग्राफी क लिए उपयुक्त रग प्रणाली का भी विकाम हआ। अनेक वर्षो तक परीक्षण करने के बाद *मन 1926 म तीन वज्ञानिको डी एफ कामसटाक,* डब्ल्य वी वेस्टकॉट आर एच टी केलमम ने अपनी नयी रग प्रणाली से तेयार की गयी पहली फिल्म बोस्टन म प्रदर्शित की। प्रदशन सफल रहा आर इन तीनो वज्ञानिको ने अगल सात-आठ वर्षा मे इसे आर विकसित कर निर्दोष बनाया। प्रमिद्ध चित्रकार आर कार्टूनिस्ट वाल्ट डिजनी ने 1933 मे पहली टेक्नीकलर काटन-फिल्म 'फ्लावस एड टीज' का प्रदर्शन किया। टेक्नीकलर प्रणाली को बहुत जल्द अमरीका आर ब्रिटेन के फिल्म निमाताओ न अपना लिया।

टेक्नीकलर प्रणाली मे चित्र खीचन के लिए एक विशष कमरे का उपयोग किया जाता ह। इसम लस म प्रवश करने वाली प्रकाश-किरण इस प्रकार अलग-अलग बट जाती ह कि एक समान समय म तीन फिल्म एक्सपाज होती ह। एक प्रकाश के हरे तत्त्व का चित्रित करती ह दूसरी लाल को तथा तीसरी नील को। इन तीना मपटका अथात् मट्रिक्स (Matrix) म एक चाथा मख्य चित्र काले आर सफेद रग मे बनता ह, फिर इन चारा फिल्मा को एक पर प्रिंट कर लिया जाता ह।

इसके बाद एक ही फिल्म की तीन वण-मवेदी (Colour-sensitive) *पर्तो का प्रयाग म लान वाली* एक आर प्रणाली-मोनोपेक प्रणाली ने जन्म लिया, जिसे 'कोडाक्राम' कहा जाता हे। इसे 1923 मे अमरीका के लियो गोडाव्म्की ओर ल्योपाल्ड नामक युवको ने विकमित किया आर 1935 मे यह फिल्म बाजार मे आयी। फिर जर्मन अगफा-कलर प्रणाली आयी जा 1936 मे प्रचलित हुई। उसके बाद से अनेक मानोपेक प्रणालिया काम म आती रही हे।

विशालाकार जम वाला आधुनिक कैमरा
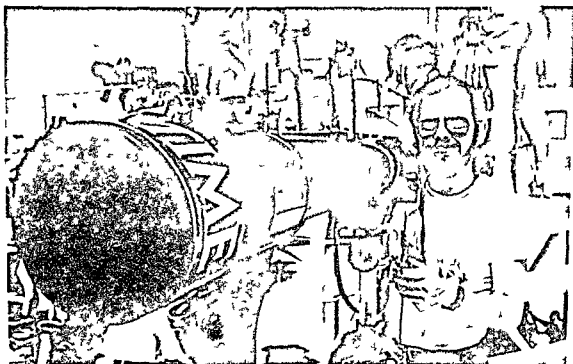
चलचित्र का आविष्कार

चलचित्र यानी सिनेमा के आविष्कार का श्रेय किसी एक व्यक्ति को नही जाता। इसके विकास मे कई आविष्कारको का योगदान रहा है। लेकिन इतना अवश्य हे कि चलचित्र के जन्म का श्रेय किसी हद तक लुमिये बधुआ (फ्रास) को दिया जा सकता है। हालाकि लुमिये बधुओ से पहले एडीसन, माइब्रिज तथा फ्रीज ग्रीन आदि अनेक वैज्ञानिको ने इस क्षेत्र मे कार्य किया।

चलचित्र या सिनेमा की कहानी 1830 से आरभ होती हे। अनेक व्यक्तियो ने ऐसे घूमने वाले चक्र बनाए जिनके ऊपर चित्र बने होते थे और जब उन्हे घुमाया जाता था तो ये चित्र चलते-फिरते प्रतीत होते थे। चलचित्र का यह आरम्भिक रूप था। इसके बाद अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने 'काइनेटो स्कोप' नामक एक यत्र बनाया। इसमे लगाने के लिए

एक आरंभिक मूवी कैमरा

टॉमस अल्वा एडिसन
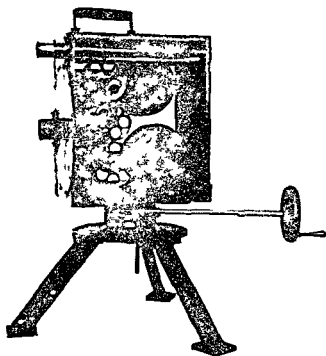
उसने 158 प्लेटो पर विभिन्न क्रमबद्ध मुद्राओ के फोटो खीचे, जो एक प्रणय-दृष्य से सबधित थे। गत्ते पर छपे इन चित्रो की एक रील बनाकर इस यत्र मे फिट की गयी। एक गोल छेद मे से जब ये चित्र तेजी से एक-एक कर दर्शक की दृष्टि से गुजरते, तो इनमे गति के कारण सजीवता आ जाती ओर स्त्री-पुरुप चलते-फिरते नजर आते।

1880-90 मे ब्रिस्टल के रहने वाले विलियम फ्रीज ग्रीन नामक अग्रेज फोटोग्राफर ने चलते फिरते चित्रो पर अनेक प्रयोग किए। उन्होने चित्रो के लिए प्रकाशग्राही इमल्सन के लेप वाले सेलुलाइड फिल्मो का इस्तेमाल किया। उन्होंने एक फर्म से अपना कैमरा और प्रोजेक्टर बनवाया और एक पार्क मे जाकर कैमरे से कुछ फुट लम्बी एक फिल्म तैयार की। उसे अपनी प्रयोगशाला मे धोकर उन्होने जब फिल्म से प्रोजेक्टर पर चढ़ाकर पर्दे पर देखा, तो वे खुशी से उछल पडे। पर्दे पर बच्चे स्त्री-पुरुप, घोडे आदि दौडते भागते नजर आ रहे थे जैसे वे सचमुच के हो। परन्तु विलियम फ्रीज ग्रीन को अपने आविष्कार का विकास करने और पेटेट कराने के

एडिसन का काइनटोस्कोप

लिए तत्काल धन न मिल सका। आर्थिक दबाव बढने से उन्हान अपना ध्यान इस चलचित्र प्राजेक्टर स हटा लिया आर दूसर कार्यो म लग गये। एक अन्य आविष्कारक आगस्तिन लीप्रिंस (फ्रास) न भी इस दिशा म काफी प्रगति कर ली थी, परन्तु एक दुघटना म उनकी मृत्यु हा जाने स काम वही रुक गया। 1890-1899 मे दा जर्मन आविष्कारको क्लाडानोव्सकी बधुआ न अपन एक अन्य साथी सी फ्रासिस जेनकिन्स के साथ मिलकर चल कमरा और प्राजक्टर तथा कइ छाटी-छाटी फिल्म बनान मे सफलता प्राप्त की। परन्तु वे भी इसका सफल प्रदशन करन म असफल रह।

इस आविष्कार को त्रुटिहीन बनान का श्रेय लुमिय बधुआ को ही गया। 28 दिसम्बर 1895 को उन्होने अपने प्राजक्टर से एक कैफे म पहला व्यावसायिक प्रदशन किया। उन्होंन अपने इस प्रोजेक्टर का सिनमटोग्राफ का नाम दिया था। उनका यह चलचित्र प्रदशन इतना चर्चित हुआ कि उन्हे फ्रास के अलावा अन्य देशो मे भी प्रदशन के निमत्रण मिलने लगे।

लुमिय न ही सबस पहले फिल्म की चाडाइ का मानक 35 मि मीटर रखा जा आज भी प्रचलित ह। उस समय के सभी चलचित्र मूक हात थ।

ससार का पहला व्यावसायिक सिनमा घर फ्रास म खोला गया था। शहरा मे बडे-बड पोस्टरा पर लुमिये बधुओ का सिनमा, लमिय बधुआ क फाटा सहित छपा रहता था। उनकी फिल्म रलगाडी का आगमन बहुत चली। उन्हान लगभग एक दजन छाटी-बडी फिल्म बनायी थी, जिनम नन्हे-मन्न का भाजन लोहार 'समुद्र तट पर स्नान आदि फिल्म काफी लोकप्रिय हुई। उनकी कुछ फिल्मे आज भी सरक्षित ह।

चलचित्र क साथ ध्वनि का होना बडा आवश्यक था। चलचित्र म ध्वनि लान क लिए अनक प्रयाग किए गए। 1906 मे एक अग्रज वज्ञानिक यूजीन ए लाउस्टे न चित्र ओर ध्वनि का एक साथ रिकाड करने का प्रयास किया। उसन फिल्म का आधा हिस्सा चित्र के लिए तथा आधा ध्वनि के लिए प्रयाग किया परतु वह ध्वनि का ठीक स

आविष्कारक ल्यूमियर

सिनेमाघर

रिकार्ड करने में असफल रहा। सबसे पहली बोलती फिल्म सन् 1927 में अमरीका के वार्नर ब्रदर्स ने बनायी। इस फिल्म का नाम था-दि जाज सिंगर।

वार्नर ब्रदर्स ने जिस प्रणाली का इस्तेमाल ध्वनि रिकार्ड कर उसे पुनः उत्पादित करने में किया वह आज भी मूलतः वही है। माइक्रोफोन करंट से ध्वनि कमरे में एक छोटे से विद्युत लैम्प के प्रकाश को घटाया-बढ़ाया जाता है तथा इस उतार-चढ़ाव को फिल्म के एक किनारे पर पतली पट्टी पर फोटोबद्ध कर लिया जाता है। इसकी भी दो विधियां हैं, एक में ट्रैक द्वारा भरे जाने वाले स्थान में फेर बदल होती रहती है। दूसरी विधि में ट्रैक की चौड़ाई तो स्थिर रहती है, लेकिन उसकी पारदर्शिता माइक से आने वाले संवेगों के अनुसार भूरे से लेकर काले रंग में परिवर्तित होती रहती है।

फिल्म के पॉजिटिव प्रिंट में चित्र और ध्वनि के ट्रैक एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं। सिनेमा प्रोजेक्टर में फिल्म 24 चौखट (फ्रेम) प्रति सेकण्ड की गति से चलती है। इससे पहले मूक फिल्मों में यह गति 16 चौखट प्रति सेकण्ड थी।

फिल्म के किनारे पर बने ध्वनि ट्रैक का सूक्ष्मावलोकन (Scanning) एक छोटा सा लेंस करता है। ट्रैक पर पड़ने वाला प्रकाश एक प्रकाश विद्युत सेल पर जाकर पड़ता है। यह आवक प्रकाश की मात्रा के अनुसार अपने भीतर से गुजरती हुई एक विद्युत करेंट का अधिमिश्रण (Modulation) करता है। यह अधिमिश्रण करंट प्रवर्धित होकर सिनेमा के लाउड स्पीकर में पहुंचकर पुनः ध्वनि में परिवर्तित हो जाता है।

1950-59 के मध्य चुम्बकीय टेप रिकार्डर के विकास के कारण फिल्म पर सामान्य ध्वनि ट्रैकों में परिवर्तित करना काफी सरल हो गया।

सन् 1855 में एक अंग्रेज भौतिकविद चार्ल्स व्हीटस्टन ने स्टिरियोस्कोप यानी त्रिविमितीय दर्शी फोटोग्राफी का आविष्कार किया। इसमें दो लेंसों से दो भिन्न स्तरों पर चित्र लिए जाते थे, जो एक साथ एक ही पर्दे पर प्रक्षेपित किए जाते थे। इस फिल्म को देखने के लिए भिन्न ध्रुवीकृत वाले लेंसों का प्रयोग दर्शकों को करना पड़ता था, ताकि वे दोनों बिम्बों को एक ही अंश पर देख सकें। परन्तु यह प्रणाली असफल रही।

35 मि मी चौड़ी फिल्म के बाद 70 मि मी वाली फिल्म का प्रयोग शुरू हुआ जिसमें दृश्य को विहंगम रूप में देखना सम्भव हुआ। परन्तु सिनेमा के पर्दे को 70 मि मी से ज्यादा चौड़ा करना उचित नहीं समझा गया। इसके लिए वक्र पर्दे का प्रयोग करना उचित समझा गया।

एक विकसित मवी केमरा
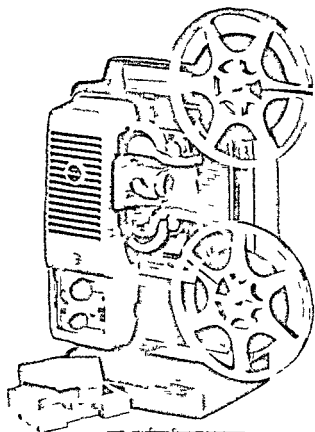
एक आधुनिक सिनमा प्राजक्टर

इसम अपक्षाकृत अधिक चोडाइ पर तथा कम ऊचाइ पर चित्राकन (Shooting) किया जाता है। फिल्म की चाडाइ 35 मि मी ही रहती ह। इसम एस प्रोजक्टर मे फि़ल्म दिखायी जाती ह, जा लम्बाई क क्रम से न चलकर पार्श्विक गति म चलती हे। इसक लिए प्रोजेक्टर म एनामार्फिक लेस लगा दिया जाता हे जो फिल्म का फेलाकर 70 मि मी वाले पर्दे पर प्रक्षेपित करता ह आर चित्र बिल्कुल 70 मि मी वाली फिल्म की तरह विहगम दिखायी पडत ह।
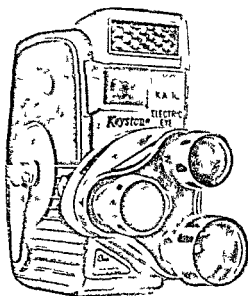
एक अन्य पद्धति 'सिनरामा' का आविष्कार 1937 से 1952 के मध्य एक अमरीकी व्यक्ति फ्रेड वालर ने किया। इस पद्धति में तीन समकालित केमरा आर प्रोजेक्टरा का इस्तेमाल किया। इसका स्क्रीन विशाल आयतना क एक अर्ध चद्राकार वाला हाता हे जो दर्शका को तीन ओर से लगभग घर सा लता है। दर्शका का दृश्य वास्तविक रूप म दिखायी पडता ह।

भारत म मबस पहले बनन वाली फिल्म राजा हरिश्चन्द्र थी, जा 1913 म दादासाहब फाल्क न बनाइ थी। 'आलम आरा' भारत की पहली बालती फिल्म थी।

होलोग्राफी का आविष्कार

लेसर का उपयोग करने वाली नयी फोटो पद्धति होलोग्राफी है।

होलोग्राफी जैसी चमत्कारी फोटोग्राफी का विकास लेसर के आविष्कार के बाद ही संभव हो पाया। सन 1954 में सबसे पहले अमरिका के चार्ल्स टाउनस ने परमाणुओं को उत्तेजित कर एक सी माइक्रो तरंग उत्पन्न करने और उन्हें तेज बनाने में सफलता पायी। यह 'मेसर' का आविष्कार था। उसके बाद सन 1960 में टाउनस और उनके साथी श्चावलो ने परमाणुओं को दूसरी विधि से उत्तेजित करने और प्रकाश तरंगों की तेजस्विता बढ़ाकर उन्हें समान कला में लाने का प्रयोग कर 'लेसर' को जन्म दिया।

लेसर किरणों पर उसके बाद अनेक प्रयोग किए गए और उन्हें विभिन्न विधियों से उत्पन्न किया गया। इनका फोटोग्राफी में इस्तेमाल सबसे पहले डॉक्टर डेनिस गेबर ने किया था। सन 1963 में डेनिस गेबर ने लेसर की सहायता से होलोग्राफी प्रणाली का विकास किया।

होलोग्राफी में त्रिविमितीय (Three dimensional) होलोग्राम निर्मित करने के लिए एक बिना एक्सपोज की हुई फिल्म को वस्तु के सामने रख दिया जाता है। उसके बाद लसर को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उसके अंशु का एक भाग फिल्म के ऊपर पडता है, जिसे होलोग्राम पट्टिका कहते हैं। शेष भाग एक अर्ध दर्पण में से वस्तु तक भेजा जाता है। इस प्रकार विक्षेपित लेसर अंशु तथा वस्तु द्वारा परावर्तित लेसर प्रकाश, ये दोनों ही होलोग्राम पट्टिका पर अपना प्रतिरूप बनाते हैं। इस प्रकार जो चित्र बनता है, वह बिल्कुल वास्तविक लगता है। यह चित्र त्रिविमितीय अर्थात्, वस्तु के सामने के भाग के अलावा दाएं-बाएं भागों का भी आभास कराता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि दर्पण से परावर्तित होकर लौटी हुई किरणें तथा वस्तु से
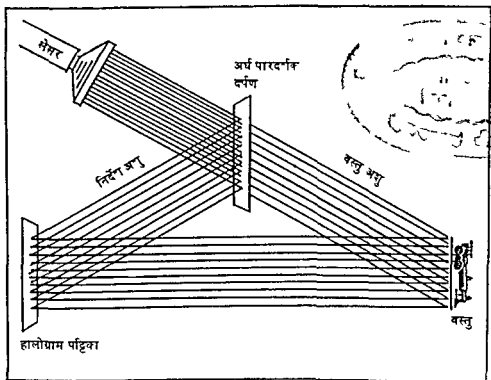
होलोग्राफी पद्धति द्वारा चित्र प्रेषण प्रणाली का एक सरल चित्र

टकराकर लौटी हुई किरणे सब एक ही तरग और लम्बाई की होती हैं। परन्तु वस्तु से लोटी हुई किरणे उसके विभिन्न अगो से टकराकर भिन्न-भिन्न अतर मे चलती हे और भिन्न-भिन्न कम्पन अवस्था मे फोटोग्राफिक प्लेट पर पहुचती हे। इस तरह प्लट के जिस स्थान पर वे एक ही कम्पन अवस्था मे पहुचती है, उस स्थान को अपेक्षाकृत अधिक काला कर दती है। ओर जिन स्थानो पर यह भिन्न-भिन्न कम्पन अवस्था म पहुचती हे, वहा एक किरण दूसरी का नष्ट कर दती है। फलस्वरूप प्लेट का वह हिस्सा कोरा रह जाता है। मध्य के स्थानो पर प्लेट कम-अधिक रूप मे प्रभावित स्थानो के मिलन से प्लेट पर काली-भूरी रेखाओ का एक जाल-सा निर्मित हो जाता है जो वास्तविक वस्तु का हू-ब-हू प्रतिरूप होता है। होलोग्राफी का यही सिद्धान्त है। अब इस प्रकार बने हुए चित्र को देखने के लिए इस प्लेट को उसी रग की लेसर किरणो से प्रकाशित किया जाता है।

अब तो ऐसे होलोग्राम भी बना लिए गए हें, जो साधारण सफेद रोशनी के माध्यम से भी दिखाए जा सकते है। साथ ही अब रगीन होलोग्राम भी बनाए जा सकते है।

होलोग्राफी के लिए लिपमेन नामक वेज्ञानिक द्वारा आविष्कृत एक विशेष प्रकार की फोटोग्राफिक प्लेट ने बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अपने इस आविष्कार पर उन्हे सन 1908 मे नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। लिपमेन ने अपनी यह विशेष प्लेट काच के ऊपर चादी के लवणो की एक काफी मोटी तह जमाकर तेयार की थी। फोटोग्राफी मे साधारणत प्लेट या फिल्म पर इसकी बहुत पतली तह जमायी जाती है। लिपमैन की फोटोग्राफिक प्लेट को कैमरे मे लगाकर चित्र खीचने से विभिन्न गहराइयो मे भिन्न-भिन्न रगो का प्रभाव पडता है और वहा प्लेट पर काला-भूरा रग उभर आता है। इस प्रकार की प्लेट को प्रकाश मे देखने पर प्लेट पर विभिन्न गहराइयो मे परावर्तित प्रकाश किरण एक दूसरे से टकराकर या रुककर चित्र का वास्तविक रूप प्रदर्शित करती हे।
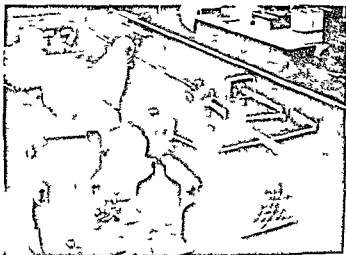
होलोग्राफी पद्धति मे चित्र प्रपित करने की जटिल प्रक्रिया का दृश्य

होलोग्राम के लिए इस प्लेट का इस्तेमाल करने के लिए दर्पण से टकराकर लौटी लेसर किरण पीछे से डालनी पडती हे, जबकि वस्तु से टकराकर लौटने वाली लेसर किरणे आगे से पहुचती है। इस प्रकार बने होलोग्राम को सामान्य सफेद रोशनी की सहायता से देखा जा सकता है।

रगीन होलोग्राम के लिए तीन प्रमुख रगो की लेसर किरण निर्मित कर उस प्लेट पर तीन ही रगो मे होलोग्राम एक साथ निर्मित करने पडते हैं। इस तरह लिपमैन की फोटोग्राफिक प्लेट पर तीन रगो की लेसर किरणो द्वारा खीचे गए होलोग्राम चित्र सामान्य प्रकाश डालने पर ही वास्तविक रगो मे उभर आते है। अत लिपमेन की फोटोग्राफिक प्लेट ने लेसर से बनने वाले होलोग्राम की जटिलता को काफी सरल रूप दे दिया।

होलोग्राफी की उपयोगिता को देखते हुए भविष्य मे इसकी अनत सभावनाए है। इसका इस्तेमाल फोटोग्राफी, सिनेमा, टेलीविजन, साइबरनेटिक्स तथा औद्योगिक उपयोगो मे बडी तेजी से हो रहा है। त्रिविमितीय एक्स किरणो का चिकित्सा विज्ञान मे तथा जासूस-जगत मे भी महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता है।

टेलीफोन का आविष्कार

टेलीफोन का आविष्कार स्कॉटलैंड के अलेक्जेण्डर ग्राहम वल ने मन् 1876 मे किया था। अलेक्जण्डर 1870 मे अपना देश छोडकर अमेरिका के बोस्टन नगर म वस गए थे।

ग्राहम बेल एक एसा उपकरण वनाने म लग हुए थे जिसके महारे एक माथ छह सदेश प्रेपित किए जा मके। इस काम मे उन्होने अपने एक अन्य वैज्ञानिक साथी टॉमस वाटसन को भी लगा रखा था। दाना ने इस उपकरण के निमाण के प्रयास किए, लेकिन सफल न हो मके। इमी दौरान वेल के दिमाग म यह विचार कौंध गया कि क्या कोई ऐसा यत्र नही बनाया जा सकता, जिसके सहारे आवाज को विद्युत के रूप मे तारो क जरिए एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा मके। वम वे इसी प्रयास म जुट गए।

सन् 1875 के जून के महीने मे जब बेल और वाट्सन ट्रासमीटर और रिसीवर उपकरणो की परीक्षा कर रहे थे, तो अचानक वाट्सन के हाथ से एक डायफ्राम छिटककर चुम्बक से जा चिपका। वाट्सन ने जब उसे हटाने की कोशिश की तो बेल ने देखा कि उसके पास रखे रिसीवर उपकरण मे धीमी-सी आवाज आ रही है और उसक साथ कम्पन भी हो रहा है।

बेल को इसी घटना से विश्वास हो गया कि वह अपने लक्ष्य के काफी निकट है। आवाज के प्रेषण के लिए ट्रासमीटर के चुम्बक से डायफ्राम बिल्कुल चिपका हुआ न रहकर थोडी-सी दूर रहे तो आवाज ठीक-ठीक सुनाई दे सकती है। बेल ने अपने साथी वाट्सन की मदद से पहला व्यावहारिक टेलीफोन 10 मार्च 1876 को तैयार किया। इसम एक अच्छे किस्म का डायफ्राम लगा हुआ था, जिसकी विशेषता यह थी कि यह सभी प्रकार की ध्वनियो को ट्रासमीटर मे विद्युत सवेगो (Electrical impulses) मे तथा रिसीवर मे उन्ही विद्युत सवेगो को ध्वनि मे बदल सकता था। इस पहले मॉडल मे बैटरी की व्यवस्था नही थी। यह ट्रासमीटर मे हिलते रहने वाले डायफ्राम से उत्पन्न होने वाली प्रेरण (Induction) करेंट के आधार पर ही कार्य करता था।
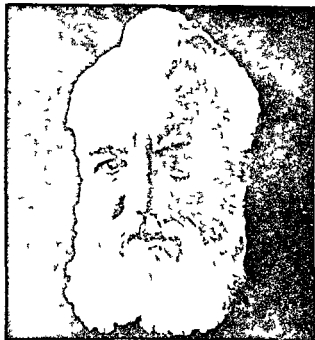
अलेक्जण्डर ग्राहम बेल

टेलीफोन मे मुह के सामने वाला भाग (माउथपीस) ट्रासमीटर का काम करता है और कान वाला भाग रिसीवर का। दोनो का सबध तारो से होता है, जब हम बोलते हैं, तो माउथपीस मे लगा एक डायफ्राम कम्पन करने लगता है, जिससे हमारी आवाज विद्युत तरगो मे बदल जाती है। यह विद्युत धारा टेलीफोन के तारो से होती हुई दूसरे स्थान पर लगे टेलीफोन के रिसीवर तक पहुच जाती है। इससे उस टेलीफोन के रिसीवर मे लगा डायफ्राम कम्पन करने लगता है और विद्युत तरगो को मूल ध्वनि मे बदल देता है। यह ध्वनि सुनने वाले व्यक्ति के कान के पर्दे से टकराती है और इस प्रकार दूर बैठा व्यक्ति हमारी आवाज सुन लेता है। ठीक यही क्रिया दूसरे व्यक्ति के माउथपीस और हमारे रिसीवर के बीच होती है। इस प्रकार दो व्यक्ति टेलीफोन पर एक-दूसरे से बात कर लेते हैं।
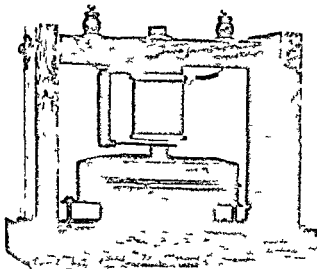
आरंभिक टेलीफोन

टेलीफोन द्वारा बात करने के दो तरीके होते ह—पहला टेलीफोन एक्सचज के माध्यम से और दूसरा ऑटोमेटिक पद्धति से।

टेलीफोन एक्सचेज एक प्रकार का विनिमय केंद्र है, जहा टेलीफोन करने वाले विभिन्न व्यक्तिया के नम्बरा का लेखाजोखा रहता हे। जब कोई व्यक्ति टेलीफोन का रिसीवर उठाता हे, तो एक्सचज मे बडे बोर्ड पर उसके नम्बर के ऊपर वाला बल्ब जल उठता ह। टेलीफोन ऑपरेटर तुरत उससे सम्पर्क स्थापित कर, जहा स उसे बात करनी होती हे, वहा का टलीफोन नम्बर मालूम करता है। उसके बाद वह उस व्यक्ति क टेलीफोन उपकरण के तारो का बात करन वाल दूसर टेलीफोन के तारो से जाड देता हे। इस प्रकार उन दोनो व्यक्तिया के टेलीफोना का एक दसरे मे सम्पक हा जाता हे आर व बातचीत कर लते हैं।

दूसरी पद्धति म स्वचालित (ऑटोमटिक) व्यवस्था हाती है। बडे शहरा मे अधिकतर इसी पद्धति का उपयाग होता है।

इस तरह की व्यवस्था मे टलीफोन के अगल भाग पर एक गोल डायल लगा रहता ह जिस पर एक मे 9 आर शून्य तक के नम्बर अंकित हात ह। इच्छित नम्बर क लिए डायल का घुमाया जाता है। डायल के ऊपर अंकित विभिन्न अको के ऊपर स्थित छिद्र म अगुली डालकर जब घुमाया जाता है ता उसी क अनुसार टलीफान एक्सचज की स्वचालित पद्धति के उपकरण मे भी हरकत होती हे ओर एक-एक अक के कनेक्शन जुडते चले जाते ह। टेलीफान का इच्छित नम्बर घुमाने के तुरत बाद उस टेलीफोन का कनेक्शन दूसरे टलीफोन से हो जाता ह ओर दूसरी ओर घटी बजने लगती ह। इस तरह स्वचालित प्रणाली मे एक टेलीफोन का सबध दूसरे से अपने आप हो जाता ह आर बात खत्म होने पर सम्पक अपने आप टूट जाता हे।

स्वचालित टेलीफोन प्रणाली का आविष्कार अमेरिका के एक तुनकमिजाज व्यक्ति आलमन वी स्ट्रोजर ने किया, जा टेलीफान एक्सचज के आपरेटग से बहद परेशान था। सन् 1889 मे उसने अपना पहला स्वचालित टेलीफोन प्रणाली का बोड का मॉडल तैयार किया और उसका सफल प्रदशन दिया, लकिन इस प्रणाली को अपनाने म काफी समय लगा, क्योंकि स्वचालित केंद्र की स्थापना मे काफी पैसा खर्च हाता था आर टेलीफान कपनिया पहले ही टेलीफोन एक्सचज के कद्रा की स्थापना मे काफी धन लगा चुकी थी। इंडियाना के ला पाट नगर मे सन् 1892 म पहला स्वचालित टेलीफान स्विच-बार्ड लगाया गया। सन् 1909 म यूराप का पहला टेलीफोन स्वचालित केंद्र म्युनिख मे लगाया गया।

अब तो ससार मे रेडियो टेलीफोन भी विकसित हा गए हैं, जिनस हजारो मील की दरी पर बठे व्यक्ति मे सीधा सम्पक हा जाता ह। इस प्रणाली म भी मूल रूप स वही साधारण टलीफान प्रणाली काय करती हे, परतु इसके साथ अन्य व्यवस्थाआ को भी सम्मिलित किया गया ह। एस यत्रा म थर्मियोनिक वाल्वा (Thermionic Valve) की व्यवस्था हाती ह जेसी रेडिया सट मे हाती ह। ये वाल्व रडिया तरगे पदा करत हैं आर सदश का विद्युत तरगा क रूप म दूर स्थान तक ले जात हैं। इन तरगा का एन्टीना द्वारा प्राप्त किया जाता ह। इस तरह टलीफोन रेडिया-यत्र की काय प्रणाली क आधार पर काय करता ह। समुद्री जहाजा म इसी तरह क टेलीफान काम म लाए जात हैं। इनसे विश्व के किसी भी स्थान पर रह रह व्यक्ति म बातचीत की जा सकती हे।

कुछ अन्य प्रणालिया भी टेलीफोन वार्ता के लिए अपनायी जाती हैं। अमरीका के कुछ क्षत्रा म पैनल प्रणाली अपनायी जाती है। इसम स्विच एक मोटर से
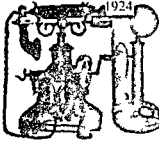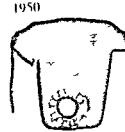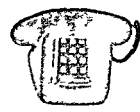
टलीफान का क्रमिक विकास

चलने वाली यनिट म जडे होत ह। एक अन्य क्रासबार प्रणाली ह, जो रिले पद्धति पर काय करती ह। इसका विकास बेल कपनी ने किया था। इसम माटर म चलने वाले शफट तथा विद्युत-चम्बकीय क्लच लगे रहते ह। यह सबस आधनिक इलक्ट्रॉनिक प्रणाली ह, जो सेकण्ड क दो हजारवे अश म ही इच्छित जगह सम्पक स्थापित कराने मे सक्षम ह। इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली से टेलीफोन वाता मे अनक सविधाए प्राप्त की जा सकती ह। जसे यदि किसी व्यक्ति को किसी विशेष टलीफान से अधिकतर वार्ता करनी पडती ह, ता बजाए 6 या 7 अको को घुमाने के कवल दो अक घुमाकर सम्पक स्थापित किया जा सकता है। इस माध्यम से वातचीत म किसी तीसरे या चोथे टेलीफोन वाले को भी शामिल किया जा सकता ह।

लम्बी दूरी के लिए कोएक्सियल (समाक्ष) कवल प्रणाली का सबसे अच्छा और प्रभावी पाया गया ह। इसका कारण यह हे कि यह एक साथ सकडो काल वहन करने की क्षमता रखता ह। इस पद्धति म एक ताबे की नली लगी होती हे, जो बाहरी सवाहक (Conductor) का काय करती ह। इसम से एक ताबे का तार गुजारा जाता ह। यह भीतरी सवाहक का कार्य करता ह। रेडियो-टलीफोन प्रणाली की तरह इसम भी ट्रासमीटरो की व्यवस्था होती ह। केवल के आखिरी सिरे पर उतने ही रिसीवरो की व्यवस्था भी होती ह। ट्रासमीटर और रिसीवर का एक सेट भिन्न आवत्ति (Frequency) पर काय करता ह। केवल पद्धति मे लम्बी दूरी के लिए आपरेटर के बिना एक शहर से दूसरे शहर से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता ह।

अन्य नयी प्रणालियो म माइक्रोवेव पद्धति ओर सचार-उपग्रह क माध्यम स टेलीफोन वार्ता की जा सकती ह। सचार-उपग्रह का माध्यम भी एक साथ हजारो वाताओ को सभव कराने मे सक्षम हे।

डायल पद्धति भी अब धीरे-धीरे पुरानी पडती जा रही ह। इसकी जगह इलक्ट्रानिक स्पर्श-बटनो से युक्त एक पनल काम म लाया जाता ह। इच्छित नम्बर का बटन दबाते ही वह जल उठता हे, जिसका अर्थ है उसका सम्पक ठीक जगह पर हो गया है। इस पद्धति मे नम्बर घुमाने का झझट नही होता ओर सम्पर्क भी शीघ्र हो जाता है। यदि दूसरी ओर का टेलीफोन व्यस्त है, तो बार-बार नम्बर मिलाने की आवश्यकता नही होती, बल्कि एक बटन दबाने से अपने आप नम्बर रिपीट होता रहता ह।

टलीफोन वाता म अब एक और क्रांतिकारी दौर आ चुका ह वह ह दूर-दशन फोन (Video-Phone)। इसके द्वारा बातचीत करने वाले व्यक्ति एक-दूसरे की छवि भी देख सकते ह।

आधुनिक इलक्ट्रॉनिक टलीफोन

राडार का आविष्कार
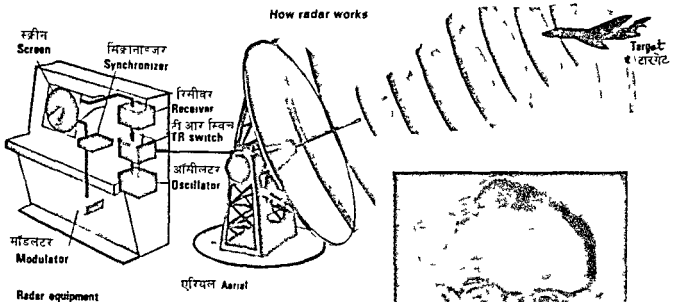
राडार मे दूरस्थ विमान की दूरी और दिशा जानने की प्रक्रिया

'राडार' का आविष्कार स्काटलेंड के एक प्रतिभाशाली युवक रॉबर्ट वाट्सन वाट ने किया था। यह युवक मोसम विज्ञान विभाग का एक अधिकारी था।

उस समय वायुयानो का तेजी से विकास हो रहा था, लेकिन विमान दुर्घटनाए भी बहुत बढ गयी थी। अक्सर वायुयान तडित झझाओ की लपेट मे आकर दुर्घटनाग्रस्त हो जाते थे। वाट्सन-वाट किसी एसे यत्र के विकास की बात सोच रहे थे, जिसके द्वारा इन दुर्घटनाओ को रोका जा सके। यह तो वह जानता ही था कि तडित झझाए विद्युत गजन के साथ होती हैं। अत गजन की आवाज को काफी दूर पहले बेतार रिसीवर द्वारा सुना जा सकता हे ओर इस तरह दिशा बदलकर वायुयान को बचाया जा सकता हे।

1934 म जब वह टॅडिग्टन स्थित एक प्रयागशाला म वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी थे, तो सरकारी विभाग ने उनस जर्मनियो द्वारा प्रयुक्त, 'मृत्यु-किरणो' से सबधित जानकारी प्राप्त करने का निर्देश दिया। उन दिनो 'मृत्यु किरणो' की खबर समाचार पत्रो मे आए ... छपती रहती थी।

राडार के आविष्कारक सर रॉबर्ट वाट्सन

वाट्सन ने इस खबर का खण्डन किया, लेकिन उनके खुद के दिमाग म विद्युत-विक्षोभ पर कार्य करने का एक विचार अवश्य कौंध गया, क्योंकि 'मृत्यु-किरणो' के सबध म एसी खबर होती थी कि वे दूर से ही लोगो को मार सकती है। विस्फोटको को नष्ट कर सकती हैं टैको वायुयानो को रोक सकती है। बस इसी स उसके दिमाग म एक ऐसी प्रणाली का विचार आया जिसस विमानो और जहाजो को बादल, धुध और अधेरे म भी बिना किसी बाधा के उडाया जा सके।
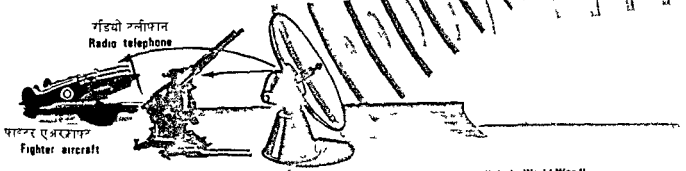
राडार से शत्रु विमानों का पता लगाकर उन्हें नष्ट करने की प्रक्रिया

उन्होंने अपनी योजना के लिए सरकार से धन की सहायता मांगी जो तुरंत प्राप्त हो गयी। उन्होंने अपना यंत्र बनाया और इसका परीक्षण डिवेन्ट्री नामक शक्तिशाली लघु-तरंग रेडियो ट्रांसमीटर केन्द्र से दस मील दूर एक मैदान में किया। परीक्षण में उनका यंत्र खरा उतरा। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि उड़ते हुए वायुयान की एक वायरलेस प्रतिध्वनि (Echo) को जमीन पर से रेडियो-तरंगों के माध्यम से पुनः प्राप्त किया जा सकता है और इसकी दूरी, रफ्तार और दिशा का पता लगाया जा सकता है।

वाट्सन के अनुसार, वायुयान के डैने वायुमंडल में एक तरह से क्षैतिज तार की तरह काम करते हैं। जब उन पर एक शक्तिशाली बेतार अंशु प्रेषित किया जाता है, तो इन तरंगों को परावर्तित कर देते हैं, जैसे कोई दर्पण प्रकाश किरणों को परावर्तित कर देता है।

वैसे इस सिद्धांत में कोई नयी बात नहीं थी। सन् 1887 में हर्नरिख हर्त्ज नामक जर्मन वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया था कि विद्युत चुम्बकीय तरंगें प्रकाश किरणों की ही तरह परावर्तित हो जाती हैं। एक अन्य जर्मन वैज्ञानिक ने सन् 1904 में रेडियो प्रतिध्वनि यंत्र का पेटेंट प्राप्त किया था। इस वैज्ञानिक का नाम था-हुल्समेयर।

लेकिन वायुयान की सुरक्षा से सम्बंधित एक प्रणाली का विकास करने का काम वाट्सन ने ही किया और राडार-यंत्र बनाया।

राडार यंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए शक्तिशाली प्रतिध्वनि प्राप्त करना बहुत आवश्यक था और इसके लिए अति लघु-स्पंदों (Pulses) (एक सेकण्ड का 10 लाखवां भाग) को उत्पन्न करने के लिए एक उच्च शक्ति के समर्थ प्रेषी (Transmitter) और ऐसे ही रिसीवर की आवश्यकता थी।धीरे-धीरे राडार-यंत्र के लिए ऐसे ट्रांसमीटर और रिसीवर का विकास कर लिया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध में राडार-यंत्र की प्रमुख भूमिका रही। वाट्सन को राडार-यंत्र जैसे बहु-उपयोगी यंत्र के आविष्कार के लिए 1942 में 'नाइट' की उपाधि से विभूषित किया गया। इससे पहले इस यंत्र की जानकारी जनता को नहीं थी। निस्संदेह बमवर्षक जहाजों से लंदन को बचाने में राडार-यंत्र का प्रमुख योगदान था।

'राडार' शब्द 'रेडियो डिटेक्शन एंड रेंजिंग' का संक्षिप्त रूप है। राडार सेट रेडियो तरंग प्रेषित करता है और तरंगों के वापस लौटने में लगा समय माप लेता है। राडार सेट में लगा ट्रांसमीटर लगभग रेडियो स्टेशन की तरह कार्य करता है। इसका रिसीवर टेलीविजन सेट की तरह कार्य करता है और दूरी से आती वस्तु से टकराकर लौटी हुई रेडियो-तरंगों को एक चित्र के रूप में परिवर्तित कर देता है। ट्रांसमीटर निश्चित समय के अंतराल में हाई फ्रिक्वेंसी रेडियो-तरंगों के छोटे-छोटे स्पंद आकाश में छोड़ता रहता है। ट्रांसमीटर एक
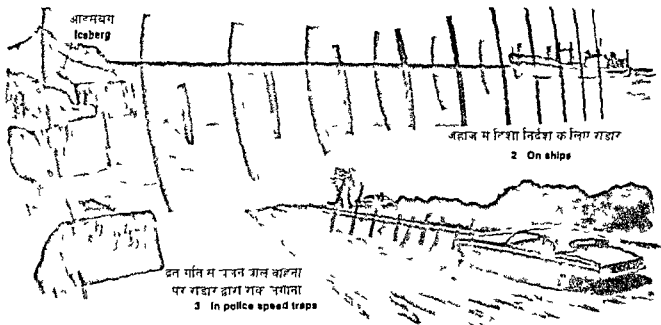
समनी बाधाओ का पता लगाकर जहाज को भयकर दर्घटनाओ से बचाया जा सकता है

सेकड के दस लाखव हिस्स के समय तक तरग प्रेपित करके थोडा रुकता ह और फिर भेजना शुरू करता है। सेट चालू रहने क दारान यही क्रम चलता रहता ह।

विभिन्न कार्यो के लिए अलग-अलग प्रकार आर शक्ति क राडार-यत्रा का उपयोग किया जाता ह परन्तु लगभग सभी सेटो मे निम्नलिखित भाग अवश्य हाते हैं-प्रेषी (Transmitter) जो छाट-छाटे स्पदो (Pulses) को उत्पन्न करता हे, 2 एरियल- यह इकट्ठे हुए स्पदो को तरग के रूप मे आगे प्रेपित करता है तथा परावर्तित स्पदो को ग्रहण करने का काय करता है, 3 सवेदनशील ग्राही (Receiver) यह कमजार स्पदो की प्रतिध्वनि का ग्रहण कर उन्हे प्रवर्धित (Amplified) करता है, 4 सूचक-यह प्रतिध्वनि को स्क्रीन पर निर्देशित कर उसकी दरी, दिशा आद की सूचना देता है, 5 काल निर्धारक- यह अन्य भागो की गतिविधिया का नियोजन करता है।

राडार का उपयोग कई कार्यो के लिए हाता ह, जैस शत्रु क विमान का पता करने के लिए, आकाश का निरीक्षण करने के लिए, जहाजो का पता लगाने के लिए, भू-सर्वेक्षण के लिए, शत्रु-ठिकानो पर अचूक निशाना लगाने के लिए, सदेश प्रसारण आदि अनेक काय राडार द्वारा किए जाते हैं।

कम्प्यूटर का आविष्कार

कम्प्यूटर के आविष्कार का श्रेय किसी एक व्यक्ति को नही दिया जा सकता। कम्प्यूटर अनेक प्रकार के हें आर इनके विकाम का क्रम सकडो वर्षो से चल रहा ह। आज कम्प्यूटर कवल गणना के यत्र ही नही रह गए है, बल्कि इनस बहुत से एसे कार्य लिए जा रहे हैं, जा मनुष्य के वस की वात नही, परतु इतना अवश्य हे कि कम्प्यूटर उपकरण का मूल रूप गणना करने वाली मशीन ही हे।

मनुष्य ने लगभग 25000 वर्ष पहले सख्याओ का आविष्कार किया था और लगभग 5000 वर्ष पहले उसने लिखना पढना सीखा था। गिनने के लिए सभवत मनुष्य ने सबसे पहले अगुलियो या ककडो का सहारा लिया था। उसके बाद किसी बुद्धिमान मनुष्य ने गिनती करने क लिए सीपिया की लडी या माला बनायी, जो गिनती के काम क साथ-साथ बाद मे आभूषण के रूप मे भी प्रयुक्त की जाने लगी। जापान म इस तरह का एक गणना-यत्र सकडो वर्षो से उपयोग मे लाया जाता रहा हे, जिसे 'सॉरोबॉन' कहते ह।

अनेक वेज्ञानिको ने समय-समय पर गणना करने के लिए भाति-भाति के यत्र बनाए।

सन् 1642 मे फ्रास के वैज्ञानिक ब्लेज पाल्कल ने एक ऐसा गणना-यत्र बनाया, जो जोडने आर घटाने के काम आता था। जमनी के एक वेज्ञानिक विलियम लाइबनित्ज ने सन् 1680 म एक दूसरा गणना-यत्र बनाया जा जोड, बाकी, गुणा भाग और वर्गमूल तक हल कर सकता था। 1801 मे फ्राम के एक वैज्ञानिक जोजेफ एम जाकवाड ने एक मशीनी करघा बनाया, जो कपडे बुनने के लिए बहुत ही उपयागी सिद्ध हुआ। अग्रेज गणितज्ञ चार्ल्स बेबेज ने 1812 म एक विश्लषण यत्र बनाना आरम्भ किया परन्तु अपन यत्र म लगान के लिए जिन सूक्ष्म कल-पुर्जो की उन्हे जरूरत थी, वे बना न सक क्योकि इतन सूक्ष्म पुर्जे बनान का तब कोई साधन नही था।

सन् 1889 मे अमेरिका के एक गणितज्ञ वेज्ञानिक डा हमन हॉलरिथ न गणना क लिए कार्डो मे छेद करने की

गाट फ्राइड विलियम फॉन लाइबनित्ज न सत्रहवी सदी म एक गणना यत्र बनाया

चार्ल्स बैबेज न 1812 म एक विश्लषण यत्र बनाया

एक नयी पद्धति का आविष्कार किया। उनका यह यत्र विद्युत से चलता था। सही अर्थो मे यह पहला विद्युत गणना-यत्र था, जिसे कम्प्यूटर का आदि रूप माना जा सकता है। हॉलरिथ के इस यत्र ने कम्प्यूटर-विज्ञान का श्रीगणेश किया। उन्होने कम्प्यूटर-निर्माण सस्था की भी स्थापना की और इसकी नयी-नयी सभावनाओं पर शोध, परीक्षण किए। उनकी छिद्रित कार्ड पद्धति आज आई बी एम कार्ड के नाम से सारे विश्व मे जानी और प्रयुक्त की जाती है।

भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न पद्धति के कम्प्यूटर बनने लगे, साथ ही उनकी जटिलता और भी जटिल होती गयी।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान ही ऐसे कम्प्यूटर बनने लगे थे, जिनकी सहायता से विमानो के डिजाइन तैयार होते थे। विमानो के दिशा-निर्देश मे इनका उपयोग होने लगा था।

आज अमेरिका, रूस, जर्मनी, फ्रास, हालैण्ड, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, ब्रिटेन, जापान आदि ऐसे विकसित देश है, जहा कम्प्यूटर को मानव-मस्तिष्क का दर्जा मिल चुका है। भारत मे भी कम्प्यूटर विज्ञान की शुरुआत हो चुकी है और इस क्षेत्र मे तेजी से विकास हो रहा है।

आज कम्प्यूटर विभिन्न क्षेत्रो मे बिना किसी त्रुटि के वर्षों का काम महीनो, घटो और सेकण्डो मे कर देते हैं। कम्प्यूटर आजकल निम्न कार्यो मे प्रयुक्त हो रहे हैं। डाक छटनी, रेल-मार्ग सचालन, मशीनो के पुर्जे आदि की रूप रेखा बनाना, मोसम की जानकारी, स्कूल-कालेजो मे शिक्षा देना, कारखानो आदि की व्यवस्था, वैज्ञानिक गवेषणाओ मे ऐसी गणितीय समस्याओ का हल ढूढना जो मनुष्य के बस की बात नही, शत्रु के आक्रमण की पूव सूचना दना, शत्रु ठिकानो पर अचूक निशाना लगाना, अतरिक्ष उडान की पूर्ण-व्यवस्था सभालना, विमान-परिवहन नियत्रण, अधे व्यक्तियो को पुस्तक पढ़ने मे सहायता देना अन्य कम्प्यूटरो का डिजाइन तैयार करना, बच्चो के मनोरजन खेल-कूद का आयोजन करना, गणना करना आदि सैकडो ऐसे काय हैं, जिन्हे कम्प्यूटर तजी और सफलता से कर रहे हैं।

आधुनिक कम्प्यूटर स शिक्षा

कम्प्यूटर प्रमुख रूप से दो प्रकार के हैं —
1 एनालॉग यानी अनुरूप कम्प्यूटर और 2 डिजिटल यानी अकीय कम्प्यूटर। इन दोनो प्रकार के कम्प्यूटरो से मिलकर एक तीसरे प्रकार का कम्प्यूटर बनता है, जिसे 'एनालॉग डिजिटल हाइब्रिड' कम्प्यूटर कहते हैं।

कम्प्यूटर के मुख्य रूप से पाच भाग होते हैं —

1 इनपुट (निवेशी) 4 मेमोरी (स्मृति)
2 कट्रोल (नियत्रक) 5 आउटपुट (निर्गम)
3 अर्थमेटिक या लॉजिक गणना

उपर्युक्त पाचो भागो की बनावट बहुत ही जटिल होती है। इसके अलावा एक मुख्य भाग और होता है, जिसे भडार (इनफॉरमेशन सेक्शन) कहते हैं।

कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली को समझने के लिए इसके ऊपर दिए हुए भागो की कार्य प्रणाली पर विचार करना होगा।

सबसे पहले जिन सख्याओ का परिकलन (Calculation) करना है और जिस क्रम मे करना है, उसे सूचना-भडार मे भेज दिया जाता है। दूसरा सेक्शन मेमोरी का है। यदि सूचना के किसी अश या भाग की तुरत आवश्यकता न हो, तो इसे मेमोरी वाले सेक्शन मे पहुचा दिया जाता है। जरूरत पडने पर वहा से इसे चाहे जब पुन प्राप्त किया जा सकता है। सूचना-भडार से समस्या गणित या गणना-भडार में भेजी जाती है जहा क्षणो मे हिसाब-किताब लग जाता
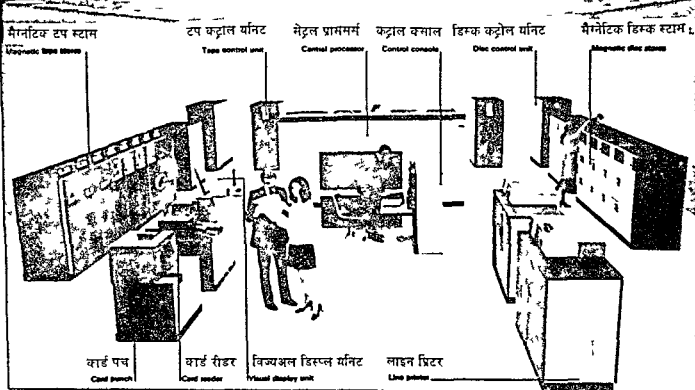
एक आधुनिक कम्प्यूटर कक्ष

है। उसके बाद आउटपुट सेक्शन मे परिणाम आ जाता है। परिणाम कागज की टेप या चुम्बकीय टेप अथवा ऑसिलोस्कोप (जिसकी व्यवस्था कम्प्यूटर मे ही होती है) पर आ जाता है।

कम्प्यूटर का गणित विद्युत-स्पदो का सहारा लेता है, जिसकी वजह से इसके परिणाम तुरत प्राप्त हो जाते हैं। आई बी एम कपनी ने एक ऐसा कम्प्यूटर बनाया है, जो एक सेकण्ड मे 10 लाख परिकलन(Calculation) करने की क्षमता रखता है। कम्प्यूटरो में तेजी की यह क्षमता एकदम नही आ गयी। यह पिछले 30-35 वर्षो के निरतर प्रयास का परिणाम है।

टेलीग्राफ द्वारा सदेश प्रेषित करने के लिए मोर्स ने 'डैश' ओर 'डॉट' सकेतो से सभी अक्षरो को व्यक्त करने की प्रणाली विकसित कर एक नयी यांत्रिक भाषा का आविष्कार किया था। उसी प्रकार कम्प्यूटर प्रणाली मे भी '0' ओर '1' से बनी यांत्रिक भाषा प्रयुक्त की जाती है। अको और अक्षरो के लिए '0' और '1' को निम्न तरीके से लिखा जाता है –

अक्षरो मे बदलने का सकेत

11111 =	00011 = A	10101 = Y
11100 = M	01010 = R	01110 = C

इसी प्रकार अको के लिए –

1 = 1	5 = 101	9 = 1001
2 = 10	6 = 110	10 = 1010
3 = 11	7 = 111	11 = 1011
4 = 100	8 = 1000	12 = 1100, आदि

इन कूट-सकेतो के जरिए अनुरूप (Analogue) और अकीय (Digital) दोनो प्रकार की हर गणितीय और भाषा सबधी समस्याओ के हल आसानी से निकाले जा सकते हैं। इनसे अनुवाद कार्य तक हो सकता है। मनुष्य के आदेश पर वह हर कठिन से कठिन गणनाए आदि कर सकता है, पर उसमे स्वय सोचने की शक्ति नही होती। मानव मस्तिष्क और कम्प्यूटर मे केवल यही अतर है।

3
परिवहन
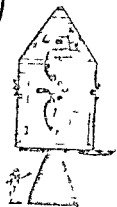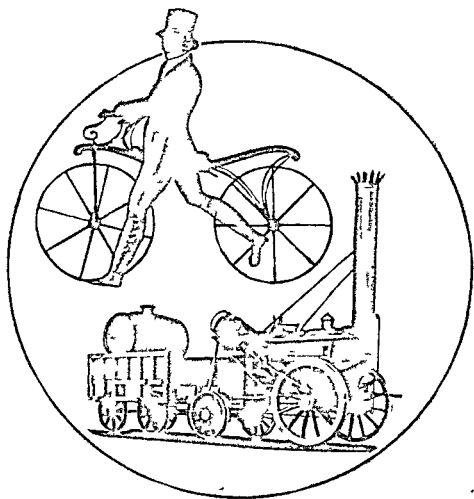
जलयान का आविष्कार

नाव

यह निश्चय हे कि पहिए के आविष्कार मे बहुत पहले जब मनुष्य ने खेती करना और पशुओ को पालना आरम्भ किया होगा, उससे भी बहुत पहले ही उसने नाव बनाना आरम्भ किया होगा।

पहिए की तरह नाव का आविष्कार भी सर्वप्रथम किसी आदिम पुरुष ने ही किया होगा। सभव है कोई आदिम मनुष्य पानी मे अचानक गिर गया होगा। पानी की सतह से किनारे पर आने के लिए उसने हाथ-पैर मारे होगे। इसके लिए उसने पानी मे बहती किसी पेड की डाल का सहारा लिया होगा। तब उसने सबसे पहले अनुभव किया होगा कि लकडी के सहारे पानी की सतह पर एक स्थान से दसरे स्थान तक जाया जा सकता है।
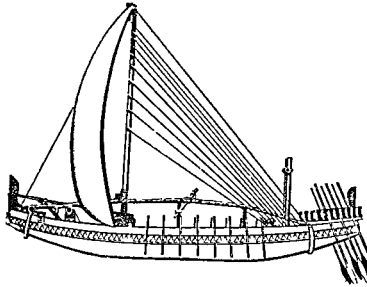
मिस्रवासियो की बनायी हुई पालदार प्राचीन नौका

एक पाल वाली आधुनिक नौका

पहली नाव के रूप मे सभवत लकडी के लट्ठे का अथवा लकडी के सपाट पट्टे का उपयोग किया गया होगा। धीरे-धीरे लकडी के लट्ठे को खोखलाकर उसमे बैठने का स्थान बनाने की कल्पना उसके दिमाग मे आयी होगी और इस प्रकार विश्व की पहली नौका का आविष्कार मनुष्य ने किया होगा। अफ्रीका तथा अमेरिका के दक्षिणी क्षेत्रो मे आज भी डोगी किस्म की प्राचीन नौकाए देखी जा सकती है।

ऐसा माना जाता है कि लगभग 40000 वर्ष इ पू नौका-निमाण का काय आरम्भ हुआ। 7600 ई पू से नाव मे मस्तूल और पालो तथा पतवारो का भी उपयोग होने लगा था।

आज से लगभग 4000-3500 इ पू रचित माने जाने वाले ग्रथ 'रामायण' मे कइ जगह नाव का उल्लेख है, जो मस्तूल, पाल और पतवार से युक्त थी। अत यह कहा जा सकता है कि 'रामायण' काल मे सैकडो वप पूव भारत मे नाव का प्रचलन रहा होगा।
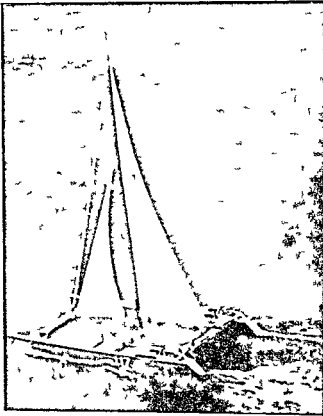
ऐमा माना जाता है कि खुले समुद्र मे नौकायन का आरम्भ मिस्रवासियो ने किया। शुरुआत मे नाकायन नील, दजला, फरात या अन्य नदिया तक ही सीमित रहा होगा। भारत मिस्र, यूनान तथा रोम के प्राचीन ग्रथो मे (आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व) समुद्री यात्राओ का वणन भी मिलता है। लकडी की बडी-बडी नावो ओर जहाजा मे वैठकर लोगो ने दूसरे देशो की यात्राए कर व्यापारिक, धार्मिक आर राजनीतिक सम्वध स्थापित किए।

समुद्र-यात्रा क दोरा" होने वाले नित नये अनुभवो मे मनुष्य नावा ओर जहाजा म आवश्यक सुधार करता रहा। इमक साथ ही लम्बी यात्राओ के लिए बडे-वड ओर भारी जहाजो का निर्माण होने लगा। नावा को छोटी-मोटी यात्राआ ओर मछली मारन क लिए प्रयुक्त किया जान लगा क्योंकि नावे समुद्र की विशाल लहरा क थपडो को सह न पाती थी। फिर भी नदिया क लिए नावा का महत्त्व उतना ही था।

सवम पहल फ्रास क एक हानहार व्यक्ति डेनिस पपिन ने भाप की शक्ति स एक बडी नाव को चलान का प्रयास किया। वह इसम सफल रहा, परतु मल्लाहा न अपनी रोजी-रोटी छूट जाने क भय स भाप-चालित इस नाव का विरोध किया तव तक नाव ओर जहाज चप्पुओ स ही चलाए जाते थे। मल्लाआ ने डनिस पेपिन का मारा-पीटा भी यहा तक कि उम वहा स चले जाना पडा। कुछ समय बाद ही उमका निधन हो गया।
इमक कुछ माला वाद अमेरिका, फ्राम स्कॉटलड आर इगलैड आदि देशा के वेज्ञानिको ने भाप मे चलन वाली कुछ नावा का निमाण किया। सवम पहले हेनरी वल नामक वेज्ञानिक न एक भाप-चालित नाव तयार की जो यात्रिया क लिए थी। उमक द्वारा वनाया गया पहला स्टीमबोट 'कॉमेट' ब्रिटिश द्वीपसमूहों के मध्य चलने वाला पहला स्टीमवोट था।

पोत

ईसा म लगभग 3500 वप पूर्व से जव मस्तूला, पालो और चप्पुओ का इस्तेमाल शुरु हुआ ता नाव की जगह वडे-वडे जहाज वनान की आर मनुष्य का ध्यान गया। परतु जहाजा का आकार तथा यात्रा की दूरी के हिसाब से उनकी क्षमता सीमित थी। जहाज को चलाने के लिए गुलामो को लगाया जाता था। हीरोडोटस के लेखो से पता चलता हे कि फिनीशियन लोगो ने बडे जहाजो का निमाण कर पूरे अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर अनेक बार लगाया। फिनीशियनो ने 600 इ पू भारत के लिए भी समुद्री-माग तय किए थे। फिनीशियनो द्वारा निमित जहाजो के ढाचे काफी मजबूत लकडी के बने होते थे ओर आपस मे उनके भाग मजबूती से जुडे होते थे। इन जहाजो मे पालो को छाटा-बडा करने की अच्छी व्यवस्था रहती थी।

रोम आर कार्थेज म आपस म शत्रुता के कारण युद्ध म उपयोग आने वाले जहाजो का निमाण काय तेजी मे हुआ। एक युद्धपोत म लगभग 200-250 तक आदमी रहते थे। इसक अलावा रोमनो ने भारी मालवाही जहाजा का भी निमाण किया।

मध्य युग म नौ-निमाण कला की धीमी गति के बावजूद नार्वे क वाईकिंग लोगा ने मजवूत किस्म के छाटे जहाजा

सान्ता मारिया (1490) जहाज जिम पर कोलम्बस न यात्रा की थी
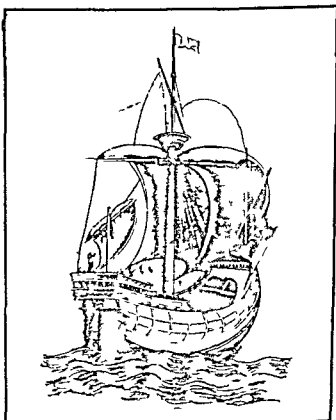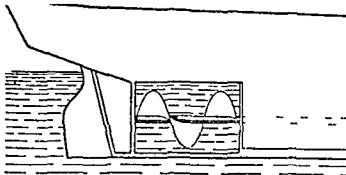
रमल की नौका मीवटा का डढ़ पच का प्रापलर

का बडी सख्या म निमाण किया। ऐसे ही जहाजो पर वे दुनिया की खाज मे निकले थे और उन्होंने बडी लम्बी-लम्बी यात्राए की।

मिस्रवासियो न भी वडे पालदार जहाजा का निर्माण किया। वे जहाजा म देवदारु की लकडी का इस्तेमाल करते थे। इनके जहाजो मे पाल स्थिर रहते थे। सत्रहवी ओर अठारहवी शताब्दियो मे पालदार जहाजो का आकार आर गति काफी वढ गयी थी।

भाप से चालित जहाज के प्रयास सेकडो वर्षो पहले आरम्भ हुए थे। सन् 1583 मे वार्सीलोना मे एक व्यक्ति ब्लास्को द गार न एक ऐसा ही जहाज बनाने का प्रयास किया था। पेंसिलवेनिया क विलियम हेनरी नाक नामक अमेरिकी युवक ने जेम्सवाट का इजन देखा था। उसके आधार पर उसने सन् 1770म भाप से चलने वाले छोटे जहाज का माडल वनाया पर वह अपने प्रयाम मे सफल न हो मका।

एक स्कॉटिश मैकेनिक विलियम साईमिग्टन ने सबसे पहले एक छाट जहाज को भाप-शक्ति से चलाया था। 1788 म विलियम माईमिग्टन ने अपने दो साथियो पटिक मिलर और टेलर क साथ मिलकर एक वडी स्टीम-वाट का निमाण आरम्भ किया। चौदह साल की कडी मेहनत के वाद 1802 म माईमिग्टन अपना पहला सफल व्यापारिक जहाज प्रदर्शित कर सका, जिसका नाम था-'चार्लोटी डुडास ।

अमेरिका के जान फिच ने 1787 मे स्टीम स चलने वाला पहला मफल छोटा जहाज निर्मित किया। एक अन्य अमेरिकी इजीनियर रॉबर्ट फुल्टन ने 'क्लेरमोंट' नामक पैडल स्टीम-जहाज का निमाण किया जो 5 मील प्रति घटे की रफ्तार से चल सकता था, लेकिन चेन और पेडल सिस्टम से चलने वाले इन जहाजा मे कई समस्याए थी। गहरे समुद्र की विशाल लहरो के थपेडो के आगे पेडल और चेन सिस्टम गडबडा जाता था।

जॉन एरिक्सन नामक एक स्वीडिश-अमेरिकी इजीनियर ने एक स्क्रू प्रोपेलर जहाज का निर्माण कर इस समस्या को सुलझाने की दिशा मे पहला कदम उठाया। 1839 मे उसने स्क्रू प्रोपेलर सिस्टम वाला एक जहाज निर्मित किया जो शात ओर उत्तेजित समुद्र मे एक समान कार्य कर सकता था। ब्रिटिश युवक इजीनियर आइसेम्बार्ड ब्रुनेल ने 1845 मे 'ग्रेट ब्रिटेन' नामक स्क्रू प्रापेलर जहाज का निर्माण किया, जिससे अटलाटिक महासागर को पार किया गया।

अठारहवी शताब्दी मे लोगो का ध्यान लोहे के जहाजो के निर्माण की ओर गया, क्योंकि लकडी से बने हुए जहाज कम टिकाऊ और महगे होते थे। लकडी की मोटी-भारी दीवारो की अपेक्षा लोहे की पतली दीवारो स बने जहाज अपेक्षाकृत ज्यादा मजबूत, टिकाऊ हो सकत थे।

स्टीम इजन म चलन वाल पहल जहाज ...

ब्रुनल न सात सौ फुट लम्बे और सत्ताइस हजार पाच सौ टन भारी ग्रेट ईस्टर्न नामक एक बडे जहाज का निर्माण किया। इसमे पाच चिमनियो वाले इजनो के दो सेट लगाए गए। आवश्यकता पडने पर छह मस्तूलो पर पालो का भी प्रबंध किया गया, परन्तु इस जहाज मे यात्रा के दौरान विस्फोट हो गया। ब्रुनेल को इसका बहुत दु ख हुआ और वह कुछ दिनो बाद चल बसा।

लोहे का स्थान शीघ्र ही इस्पात ने ले लिया जो लोहे से ज्यादा टिकाऊ और जंग न लगने वाली धातु थी। सन् 1863 मे इस्पात का पहला जहाज निर्मित हुआ और दस वर्ष के भीतर ही इस्पात ने पूरी तरह लोहे की जगह ले ली क्योंकि बेसमर नामक एक अंग्रेज ने इस्पात-निर्माण का एक बहुत ही सस्ता तरीका ढूंढ निकाला था।

चार्ल्स पारसन्स नामक ब्रिटिश इंजीनियर ने भाप टरबाइन इजन का प्रयोग जहाज मे किया। उसने विक्टोरियान नामक जहाज मे टरबाइन इजन को लगाकर जहाज की गति मे काफी सुधार किया।

जर्मन आविष्कारक रूडाल्फ डीजल के डीजल इजन को परिष्कृत और छोटा रूप देकर जहाज मे उपयोग के लिए तैयार किया गया और 1911 मे पहले मरीन डीजल जहाज का आविष्कार हुआ। यह इजन एक इटरनल कम्बश्चन इजन था और कच्चे तेल से चलता था।
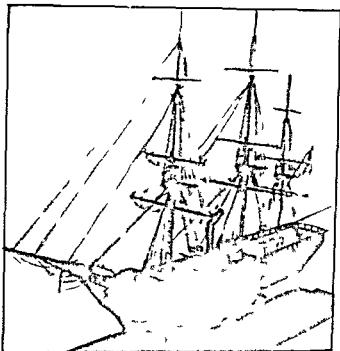
सवान्ना नामक अमरीकी जहाज (1819) जिसने पहली बार अटलान्टिक महासागर पार किया।

वर्तमान मे जहाजो को चलाने के लिए जो सबसे विकसित प्रणाली का विकास हुआ है, वह है परमाणु शक्ति परन्तु इस विधि से चलने वाले जहाज बहुत ही कम बन पाए है। अमरिका और रूस आदि देशो मे परमाणु-शक्ति चालित जहाज है।

उन्नीसवीं शताब्दी मे जहाज और युद्धपोत-निर्माण मे जर्मनी और इंग्लैंड ने बडी प्रगति की। इस समय तो
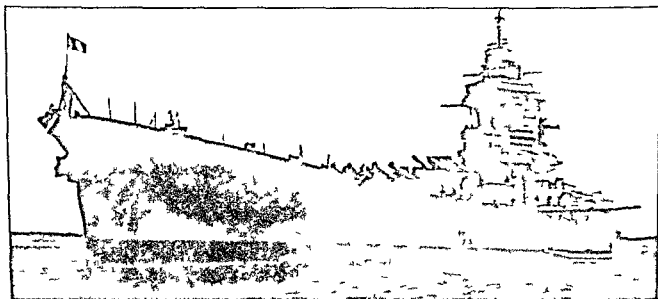
एक आधुनिक सवारी जहाज

अमेरिका रूस फ्रास, आदि देशो का जहाजी बेडा बहुत विशाल है। जहाजो पर सिनेमा हाल, बैठक खाने, भोजनालय, रेस्तरा, खेल के मैदान, ड्राइग रूम, बेडरूम बाथरूम आदि सभी सुविधाए उपलब्ध होती है। जहाजो का आकार भी अब इतना विशाल हो गया है कि हजारो यात्री सभी आरामदेह सुविधाओ के साथ यात्रा कर सकते है।

सन् 1919 मे भारत मे सिंधिया जहाज कपनी की स्थापना हुई। सिंधिया जहाज कपनी ने सन् 1941 मे विशाखापटनम मे जहाज-निर्माण का विशाल कारखाना खोला। इस कारखाने मे निर्मित पहला जहाज था-'जल-उषा'। कुछ वर्ष बाद भारत सरकार ने इस कारखान को अपने अधीन कर लिया। अब तक इस कारखाने मे 60 से अधिक जहाज बनाए जा चुके है। दूसरा कारखाना बम्बई मे मझगाव मे है, तीसरा कोचीन मे। कलकत्ता के कारखाने मे जगी जहाज तैयार होते है।

पनडुब्बी

पनडुब्बी जहाज की कल्पना सबसे पहले सन् 1579 ई मे बिलियम बार्नी नाम के एक व्यक्ति ने की। उसने ही पनडुब्बी नाम देकर इसका पेटेंट प्राप्त किया था। उसकी पनडुब्बी मे चमडे के जोडो और पेचो की इस प्रकार से व्यवस्था थी कि भीतर से ही उसके भाग को छोटा या बडा किया जा सकता था। पानी के नीचे ले जाने

आधुनिक पनडुब्बी
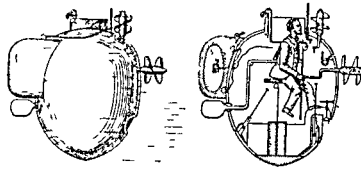
टर्टल नामक पनडुब्बी

के लिए उसमे भीतर से ही पानी वाले भाग मे पानी भरने की व्यवस्था थी। पनडुब्बी मे वायु-निकास नली मस्तूल के रूप मे लगी हुई थी।

सन् 1600 मे हालेड के कोरनेलिस वान ड्रेबेल नामक व्यक्ति ने इग्लैड मे आकर सन् 1620 मे कुछ पनडुब्बी नौकाओ का निर्माण कर इग्लैड के राजा को भेट मे दी थी। उसकी पनडुब्बी मे ऐसी व्यवस्था थी कि अदर की दूषित हवा को स्वच्छ कर पुन सास लेने योग्य बनाया जा सकता था। परन्तु इस व्यवस्था का ठीक विवरण प्राप्त नही है। इग्लैड के राजा प्रथम जेम्स ने ड्रेबेल की पनडुब्बी मे पानी के अदर यात्रा की थी, ऐसा कहा जाता है।

सन् 1773 मे अमेरिका के डेविड बुशनेल ने एक ऐसी पनडुब्बी का निर्माण किया था, जो कछुए के आकार की थी। इसे 'टर्टल' नाम से जाना जाता है। इसमे केवल एक व्यक्ति के बैठने की ही व्यवस्था थी। इस पनडुब्बी मे चमडे की अनेक बोतले लगी थी, जिनका मुह ऊपर की ओर था। पानी के अदर ले जाने के लिए बोतलो मे पानी भर दिया जाता था और पानी के ऊपर लाने के लिए चमडे की बोतलो को दबाकर उनका पानी बाहर निकाल दिया जाता था। इसमे लगे दो पतवारो को पनडुब्बी के अदर ही से चलाने की व्यवस्था थी। डेविड बुशनेल की यह पनडुब्बी जल-परिवहन इतिहास मे पहली ऐसी पनडुब्बी थी, जिसे काफी ख्याति प्राप्त हुई।

भाप के इजन से जहाज चलाने मे सफलता प्राप्त करने वाले अमेरिका के रॉबर्ट फुल्टन ने 'नाटिलस' नामक पनडुब्बी बनाकर उसे पानी के ऊपर और अदर समान रूप से कई बार चलाकर सफल प्रयोग किया। फुल्टन के अनुसार वह ऐसी पनडुब्बिया बना सकता है, जो पानी के

अदर ही अदर तेज गति से चलकर दुश्मन के लडाकू जहाजा को अदर से ही नष्ट कर सकती हे। परन्तु उसकी इस वात पर गभीरता से सोचा नही गया।

इग्लेड मे जाकर भी उसने अपनी पनडुब्वी से तारपीडो द्वारा एक जहाज को उडाने का सफल प्रदर्शन किया। तव भी उसकी योजना पर ध्यान नही दिया गया।

अमरिका के डेविड ने ही गृह-युद्ध के दौरान अपनी पनडुब्वी से एक लडाकू जहाज को जिस पर गोला-वारूद रखा था, एक साधारण तारपीडो म उडाकर युद्ध म पनडुब्वी के महत्त्व का अनुभव कराया। यह 1864 की वात हे। परन्तु इस विस्फोट की भीपणता की चपेट म वह पनडुब्वी भी आ गयी ओर नष्ट हो गयी।

पनडुब्वी को पानी के अदर ओर वाहर तो तराने मे मफलता मिल गयी, परन्तु पानी क अदर उसकी तज गति के विकाम मे अब भी वाधा थी। क्योकि भाप-इजन स उसे पानी के अदर चलाने मे कई कठिनाइया थी। परन्तु पटोल अतर्दहन इजन स इस ममस्या का फिलहाल हल निकल आया था।

पनडव्वी को आधुनिक रूप देने म जॉन पी हालड और साइमन लक नामक दो व्यक्तियो को श्रय ह। इन दोना न एक दूसरे स भिन्न प्रकार की पनडुब्विया बनायी थी।

साइमन लेक न पनडुब्विया का उपयाग समुद्र के नीचे टटे पड जहाजो को निकालन, वहमूल्य पदार्थ निकालने की दिशा म काय किया।

सन् 1894 म साइमन लक न एक छोटी पनडुब्वी का निर्माण किया जिसके नीच गाडी की तरह के पहिए लगे हुए थे, जिनकी सहायता से वह समुद्र-तल पर चल भी सकती थी।

पनडुब्वी की बहुउपयोगिता को देखकर अमरिका, फ्रास, जर्मनी, ब्रिटेन और रूस आदि देशो ने धन लगाकर इनके निर्माण की व्यवस्था की।

1894 मे जॉन पी हालेड को अमरिकी सरकार ने पनडुब्विया बनाने का कार्य सौंपा। साइमन लेक के नमूने को अस्वीकार कर दिया गया। 1901 मे साइमन लेक न एक बडी पनडुब्वी का निर्माण किया ओर उसे रूसी सरकार को बेच दिया। इसके वाद रूस न साइमन से अनेक पनडुब्विया बनवायी।

परमाणु शक्ति की खोज ने पनडुब्वी निर्माण म क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। प्रथम परमाणु शक्ति से चालित पहली पनडुब्वी 'नॉटिलस' थी, जो अमेरिका मे निमित हुई थी। 1955 मे जब यह परीक्षण के लिए समुद्र म उतारी गयी तो इसन मात्र आठ पौंड यूरेनियम ईधन से कुल साठ हजार मील की यात्रा की। इसने प्रशात महासागर से पानी मे लगभग 400 फुट गहराई मे चलते हुए धुवीय हिम क्षेत्र को नीचे से पार कर अटलाटिक महासागर मे प्रवेश कर एक चमत्कार कर दिखाया था।

इसी प्रकार की एक अन्य विशाल पनडुब्वी 'मोबी डिक' 50 000 टन भारी ओर 600 फुट लम्वी ह। इसम लगी परमाणु भट्टी लगभग 75 000 अश्व शक्ति उत्पन्न करती हे।

इस प्रकार जल-परिवहन क इतिहास म समुद्र के अदर चलन वाली पनडुब्वी ने एक चमत्कार कर अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।
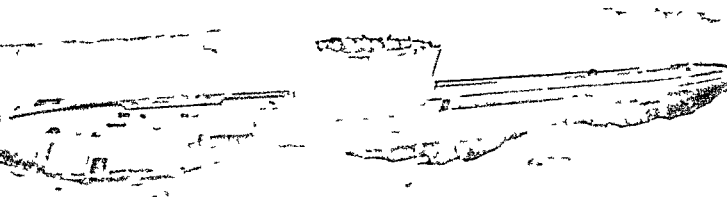
होवरक्राफ्ट का आविष्कार

हावरक्राफ्ट वाहन इस शताब्दी के अनेक विलक्षण माधना म म एक है। इस विचित्र वाहन का निमाण काय एक अग्रेज इजीनियर मी एम काकरल न 1953 54 मे शरू किया था। छह वप क अथक परिश्रम क बाद मन 1959 60 म उन्हान अपन द्वारा बनाए वाहन का प्रदर्शित किया। इन्ही दिना एम ही वाहन क निमाण मे स्विटजरलैंड क एक आविष्कारक काल वाईलैंड भी लग हए थ। अमरिका की कुछ कपनिया भी एम ही वाहन क विकास पर काय कर रही थी।

परतु इसके आविष्कार का श्रेय ब्रिटेन के काकरेल को ही जाता हे। इस वाहन को वायुयान आर जलयान क मध्य का वाहन माना जाता ह।

दरअसल काकरेल महादय जहाज की उस प्रतिरोधक समस्या क हल की तलाश म थे, जा जलयान की सतह और पानी क बीच घषण न पदा होती ह और इस घषण म ऊजा का बहुत बडा भाग फिजल म ही नप्ट हो जाता है। इस घषण क परिणामस्वरूप जहाज की गति भी
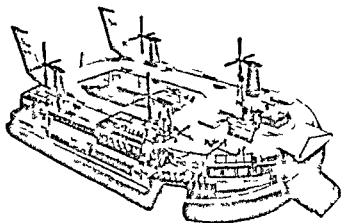
हावरक्राफ्ट

सीमित हा जाती ह। अत वे इस युक्ति पर विचार कर रह थ, जिसक आधार पर जहाज का पानी की सतह मे ऊपर उठाकर वायु क गद्दे पर चलाया जाए। इस विचार को कायरूप दन के लिए उन्हान एक वाहन बनाया जो इस प्रकार था—वाहन के पदे मे लगे एक बडे परो मे वायु का एक अति उच्च दाव (High
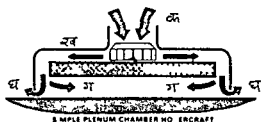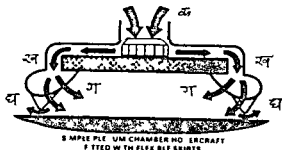
होवर क्राफ्ट के ऊपर उठने की कार्य प्रणाली पखा (क) वायु खीच कर बाहर (ख) की ओर से निकल जाती है और (ग) स्थान पर वायु का गद्दा सा निर्मित हो जाता है। (घ) स्थान पर एक लचकीला आवरण यान को नियत्रण म रखता है।

Pressure) वाला वायु का गद्दा-सा निमित हो जाता था आर हवा आस-पास कई टोटीदार छिद्रो से बाहर निकलती रहती थी। इस प्रकार 'एक लचकीला-सा आवरण इस वायु को जहाज के तल के नीचे गद्दे की सूरत म बनाए रखता था ओर जहाज पानी, जमीन या वर्फ अथवा किसी भी ऊची-नीची, ऊबड-खाबड जगह पर लगभग तीन-चार फुट ऊपर ही टगा रहता था। इस क्रिया के लिए किसी सतह, पानी या जमीन का आधार होना आवश्यक था। बिना आधार के यान ऊपर टगा नही रह सकता था। साथ ही यह बहुत ऊचा भी नही उठ सकता था। ऐसे यान का नाम हावरक्राफ्ट रखा गया।

इसी आधार पर निर्मित सन् 1959 मे एक चार टन भारी होवरक्राफ्ट का सफल परीक्षण किया गया। यह वाहन लगभग 30 नॉट के वेग से चलता हुआ समुद्र की सतह पर ऊपर उठकर दोडने लगा ओर समुद्र से बाहर निकलकर बालू पर दोडने लगा। बालू के ढेर से निकलकर यह एक सडक पर आ गया। इस विचित्र वाहन को सभी सतहो पर समान रूप से दोडता देख लोग विस्मित रह गए। ब्रिटेन के सागर तटो पर इस वाहन के कई परीक्षण किए गए। उसके बाद 1968 से इंग्लिश चेनल के आर-पार एक नियमित होवरक्राफ्ट सेवा आरम्भ कर दी गयी।

एक होवरक्राफ्ट लगभग 250 यात्रियो को तथातीस मोटरकारो को लेकर लगभग 60-70 नॉट के वेग से समुद्र की सतह के ऊपर दोड सकता है। तेज रफ्तार मे इसकी ऊचाई छह फुट तक हो जाती हे। समुद्र की ऊची-ऊची लहरे इसके लिए कोई बाधा उत्पन्न नही करती। काकरेल के इस आविष्कार से अन्य कई देशो के इजीनियरो ने भी प्रेरणा ली ओर इसमे कुछ सुधार कर इसे आर अधिक सुविधाजनक बनाया।

ब्रिटिश इजीनियरो का मत हे कि होवरक्राफ्ट उन देशो के लिए बडे उपयोगी सिद्ध हो सकते हे, जहा सचार साधनो का पयाप्त विकास नही हो पाया ह। उदाहरण के लिए भारत, अफ्रीका, उत्तरी कनाडा, मध्य आस्टेलिया आदि ऐसे देश ह। इन देशो मे 50 से 100 टन वाले होवरक्राफ्ट नदियो के ऊपर, रेगिस्तान मे, खदको आदि मे मवारियो ओर सामान को सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढा सकते हे। इस वाहन को न सडको की जरूरत हे, न बदरगाहो की।

अमरीकी इजीनियरो ने एक ऐसी होवर-रेल का परीक्षण किया हे, जो पटरियो को बिना छुए वायु की एक पतली-सी गद्दी पर लगभग 300 मील प्रति घटे की रफ्तार से दोडती हे। फ्रास, अमरीका, रूस, जमनी आदि देशो मे इस किस्म की माना रेले वन चुकी ह ओर उन्हे अधिक सफल बनाने का कार्य तजी से हो रहा हे।
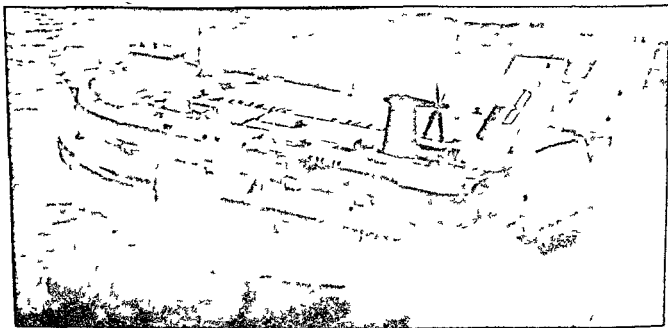
पहिए और गाड़ी का आविष्कार

पहिए का आविष्कार कब, किसने और कहा किया, इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। पहिए का उपयोग हजारा वर्षा से होता आ रहा है। इस आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिम समय पहिए का आविष्कार हुआ था, उस समय का मानव सभ्यता के आरभ मे था। प्राचीन काल के कुछ अवशेषो से यह पता चलता है कि पहिए के आविष्कार से पहले उस काल क लोग भारी पत्थरो को या पेडा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जान के लिए उनके नीचे लकडी के कई गोल डडे रखकर ओर उस पर म बाझ का खिसकाकर ले जाते थे। गोल लक्डी क डडा के ऊपर मे पत्थर सरलता स आगे फिसलते जाते थे, क्याकि इस युक्ति से घर्षण का प्रभाव कम हा जाता था।

हो सकता है पत्थरा को इसी युक्ति से ले जात हुए किसी गोल लकडी का कछ भाग पहिए की शक्ल मे टूटकर अलग हो गया हो और उसन पहल पहल आदि मानव को पहिए का बोध कराया हो। या गोल लकडिया पर पत्थरो का बार-बार वर्षो तक खीचते रहन क बाद अचानक पहिए का आकार किसी आदिम मनष्य क मस्तिष्क मे उभर आया हा आर उसने पेड क तने से गोल चकती काटकर ससार क प्रथम पहिए का निमाण किया हो।

जो भी घटना हुई हो, पर इस तथ्य से मुह नही मोडा जा सकता कि प्राचीन काल के इस आश्चर्यजनक आविष्कार के बिना विश्व की सपूर्ण सभ्यता अस्तित्व मे नही आ सकती थी ओर न ही कायम रह सकती थी। पहिए के बिना न सडक पर वाहन होते, न आकाश मे हवाई जहाज,न घडिया समय देतीं,न कल-कारखाने ही चल सकते थे।

लेकिन पहिए का सही आकार बनाने के लिए आरी, बरमा, चाकू, रदा आदि किस्म के औजारो की आवश्यकता अवश्य पडती हागी क्योकि बिना इस प्रकार के औजारा के गोल पहिए का निमाण सभव नही था। अत पहिए का सही रूप और आम प्रचलन तभी हुआ होगा, जब उसे बिल्कुल सही गोलाइ प्राप्त होने लगी होगी। इससे यह ज्ञात होता ह कि आरी, बरमा, रदा चाकू आदि किस्म के ओजारा का विकास होने के बाद ही पहिए का सही विकास सभव हुआ होगा। पहिए को सही आकार देने के लिए आदिकाल के पत्थर के ओजार तो सर्वथा अनुपयुक्त थे।

परातत्ववेत्ताओ का ऐसा विश्वास है कि पहिए का प्रचलन सबसे पहले लगभग 4000 से 3500 वर्ष ईसा पूर्व सीरिया तथा सुमेरिया म आरम्भ हुआ था। सिधु घाटी मे पहिए का प्रचलन करीब 2500 वर्ष ईसा पूर्व
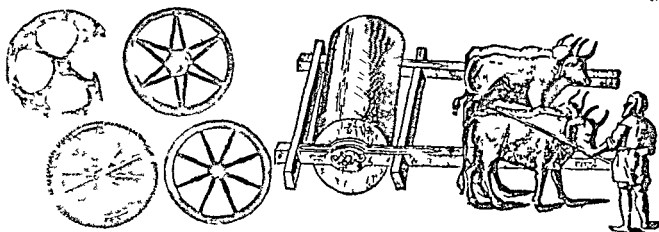
पहिए का क्रमिक विकास

प्राचीन ग्रीस म डायना क मंदिर क लिए स्तम्भा को लढ़काकर ल जाया जा रहा है

शुरू हुआ। 3000 इसा पूव तक मेमापोटामिया मे पहिए का प्रयोग खामा हाने लगा था।

लगभग 1800 इसा पूव मिस्रवासियो ने सबसे पहले आरेदार पहिए का आविष्कार किया। यह पहिया पुराने तव क आकार के भारी भरकम पहिए मे ज्यादा टिकाऊ हल्का आर मजबूत साबित हुआ। पहिए को नाभि (Hub) नमि (Felloe) तथा इन दानो भागो को अर (Spoke) म जाडकर बनाने स भार का दबाव समान रूप म विभाजित हा जाता ह। मिस्रवासियो न इसम एक सुधार आर किया। उन्हाने दो पहियो क बीच क धुर (Axle) पर लकडी का तख्ता न रखकर एक डिब्बेनुमा बॉडी बनाइ। इस प्रकार से बनी गाडी मे सामान या मनुष्य भी आराम मे बठ सकते थे। मिस्रवासिया द्वारा निर्मित इस गाडी को यूनानिया ओर रोमनो न भी अपना लिया। यूनानियो आर रोमनो ने इसका इस्तेमाल युद्ध के रथ दोड क रथ तथा धार्मिक सवारिया क रूप मे किया।

बैल क स्थान पर घोडे का उपयोग गाडी या रथ खीचन क लिए किया जान लगा। बला की अपक्षा घाडो का गाडी या रथ खीचन का काम सिखाना ज्यादा आसान था और इनकी गति भी बहुत तेज थी। अत घोडो का सवारी गाडी के लिए तेजी से उपयोग होने लगा। सवारी के घोडे जसा तेज, फुर्तीला आर चचल जानवर पा लेने के बाद उसमे जोतने के लिए गाडियो म भी परिवतन करन पड। रोमनो न चार पहिया वाली एक विशेष गाडी का आविष्कार किया। इस गाडी मे अलग धुरे पर आगे जा पहिए लगाए गए, उन्हे दाए-बाए घुमाया जा सकता था। इस विधि से गाडी को थोडी-सी जगह पर भी आसानी से दाए-बाए मोडा जा सकता था।

भारत म भी घोडा से चलन वाले रथो का प्रयोग बहुत पुराना हे। रथ सेना के चार अगो म प्रमुख था। उसका उपयोग सवारी के लिए भी राजा आर सामत-वर्ग करता था। इन रथो मे आमतौर पर दो से चार घोडे तक जोते जाते थे। रामायण ओर महाभारत काल से रथो की चर्चा आती है आर अनुमान किया जाता हे कि हमारे देश म रथा का प्रयोग कम से कम 3000 वर्ष पहले से अवश्य ह।

जेसे-जेसे समय बीतता गया पहियो के निर्माण मे सुधार होते गए। आज तो लोहे से बने पहिए जिनपर रबर के टायर ट्यूब लगे होते ह, सभी जगह प्रयोग मे आने लगे ह। आज पहिए के कारण ही ससार तेजी से उन्नति के पथ पर बढता जा रहा हैं।

फारमासा की प्राचीन पहिया गाडी

चार पहिया वाली रोम म विकसित प्राचीन माल ढोने वाली गाडी
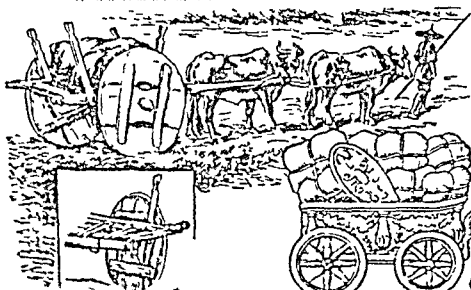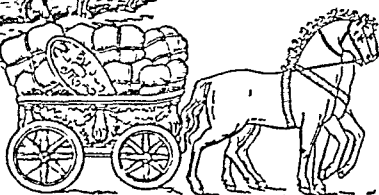
पुल का आविष्कार

मभवत समार क सबम पहले पल का निमाण प्रकृति ने स्वयम् ही किया था। अचानक ही कोइ पेड गिरकर किसी धारा के आरपार गिर गया हागा। उस रास्ते से निकलने वाले लागो का इस पड पर हाकर उस धारा को पार करने का रास्ता मिल गया आर इस प्रकार ससार के पहले पल का जन्म हुआ।

लिखित प्रमाणा के अनमार इसा मे 2230 वर्ष पूर्व बबीलोन की यूफ्रटीज नदी पर लकडी के शहतीरो का पुल बनाया गया था। यह विश्व का प्रथम पुल माना जाता है। इसके बाद ईसा से 600 वर्ष पूव इटली की आनियो नदी पर पत्थरा से पल निर्माण किया गया। प्राचीन चीन मे भी कई नदियो पर झूला-पुल के निर्माण का उल्लेख मिलता है।

भारत मे लगभग 5000 ओर 3500 वर्ष इ पू क ग्रथ रामायण मे सेतु-निर्माण का स्पष्ट उल्लख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि पुल-निर्माण कला का उपयाग भारत मे भी प्राचीन काल स हाता रहा है। रामायाण म सेतु-निर्माण के दौरान समस्या भी आती है, जिसे दूर किया जाता है और पत्थर पानी की सतह पर तैरन लगते है। इसका अर्थ यह है कि पुल-निर्माण मे किसी न किसी तकनीक का उस समय अवश्य इस्तेमाल किया गया था। राम की सेना के सदस्य नल ओर नील सेतु-निर्माण कला मे पारगत थे। अत उन्ही ने सेतु-निर्माण किया।

पेरू की प्राचीन इका सभ्यता के जमाने मे भी पुल-निर्माण का प्रचलन था। उस जमाने मे पुल लगभग 200 फुट तक लम्बे हुआ करते थे।

रोमनो ने सडक-निर्माण के साथ-साथ पुल-निर्माण के कार्य को भी विकसित किया। सडक-निर्माण के दौरान मार्ग मे आने वाली नदियो और घाटियो की बाधाओ को उन्होने पुल बनाकर दूर करने का प्रयास किया और वे उसमे सफल भी रहे। रोमनो ने 100 ई के लगभग
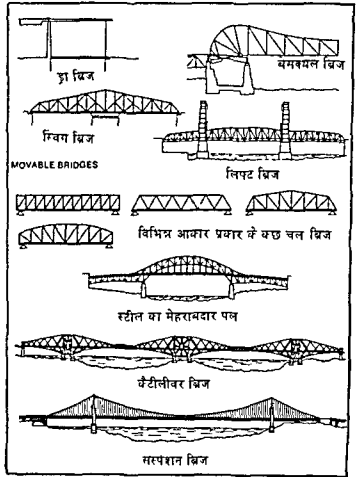
आरंभिक पलो का क्रमिक विकास

डैन्यूब नदी पर एक पुल का निर्माण किया। यह पुल 150 फुट ऊचे खम्भो पर अवस्थित था और इसके दोनो ओर लकडी की मेहराबे लगी हुई थी। रोमन साम्राज्य के समाप्त होने के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक यूरोप मे पुल-निर्माण के क्षेत्र मे कोई प्रगति नही हुई। बारहवी सदी मे अवश्य कुछ पुल बने जो आर्नो, फ्लोरेस और एल्ब नदी पर बनाए गए। इग्लैंड मे बने पहले पुल का निर्माण सभवत रोमनो ने ही किया था।

1176 मे पीटर द कोलचर्च ने इग्लैड मे एक पत्थर के पुल का निर्माण कराया। यह पुल लगभग 900 फुट चौडा था और इसमे उन्नीस मेहराबे थी। जहाजो को
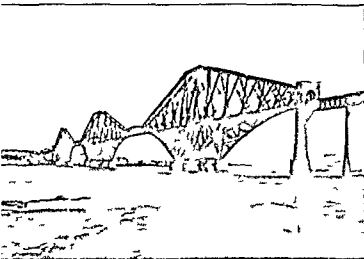
स्कॉटलैंड म बना कैंटीलीवर ब्रिज

निकलने के लिए रास्ता देने के लिए पुल का एक हिस्सा ऊपर खीचकर उठाया जा सकता था। यह पुल लगभग छह सौ वर्षों तक काम मे आता रहा।

पुल-निर्माण की तकनीक के विकास का क्रांतिकारी कदम इटली ने उठाया। आधुनिक पुल-निर्माण के वैज्ञानिक बुनियादी सिद्धातो के ज्ञान की शुरुआत पद्रहवी आर सोलहवी शताब्दी से अर्थात लियोनार्दो दा विंची के कार्यों से मानी जा सकती है, परतु पुल-निर्माण मे लोहे का प्रयोग पूरी तरह इस्तेमाल अठारहवी सदी के अत मे ही हुआ। ढलवा लोहे का पहला मेहराबदार पुल 1770 म इग्लंड मे बनाया गया। कुछ समय बाद इसी ढग के पुल जर्मनी और फ्रास मे निर्मित हुए। इसके बाद झूलने वाले पुलो का दौर शुरू हुआ। ये पुल जजीरा क सहारे बनाए जाते थे, जो झूलते रहत थे। अमरिका म बने कुछ झूला-पुल विशेष रूप स उल्लेखनीय ह। मेसाचुसेट्स मे मेरिमाक नदी पर सन् 1809 म 240 फुट लम्बा झूला-पुल आज भी मौजूद ह। टामस टेल्फोर्ड ने बगोर मे मेनाई का प्रसिद्ध झूला-पल सन 1819-25 मे बनाया, जो 580 फुट लम्बा था। न्यूयार्क आर न्यूजर्सी के मध्य हडसन झूला पुल अमरिका का आश्चर्यजनक पुल है।

यूरोप मे इसी समय के आस-पास पहला लोहे की जजीर वाला झूलता पुल जेनेवा मे बना। इसे स्विस इजीनियर हेनरी डूफोर ओर उसके फ्रासीसी साथी मार्क सेक्वा न बनाया।

अधिकाश आधुनिक झूला पुलो मे इस्पात के मोटे रस्से लगे होते हैं, जो सेकडो तारो को ऐठाकर बनाए जाते हैं, क्योंकि इस तरह क रस्से झला-पुल के लिए ज्यादा उपयोगी रहते है। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक झूला-पुल काफी लोकप्रिय रहे।

केचीदार पुल की आरम्भिक जानकारी चीनियो को भी थी। इस ढग के पुल मे दोनो ओर से लम्बी-लम्बी
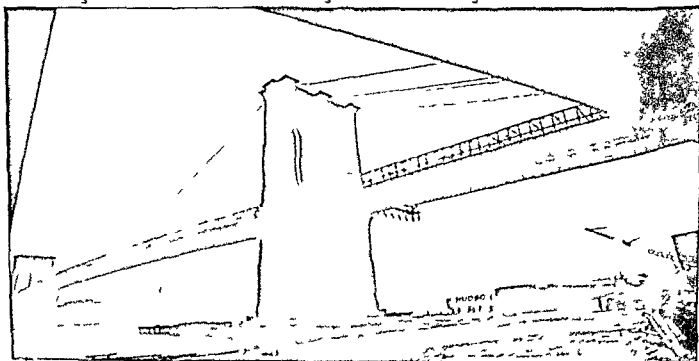
न्यूयार्क में स्थित एक आधुनिक पुल
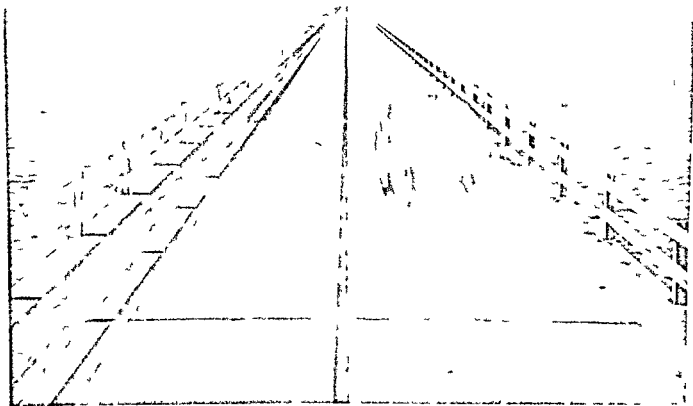
अमेरिका मे की वेस्ट वॉजवे फ्लोरिडा पर बना सात मील लम्बा पुल

कैंचिया मध्य म लाकर धरन (Fulcrum) क सहारे जोड दी जाती है। स्काटलेंड म फोर्थ नदी पर बना एक ऐसा ही केचीदार पुल हे। क्यूबक का सेट लारस पुल 1 800 फुट लम्बा हे। इसकी दोना ओर की कैंचिया दोनो किनारो पर से शुरू हाती ह।

जिस जगह बहुत ज्यादा विस्तार की जरूरत नही होती, वहा गडर के पुल उपयागी हाते ह। गडर क पुल देखने मे तो सुदर और आकपक नही लगते। गडर पुलो की शुरुआत तब से हुइ जब पिटवा लोहे की तकनीक विकसित हुई। जब जार्ज स्टीफेमन के पुत्र रॉबर्ट ने सबसे पहले इस नयी तकनीक के आधार पर मेनाइ जलसधि पर ब्रिटानिया गर्डर पुल का निर्माण किया तो ससार के अधिकाश इजीनियरा का ध्यान इस नयी तकनीक की सभावनाओ पर केंद्रित हा गया। यह पुल 1846-50 मे बना। इसमे पिटवा लोहे की प्लेटो और ऐगलेरन से बनी नलीदार गर्डरो का उपयोग किया गया था।

मेहराबदार पुल देखने म बहुत सुदर लगते हे। अत अधिकतर इजीनियर महराबदार पुल बनाने मे ज्यादा दिलचस्पी लेते रहे है। पत्थर और इट से बने मेहराबदार पुलो का विस्तार ज्यादा नही हो पाता था। लोहे और इस्पात क प्रयाग क बाद इनका विस्तार कर पाना सभव हो गया। लोह का महराबदार बडा पुल 1864 म कोब्लज म राइन नदी पर बना। इस पुल मे तीन लम्बे विस्तार थे। इसम प्रत्येक विस्तार की लम्बाइ 315 फुट थी।

इस समय एक विस्तार का सबस बडा मेहराबदार पुल आस्टेलिया का सिडनी हाबर पुल है।

ससार का सबसे ऊचा पुल नार्वे ओर स्वीडन के मध्य स्वाइन सड नदी पर बना हे। यह पुल 1946 मे बना। पुल और सुरग का यह अद्वितीय सयोजन अमरीका के वर्जीनिया क्षेत्र मे चेसापेक खाडी के आरपार 1963 मे बनकर तेयार हुआ। यह पुल-सुरग लगभग साढे सत्रह मील लम्बा है। इसमे 12 मील लम्बा 'घोडी-पुल' पानी की सतह से 30 फुट ऊचा हे। इसके मध्य मे चार कृत्रिम द्वीप हैं। इन्ही पर आधारित होकर दो सुरग जाती हैं। बीच मे एक प्राकृतिक द्वीप भी पडता है। इस तरह पुल और सुरग का यह बडा अनूठा सयाजन बन पडा है।

साइकिल का आविष्कार

मन् 1813 मे मानहाइम (जर्मनी) की सडको पर एक व्यक्ति दो पहियो वाले लकडी से वने एक विचित्र वाहन पर आगे-पीछे जमीन पर पैर मारता हुआ चला जा रहा था। राह चलत बच्चे, जवान ओर बूढे सभी उसे दखकर हस रह थे। विश्व की प्रथम बाइसिकल का आविष्कारक यही व्यक्ति था, जिमका नाम बेरन कार्ल फ्रीडरिश क्रिश्चियन लुडविग ड्राइस फान सोरब्रोन था। वेचारे इस व्यक्ति ने बाइसिकल का आविष्कार क्या किया उसे अपनी पेशनेवल सरकारी नौकरी से भी हाथ धोना पडा। साथ ही उसके कई-शत्रु वन गए। टढ़े-मढे, बेढगे दो पहिया वाले इस वाहन पर जिसे 'दौडने वाली मशीन' कहा जाता था, जब वह परो के धक्क से चलाने के लिए अजीब-अजीब हरकते करता ता लाग उम तरह-तरह के ताने मारते ओर बुरा-भला कहते। अपने इस आविष्कार के लिए मरकार से उसने पटेण्ट प्राप्त किया, परतु वह केवल वादन रियासत की सीमा तक ही वध था। आज के सबसे लोकप्रिय वाहन क आविष्कार पर उस समय किसी ने भी ध्यान नही दिया। वाइसिकल का यह आविष्कारक, बेचारा वैरन आर्थिक अभाव मे मन् 1851 मे चल बसा।

प्राग क कई विद्वाना की राय म एक लीक पर चलने वाले दा पहियो वाले वाहन का आविष्कार सन् 1808 मे
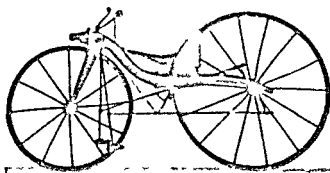
एक आरंभिक साइकिल
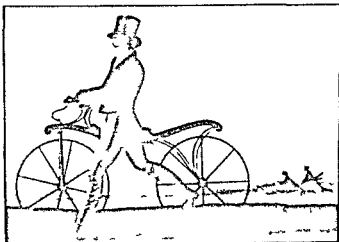
बैरन कार्ल अपनी साइकिल पर सवारी का आनद लत हए

पेरिस मे एक व्यक्ति ने किया था, परतु इसक विषय मे कोई-ठोस प्रमाण मोजूद नही हैं। वसे वकिघमशायर म स्थित एक चर्च की खिडकी पर एक व्यक्ति साइकिल जेसे एक वाहन पर सवार हो बिगुल वजाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र मे नीचे 1643 की तिथि लिखी हुइ है। इम पर किसी विशष व्यक्ति अथवा स्थान का कोइ उल्लेख नही है।

आगे चलकर इगलेंड, फ्रास ओर अमरीका मे इस वाहन के विकास पर काफी काम हुआ।

बेरन के विचार क अनुसार मनुष्य को पेदल चलते वक्त अपने शरीर का भार एक पर मे दूसरे पेर पर डालन क लिए काफी शक्ति व्यय करनी पडती है। साथ ही शरीर का सतुलन भी बनाए रखना पडता है। अत क्या कोई एसा वाहन नही बनाया जा सकता जा मनुष्य का चलत समय वरावर एक धुरी पर वनाए रखे। इसी विचार को लकर उसने दा पहियो वाल इस वाहन का निमाण किया आर यह सिद्ध कर दिखाया कि एक लीक पर चलन वाला यह वाहन मनुष्य की चाल की गति तज वना सकता है। एक लीक पर दाडन वाल इस वाहन पर अपना सतुलन बनाए, जब बरन सडको पर दौडता ता लाग आश्चर्यचकित रह जाते।
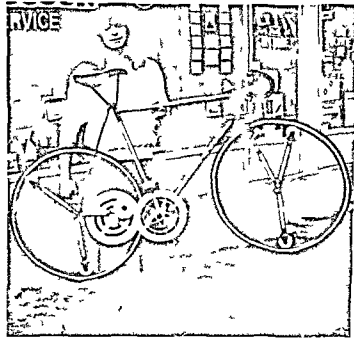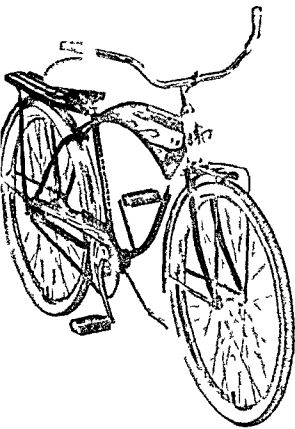
कुछ आधुनिक साइकिलें

इस विचित्र वाहन को सबसे पहले फ्रांस और इंग्लैंड में लोकप्रियता मिली। आरम्भ में बाइसिकल को 'हाबी हॉर्स' और उसके बाद 'डेंडी हॉर्स' के नाम से जाना गया।

इंग्लैंड और अमेरिका में तो इसे एक नये मनोरंजन की तरह भी अपनाया गया। बड़े-बड़े हालों में गोल घेरे के बीच नवयुवक-नवयुवतियां इन पर तरह-तरह के करतब दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते।

अब तक इस आविष्कार को आम जनता के लिए सवारी के एक साधन के रूप में विकसित नहीं किया जा सका था। सन् 1840 में एक लुहार किर्क पट्रिक मैकमिलन(स्कॉटलैंड)ने एक सुधरी हुई बाईसिकल का निर्माण किया। इस प्रकार लकड़ी के बजाय लोहे की बनी साइकिलों का प्रचलन शुरू हुआ। एक अन्य जर्मन मैकेनिक फिलिप हाइनरिख फिशर ने अगले पहिए में पेडलों की व्यवस्था कर इसे और अधिक सुगम बनाया। एक अंग्रेज व्यक्ति लॉसन ने पिछले और अगले पहिए के मध्य दांतेदार चक्का और पैडल लगाए और एक अन्य स्विस व्यक्ति हांस रेनोल्ड ने इसे रोलर चेन द्वारा संबद्ध कर पहिए चलाने की नयी युक्ति ढूंढी। इसके बाद अन्य कई आविष्कारकों ने तीलियों वाले पहिए, बाल बेयरिंग, गीयर शिफ्ट, स्प्रिंगदार गद्दी, फ्री व्हील आदि का निर्माण कर इसे और अधिक आरामदेह बनाया, परंतु गति तेज करने में अब भी पहिए बाधक बन रहे थे।

इस कमी को स्कॉटलैंड के एक पशु चिकित्सक डॉ जॉन बॉयड डनलप ने टायर ट्यूब का आविष्कार करके दूर किया। यह आविष्कार अचानक उनके दस वर्षीय लड़के के कारण हुआ।

लड़के को एक साइकिल दौड़ में हिस्सा लेना था। उसने अपने पिता से सहायता मांगी। पिता ने साइकिल के ठोस, भारी टायरों की जगह पानी भरने के पाइप को काटकर पहियों पर चढ़ा दिया और उनमें हवा भरने की व्यवस्था कर दी। लड़का दौड़ आसानी से जीत गया। बाद में डनलप ने इसमें सुधार कर अच्छे किस्म के टायर बनाए और एक आयरिश उद्योगपति के साथ
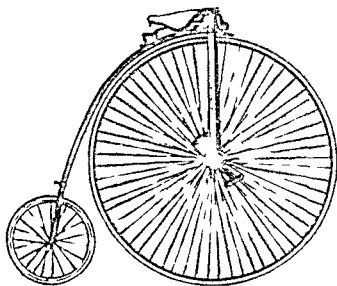
पेनी फार्दिंग नाम से प्रसिद्ध एक पुरानी साइकिल का मॉडल

मिलकर हवादार टायरो का उत्पादन आरम्भ कर दिया। इस आविष्कार के बाद ही बाइसिकल सही रूप मे लोकप्रिय हो सकी। इस प्रकार के अनेक प्रयासो के फलस्वरूप सन् 1885 मे साइकिल का आधुनिक रूप विकसित हुआ।

हवा भर टायरो ने सडक पर चलने वाले सभी वाहनो के विकास के रास्ते खोल दिए।

भारत मे बाइसिकल का लगभग सन् 1890-91 मे प्रचलन हुआ। 1899 मे स्वर्गीय पंडित जवाहर लाल नेहरू के पिता मोतीलाला नेहरू ने दो बाइसिकले इग्लैंड मे मगायी थी और चलाना सिखाने के लिए एक अग्रेज युवक को नौकर रखा था। सन् 1905 से भारत ने बाइसिकलो का इग्लेंड से आयात करना शुरू किया। सन् 1938 मे भारत मे साइकिल निर्माण का पहला कारखाना कलकत्ता मे खुला। उसके बाद दो कारखाने बम्बई और पटना मे खोले गए। आजकल बाइसिकलो के कारखाने दिल्ली और पजाब मे सबसे ज्यादा हैं। आज हमारे देश मे साइकिल उद्योग से सबधित 125 छोटे तथा 24 बडे कारखाने हें।

आज बाजार मे अनेक प्रकार की साइकिले उपलब्ध हैं। बच्चो के लिए तीन पहिए वाली छोटी साइकिले भी खूब मिलती है। छोटे आकार से बडे आकार की साइकिलो का निर्माण आज हमारे देश मे हो रहा हे। निश्चय ही इस सस्ते वाहन ने दूरी तय करने मे एक महान योगदान दिया है।
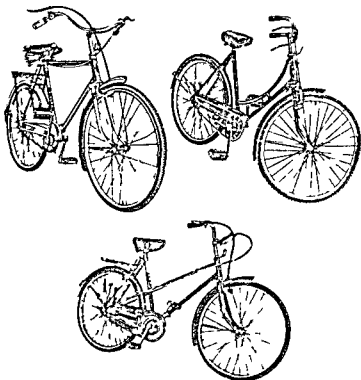
कुछ भारतीय आधुनिक साइकिलें

इंजनों का आविष्कार

भाप-इजन

भाप-इजन का विकास अनेक व्यक्तियो के सम्मिलित-परिश्रम का परिणाम है। परन्तु इसके आविष्कार का श्रेय इग्लड के जेम्स वाट को है। भाप इजन के आविष्कार के आविष्कार की शुरूआत करीब 2000 वष पूव मिस्र के प्राचीन नयर अलेक्जेण्ड्रिया से हुई थी। वहा के एक व्यक्ति हेरो ने सबसे पहले भाप से चालित टरबाइन बनाई। उसके भाप यत्र से एक मंदिर के द्वार अपने आप खुलते और वद होते थे। उसके बाद भाप म चलने वाले यत्रो के बारे मे इटली के महान चित्रकार वज्ञानिक, सगीतज्ञ ओर गणितज्ञ लियोनार्दा दा विंची ने कइ सभावनाए व्यक्त की। भाप-शक्ति से चलने वाली नाव ओर बदूक आदि का सचित्र उल्लेख उसने अपनी नोट-बुक मे किया हे। लियोनार्दो का जन्म 1452 मे ओर मृत्यु 1519 मे हुइ।

सत्रहवी शताब्दी मे भाप की शक्ति और उसके पयोग के विषय मे काफी प्रगति हुई। इटली के ही एक अन्य आविष्कारक जियोवन्नी बतिस्ता डेला पाता ने अपनी पुस्तक मे उल्लेख किया है कि भाप से दबाव डालकर पानी को किस तरह ऊपर उठाया जा सकता है। 1615 मे फ्रास के एक इजीनियर सालोमन द कास ने एक भाप के फव्वारे का आविष्कार किया था। रोम के एक अन्य व्यक्ति ब्राका ने अपनी पुस्तक मे भाप से चलने वाले अनेक यत्रो का वर्णन किया हे, जिसमे भाप-इजन का भी जिक्र है।

फ्रास के एक आविष्कारक डेनिस पेपिन ने भाप की शक्ति के प्रयोग मे प्रेशर कुकर का आविष्कार सन् 1672 मे किया था।

डेवनशायर (शिल्मटन) के एक इजीनियर ने 1694-1710 के मध्य भाप से चालित एक इजन बनाया। उसे अपने विभिन्न यत्रा के लिए सात पटट दिए गए। उसने अपन भाप-इजन के मॉडल को लदन की रॉयल सोसाइटी के सदस्यो के सामने प्रदर्शन भी किया। यह यत्र पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए प्रयोग म लाया जाता था।
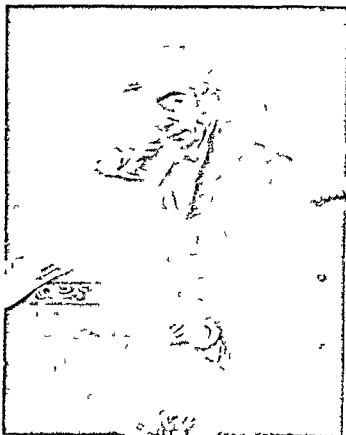
भाप इजन क आविष्कारक जम्स वाट

इसके वाद डेवनशायर के ही एक अन्य व्यक्ति थामस न्यूकामेन का भी भाप-इजन के प्रयोग में नाम आता है। न्यूकामेन और सेवरी लगभग एक ही समय म भाप क यत्रो के विकास पर प्रयोग कर रहे थे। न्यूकामेन ने 1712 मे अपना पहला भाप से चालित वायु दाव इजन बनाया।

1765 मे ब्रिटेन के एक इजीनियर जम्स वाट ने भाप-इजन बनाया। उमके भाप-इजन मे एक सिलिण्डर था, जिसमे पिस्टन लगा हुआ था। इजन
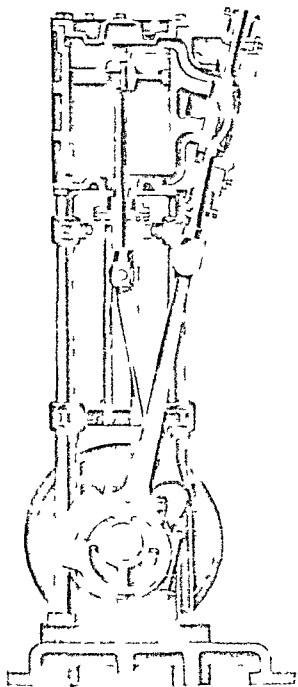
जम्स वाट का भाप इजन

चनाने के लिए भाप सिलिण्डर म ऊपर की तरफ से भेजी जाती थी तथा भीतरी वायु को हवा निकालने वाले वाल्व द्वारा बाहर निकाला जाता था। कंडेन्सर (संघनित्र) की लम्बे रूप म स्थित नली तथा इसके चारों ओर ठडे पानी से भरकर पम्प को ऊपर की ओर खींचा जाता था। इससे पानी को नली म बाहर निकालकर चारों म निवात (Vacuum) पैदा किया जाता था। इस तरह सिलिण्डर की भाप शीघ्र निवात म पहुच जाती थी ओर ठडी नली मे सघनित (Condensed) हो जाती थी। पिस्टन जिसके ऊपर निवात ओर नीचे की ओर भाप होती थी, सिलिण्डर मे ऊपर उठ जाता था ओर सिलिण्डर से लगी छड का भार ऊपर की ओर उठ जाता था।

इस प्रकार जेम्स वाट ने वायुदाब-इजन बनाने म सफलता प्राप्त की। 1776 मे वाट ने भाप-इजन के दो बडे मॉडल तैयार किए। दोनो ही इजन बहुत सफल रहे। एक इजन ब्लूमफील्ड कालियरी के लिए तथा दूसरा लोहे का निर्माण करने वाली धमन भट्टी म हवा देने के काम के लिए न्यू बिली मे स्थित फेक्टरी के लिए था।

वाट के साथ-साथ ही एक अन्य व्यक्ति बोल्टन (इग्लड) भी भाप इजनो के निर्माण म लगे हुए थ। बाद मे वाट-आर बोल्टन ने इस कार्य मे आपस मे साझेदारी कर ली।

आगे चलकर बोल्टन आर वाट क पम्प-इजनों म काफी सुधार किया गया। कुछ समय बाद एसे भाप-इजन बनने लगे जो पहिया घुमाने मे सक्षम थे। इन्हे घूणन-भाप इजन कहा जाता था।

वाट ने अपने पम्प-इजन म पहिया घुमाने की तरकीब खोज ली। साथ ही वह भाप का इजन म बरबाद होने से बचाने के उपाय भी खोजता रहा। भाप के अधिक दबाव फैलने आर बरबाद होने से बचाने के लिए इजनो म एक से अधिक सिलिण्डरो की व्यवस्था बडी ही उपयोगी सिद्ध हुई।

वाट ने 1775 म दोहरा कार्य करने वाला भाप-इजन बनाया आर उसके पटट के लिए उसका रेखाचित्र बनाकर अधिकारियो के समक्ष पेश किया।

1782 मे वाट ने इजन शक्ति को मापने का आधार अश्व-शक्ति (Horse Power) को बनाया। वाट ने एक प्रयोग म यह मालूम किया कि घोडा एक मिनट म 33000 पौंड भार एक फुट ऊचाई तक चढ़ा सकता है। इसी के आधार पर उसने अपने इजनो की शक्ति को आका जो उस समय 10 15 तथा 20 अश्व-शक्ति या हॉर्स पॉवर के रूप म व्यक्त की गयी। आज सारे ससार म हॉर्स पॉवर को इजनो की शक्ति की इकाई के रूप म

प्रयोग किया जाता है। आगे चलकर जेम्स वाट के नाम पर बिजली की शक्ति नापने की इकाइ का नाम 'वाट' पड़ा। 746 वाट एक हॉर्स पॉवर के बराबर होता है।

सन् 1820 म इग्लड के जाज स्टीफेन्सन ने बहुत ही सफल भाप-इजन का निमाण किया। यद्यपि इसका भार काफी था, लकिन अब तक के बने इजनो मे यह सबसे अच्छा था। इस इजन की सहायता से वह लोगो को एक स्थान स दूसरे स्थान तक ले गया। सन् 1825 मे सवारी और बोझा ले जाने वाली प्रथम रेलगाडी बनी जो भाप इजन से चलती थी।

उन्नीसवी शताब्दी मे सडक पर आर पानी मे चलने वाले वाहनो मे भाप-इजनो का प्रयोग बडी सख्या मे हुआ और भाप-इजना म काफी सुधार और प्रगति हुई। सडक-परिवहन आर जल-परिवहन के लिए वाहन बनाने वाले आविष्कारको ने भाप-इजनो का रूप ही बदल दिया। भाप-इजनो का प्रयोग जहाजो, सडक कूटने वाले भार-वाहनो, रेल आदि मे किया जाने लगा। पेट्रोलियम की खोज के बाद भाप-इजनो के स्थान पर पटोल और डीजल से चलने वाले इजनो का प्रयोग अधिक मात्रा मे होने लगा।

पेट्रोल इजन

पेट्रोल से चालित इजन का आविष्कार जर्मनी के एक इजीनियर ओगस्ट निकोलस ओट्टो ने किया था। पेटोल का उबलने का तापमान कम होने के कारण यह शीघ्र ही गैस म बदल जाता है। इसके इसी गुण का लाभ निकोलस ओट्टो ने उठाया। 1872 मे उन्होने गैस चालित इजन को बनान का काम सभाला और सन् 1876 मे एक चार स्ट्रोको वाले इजन का निर्माण किया। उनके इजन के चलने की प्रक्रिया चार स्ट्रोको मे पूरी होती है—1 चूषण (Suction), स्ट्रोक, इस क्रिया मे वायु के साथ मिश्रित गेस नीचे की तरफ जाते हुए पिस्टन द्वारा सिलिण्डर के अदर चूस ली जाती हे, 2 इस मिश्रण का ऊपर की ओर जाते हुए पिस्टन द्वारा सपीडन (Compression), 3 मिश्रण का दहन और साथ ही प्रसार, जिससे पिस्टन नीचे की ओर धकेला जाता हे और 4 पुन ऊपर की ओर जाते हुए पिस्टन द्वारा जली हुई गैसा की निकासी। सिलिण्डर मे ईधन के प्रवेश ओर गैसा के निष्कासन के लिए वाल्व होते हे, जो स्वय इजन द्वारा यान्त्रिक रूप से खुलते ओर बद होते हे। पिस्टन के साथ लगी छड एक क्रेक शाफ्ट को घुमाती हे, जो पिस्टन की आगे-पीछे होने वाली गति को घूर्णन गति मे परिवर्तित कर देती है। पेट्रोल इजन भाप-इजन की तुलना मे काफी हल्का और छोटा था। इस इजन को आवश्यकतानुसार क्षण भर मे चालू किया जा सकता था।

गोटलीब डायमलर नामक एक इजीनियर ने जो आट्टो के साथ काम करते थे, इस इजन मे दो सधार आवश्यक समझे। पहला तो यह कि इजन को मुख्य नली से प्राप्त गैस की बजाय पेट्रोल वाष्प से चलना चाहिए और दूसरा, इसकी ईधन जलने की प्रणाली बदली जानी चाहिए। ईंधन जलने का स्थान सिलिण्डर के अदर ही
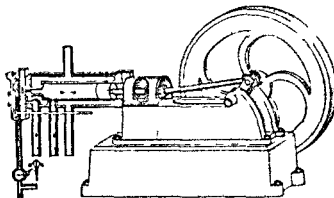
ओटटो द्वारा निर्मित पहला इजन
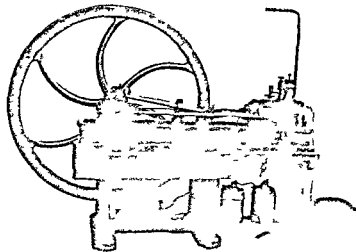
1860 मे बना आधा हॉर्स पावर का।

इम तरह इस विधि से कइ फायदे थे। पहला, इजन मे स्पाक प्लग अथवा बटरी जमी किमी प्रज्वलन प्रणाली की जरूरत नही थी। दूमरे इमम द्रव इधन को गेस मे परिवर्तित कर उम हवा से मम्पक कराने के लिए कार्बुरेटर की भी जरूरत नही थी। तीसरे, इम इजन मे मम्ता भारी तेल इस्तमाल किया जा सकता था।

अच्छे किस्म का पेट्रोल इजन इधन म माजूद ऊष्मा का अधिक मे अधिक 28-30 प्रतिशत कार्य मे परिवर्तित कर सकता है, जबकि डीजल इजन लगभग 35 प्रतिशत का काय म बदलने की क्षमता रखता ह।

परतु इस लाभ क साथ-माथ डीजल इजन की कुछ खामिया भी है। यह पेट्रोल इजन से लगभग दोगुना भारी हाता है। साथ ही इसम आवाज भी अधिक होती है और भारी तेल की निकाम गस वडी हानिकारक होती है। हा, इसका उपयोग ट्रको, बसो आदि मे बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ हे, क्योकि एक ता इसका इधन सस्ता होता है, दूसरे इसका इजन काफी मजबूत होता है। अधिक देर तक काम करने अथवा लम्बी दूरी की यात्रा की दृष्टि से यह काफी मस्ता पडता ह।

डीजल इजन को वड आकार मे भी बनाया जा सकता हे, जबकि पट्राल इजन को एक सीमा से अधिक बडा बनाना सभव या व्यावहारिक नही हे। यही कारण हे कि जहाजा और रेला के लिए डीजल इजन को ही रूपातरित कर प्रयाग म लाया जाता ह।

डीजल इजन मे स्पार्क प्लग, या बैटरी आदि किसी तरह के भी विद्युत-चुम्बकीय या ज्वलनशील पदार्थ की आवश्यकता नही पडती। डीजल इजन के सिलिंडर मे हवा को वायुमडल के 35 गुना अधिक दबाव पर लाया जाता हे, जिमसे उसमे लगभग 500 सेटीग्रेड तक का तापमान उत्पन्न हो जाता हे। इतने ज्यादा दबाव के तापमान मे किसी भी प्रकार के द्रव ईधन की फुहार छाडने पर वह तुरत जल उठता हे और धडाके की आवाज के साथ पिस्टन आगे की ओर ढकल दिया जाता ह और इस प्रकार इजन को सचालित करने का कार्य शुरू हो जाता हे। इस इजन म अपरिष्कृत, मिट्टी का कच्चा या मोटा तेल ही ईधन की तरह बहुत अच्छी तरह काम मे लाया जा सकता है।

इस इजन क आविष्कारक डीजल को लोग धनी व्यक्ति मानत थे। परतु यथार्थ म वे आर्थिक दृष्टि से बहुत तग थे ओर इसका कारण अपनी क्षमता से अधिक खर्च करने की उनकी आदत थी। आर्थिक स्थिति से तग आकर सन् 1913 म ब्रिटिश चैनल की यात्रा के दौरान अपने मोटर बोट मे उन्होने आत्महत्या कर ली।

रोटरी-पिस्टन इजन

रोटरी-पिस्टन इजन का आविष्कार बवेरिया के एक इजीनियर फेलिक्स वान्केल ने 1949-50 म किया था। उसक बाद इस इजन मे जर्मनी और अमेरिका मे कइ महत्त्वपूर्ण सधार हए।
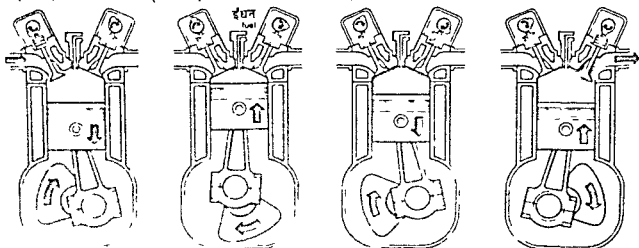
डीजल इजन की काय प्रणाली का एक रेखाचित्र

इसी प्रकार यूरोप मे डायमलर, बज, पेनहार्ड तथा रॉल्स रॉयस आदि कम्पनियो ने इस उद्योग मे बहुत कार्य किया।

इन सभी कार निमाताओ ने अतदहन इजन मे अनेक सुधार कर इसे आधुनिक रूप दिया।

डीजल-इजन

पेट्रोल इजन की भाँति ही डीजल इजन का उपयोग भी आज ससार के प्रत्येक देश मे हो रहा है। उपयोगिता की दृष्टि से यह इजन पेट्रोल-इजन से किसी प्रकार कम नही होता। इसका आविष्कार जर्मनी के रूडोल्फ डीजल नामक एक युवक ने किया था। उन्ही के नाम पर इसे डीजल इजन के रूप मे जाना जाता है। डीजल जब म्युनिख मे शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो उन्हाने अपने विज्ञान के प्रोफेसर से यह बात सुनी थी कि भाप के इजन मे जो ताप उत्पन्न होता है, उसका केवल 12 प्रतिशत ही ऊर्जा मे परिवर्तित होकर काम मे आता है। बाकी ऊर्जा बेकार जाती है, परतु यदि किसी अतर्दहन (Internal Combustion) इजन के सिलिडर के अदर तापमान को ईधन के जलने के दोरान पूरी मात्रा मे स्थिर बनाए रखा जाए तो इस परिवर्तन से उत्पन्न हुई अधिकतर ऊष्मा कार्य मे बदल जाएगी।

तभी से डीजल के मन मे इस तरह के इजन के निर्माण की बात घर कर गयी और वह तेजी से ऊष्मागतिकी सम्बधी अपने ज्ञान को बढाता रहा।
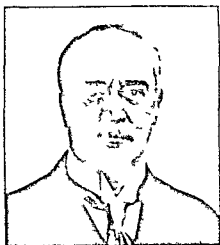
डीजल इजन के आविष्कारक रूडोल्फ डीजल
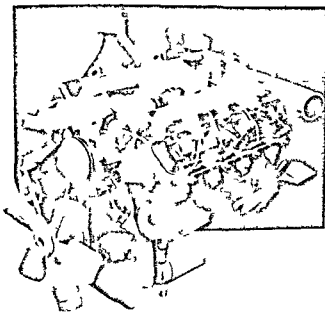
एक डीजल इजन

चौदह वर्ष तक उन्होने कठिन परिश्रम किया और इस समस्या का हल ढूढ लिया। परन्तु उन्हे अपने इजन को कार्यरूप देना शेष था। अनेक बडी-बडी कम्पनियो ने जिनमे जर्मनी की सुप्रसिद्ध क्रुप कम्पनी भी शामिल थी, डीजल को उनके इजन के निर्माण के लिए भरपूर सहायता दी।

1893 मे उन्होने अपने इजन का जो पहला नमूना तेयार किया, उसमे स्थिर तापमान बनाए रखने मे पूरी सफलता न मिल सकी, परतु उन्हे इतना विश्वास अवश्य हो गया कि वे ठीक मार्ग पर चल रहे है, क्योकि इस माडल मे वह कम से कम प्रेशर का स्थिर बनाए रखने मे सफल हो गए थे।

1897-98 मे डीजल ने एक अन्य परिष्कृत इजन का निर्माण किया। इस इजन से यांत्रिक इजीनियरो मे खलबली-सी मच गयी। डीजल ने इस इजन के सिलिडर मे वायु को इतना सपीडित(Compressed) किया कि सपीडक स्ट्रोक के अत म द्रव ईधन को प्रज्वलित करने के लिए काफी ऊचा तापमान उत्पन्न हो गया था और यह किसी स्पार्क प्लग अथवा किसी अन्य युक्ति के बिना ही सिलिडर के ऊपरी हिस्से मे पहुच जाता था। परतु ईंधन को सिलिडर मे धीरे-धीरे ही पहुचाया जाता था, ताकि पिस्टन के नीचे की ओर के स्ट्रोक की पूरी प्रक्रिया मे दवाव वरावर स्थिर वना रहे।

मेन बियरिंग Main Bearings
स्पार्किंग प्लग Sparking Plug
Cylinder Head सिलिडर हैड
Cylinder Block सिलिडर ब्लॉक
वाल्व Valve
पिस्टन Piston
कनक्टिग राॅड Connect Rod
नम्प
Crankshaft क्रैंक शॉफ्ट
फ्लाई व्हील Flywheel

अतदहन पट्राल इजन का आतारक भाग

हाना चाहिए तथा इसका प्रज्वलन विद्युत द्वारा होना चाहिए। उन्होन इस इजन म ये दोनो ही सुधार किए। वाद म इस म अन्य कई दूसरे सुधार भी हुए। गैस इजन से माटर कार या सवारी गाडी चलाने का प्रथम प्रयास करने वाले एक जमन इजीनियर थे, जिनका नाम था-कार्ल वैज। काल वज का यांत्रिक विज्ञान की बहुत अच्छी जानकारी थी।

इस प्रकार से विकसित इजना मे चूंकि ईधन इजन के अदर ही जलता था, अत इनको अतर्दहन इजन के नाम से जाना गया। जबकि भाप-इजन एक बाह्य-दहन इजन था।

1890 तक अनेक देशा क लोगा ने अतर्दहन इजन पर जार-शोर से कार्य किया आर इसमे अनेक सुधार किए। बीसवी शताब्दी के आरम्भ होन के साथ ही मोटर कार उद्योग, जिसम अतर्दहन का सबसे अधिक उपयोग हुआ, तेजी से विकसित हुआ। अमरिका म ओल्डस, ब्यूक, फोड, पैकार्ड तथा कडिलेक आदि मोटर-कार निमाताआ ने कार उद्योग को आगे बढाया।

चार स्ट्रोक वाले पेट्रोल इजन का आन्तरिक भाग

रोटरी-पिस्टन इजन म सिलिडर बेलनाकार न होकर तिकोना अडाकार रूप लिए होता है। पिस्टन भी घूमने वाली एक तिकोनी डिस्क की तरह होता है। इसक कोने वाले किनारे गोलाइ लिए होने है, जिससे कि इसके घूमने के दौरान-पिस्टन के कम से कम एक ही ओर इतनी जगह हमशा बनी रहे कि गैसो के आने-जाने तथा फैलने म कोइ बाधा न आए। यह इजन अपनी विशेष बनावट के कारण एक पिस्टन से ही तीन पिस्टन-सिलिडर वाले इजन का काय करता है। यह प्रति मिनट 1500 से 17000 चक्कर की रफ्तार से घूमता हे।

आधुनिक रोटरी पिस्टन इजन

चार स्टोको वाले प्रचालित इजन की तुलना मे रोटरी-पिस्टन इजन म केवल दो घूमन वाले पुर्जे लगे रहत हैं—एक पिस्टन, जिससे 'रोटर' का काम लिया जाता है और दूसरा आउटपुट-शाफ्ट, जिसमे यह रोटर लगा हाता है। इस इजन म कार्बुरेटर और स्पाक प्लग भी हात हैं। सस्त और घटिया इधन से भी इसे चलाया जा सकता हे। यह इजन बहुत जटिल नही होता। अत इसे बनाना सरल और सस्ता पडता है।

वान्केल ने रोटरी-पिस्टन का इस्तेमाल अपनी पहली व्यापारिक कार मे किया, जिसका नाम 'माज्दा 110-एस' था। इसमे दो रोटरो से युक्त इजन इस्तेमाल किया गया था। चार वर्ष की कडी मेहनत के बाद 1968 म यह कार जापान के बाजार मे बिक्री के लिए आ सकी। ब्रिटेन म रॉल्स-रॉयस और फ्रास मे सीत्रोआने नामक कम्पनिया ने भी इस प्रकार की कारे तैयार की हैं।
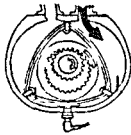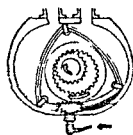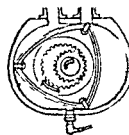
वान्केल के इजन का इस्तेमाल विमानो क लिए भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। अमरीका मे इस पर काफी काम हुआ हे। अमरीका मे 800 हॉर्स पावर का रोटरी-पिस्टन इजन विकसित हो चुका हे।

रोटरी पिस्टन इजन का सरल रेखाचित्र

मेन बियरिंग Main Bearings
स्पार्किंग प्लग Sparking Plug
Cylinder Head सिलिंडर हैड
Cylinder Block सिलिंडर ब्लॉक
वाल्व Valve
पिस्टन Piston
कनेक्टिंग रॉड Connect Rod
सम्प
Crankshaft क्रैंक शॉफ्ट
फ्लाई व्हील Flywheel
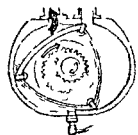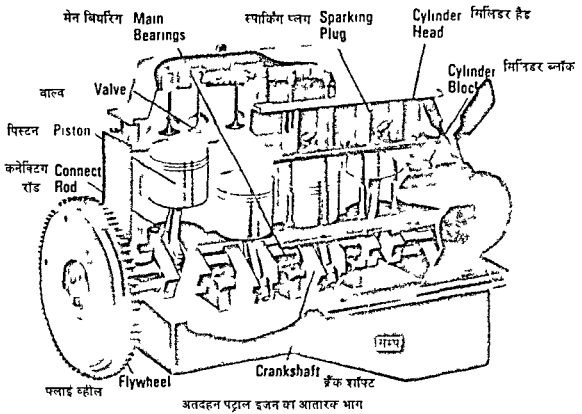
अतदहन पट्राल इजन का आतारक भाग

होना चाहिए तथा इसका प्रज्वलन विद्युत द्वारा होना चाहिए। उन्होने इस इजन म ये दोनो ही सुधार किए। बाद म इस मे अन्य कई दूसरे सुधार भी हुए। गेस इजन से मोटर कार या सवारी गाडी चलाने का प्रथम प्रयास करने वाले एक जर्मन इजीनियर थे, जिनका नाम था-कार्ल बेज। कार्ल बेज को यांत्रिक विज्ञान की बहुत अच्छी जानकारी थी।

इस प्रकार से विकसित इजनो मे चूकि ईधन इजन के अदर ही जलता था, अत इनको अतर्दहन इजन के नाम से जाना गया। जबकि भाप-इजन एक बाह्य-दहन इजन था।

1890 तक अनेक देशो क लोगो ने अतदहन इजन पर जोर-शोर से काय किया और इसमे अनेक सुधार किए। बीसवी शताब्दी के आरम्भ होने के साथ ही मोटर कार उद्योग, जिसमे अतदहन का सबसे अधिक उपयोग हुआ, तेजी से विकसित हुआ। अमेरिका म ओल्डस, ब्यूक, फोड, पेकार्ड तथा कैडिलेक आदि मोटर-कार निर्माताआ ने कार उद्योग को आगे बढाया।
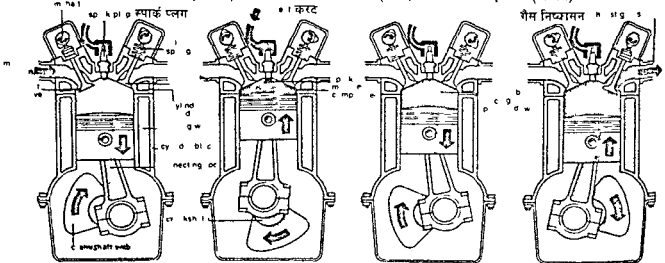
चार स्ट्रोक वाले पट्रोल इजन का आतरिक भाग

रोटरी-पिस्टन इजन मे सिलिडर बेलनाकार न होकर तिकोना अडाकार रूप लिए होता हे। पिस्टन भी घूमने वाली एक तिकोनी डिस्क की तरह होता हे। इसके कोने वाले किनारे गोलाई लिए ह्ये हें, जिसमे कि इसके घूमने के दौरान-पिस्टन के कम से कम एक ही ओर इतनी जगह हमेशा बनी रहे कि गेसो के आने-जाने तथा फेलने मे कोई बाधा न आए। यह इजन अपनी विशेष बनावट के कारण एक पिस्टन से ही तीन पिस्टन-सिलिडर वाले इजन का काय करता है। यह प्रति मिनट 1500 से 17000 चक्कर की रफ्तार से घूमता ह।

आधनिक रोटरी पिस्टन इजन

चार स्टोको वाले प्रचालित इजन की तुलना मे रोटरी-पिस्टन इजन मे केवल दो घूमने वाले पुर्जे लगे रहते ह—एक पिस्टन, जिससे 'रोटर' का काम लिया जाता है ओर दूसरा आउटपुट-शाफ्ट,जिसमे यह रोटर लगा होता ह। इस इजन मे कार्बुरेटर और स्पार्क प्लग भी होते ह। सस्ते ओर घटिया इधन से भी इसे चलाया जा सकता हे। यह इजन बहुत जटिल नही होता। अत इसे बनाना सरल ओर सस्ता पडता हें।

वान्केल ने रोटरी-पिस्टन का इस्तेमाल अपनी पहली व्यापारिक कार मे किया, जिसका नाम 'माज्दा 110-एस' था। इसमे दो रोटरो से युक्त इजन इस्तेमाल किया गया था। चार वष की कडी मेहनत के बाद 1968 मे यह कार जापान के बाजार मे बिक्री के लिए आ सकी। ब्रिटेन मे रॉल्स-रॉयस और फ्रास मे सीत्रोआने नामक कम्पनियो ने भी इस प्रकार की कारे तैयार की हें।

वान्केल के इजन का इस्तेमाल विमानो के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुआ हे। अमरीका मे इस पर काफी काम हुआ है। अमरीका मे 800 हॉर्स पावर का रोटरी-पिस्टन इजन विकसित हो चुका हे।

रोटरी पिस्टन इजन का सरल रेखाचित्र

मोटरकार और मोटर-साइकिल का आविष्कार
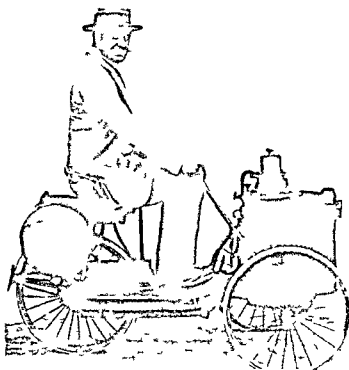
कार्ल बैंज द्वारा निर्मित पहली मोटरकार (1886)

मोटरकार

जर्मनी के एक होनहार इंजीनियर कार्ल बेंज ने ओट्टो द्वारा आविष्कृत पेट्रोल गैस इंजन का परिष्कृत रूप तैयार कर उसका इस्तेमाल सबसे पहले मोटरकार के लिए किया। इस तरह उसने विश्व की प्रथम मोटरकार का आविष्कार किया।

मोटरकार के रूप में 1886 ई में कार्ल बेंज ने जो मॉडल तैयार किया था, वह एक तीन पहिए की बाइसिकल के ढाचे की ढेढी-मेढी-सी गाडी थी, जो गैस इंजन से चलती थी। जब वह पहली बार अपनी इस कार पर बैठकर मनहाइम नगर (जर्मनी) की सडको पर निकला तो लोगो ने उसका बडा उपहास किया।

बेंज ने इसमें जिस इंजन का इस्तेमाल किया था, वह 120 चक्कर प्रतिमिनट के बजाए 250-300 चक्कर प्रति मिनट काटता था। बेंज ने एक नये ढंग की विद्युत प्रज्वलन प्रणाली का भी आविष्कार किया। उसने इंजन को ठंडा करने की युक्ति भी निकाली ताकि इंजन को अधिक से अधिक देर चलाकर लम्बी दूरी तय की जा सके।

1887 में बेंज ने पेरिस में आयोजित एक प्रदर्शनी में मोटरकार के एक सुधरे हुए मॉडल का प्रदर्शन किया। पहले तो इस पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई परंतु जब एक वर्ष बाद लोगो ने इसे म्यूनिख की सडको पर चलते देखा तो इस वाहन के प्रति लोगो में उत्सुकता जागी और कई देशो में इसकी मांग आने लगी।

1886 में गैस इंजन के आविष्कर्ता ओट्टो के साथी गोटलीब डायमलर ने एक चार पहिए वाली मोटरकार बनायी। इसमें डेढ अश्व-शक्ति का इंजन लगाया गया था। यह 18 मील प्रति घंटे की गति से चलती थी। 1889 में डायमलर ने अपने एक अन्य साथी विलहल्म मेबाख की मदद से चार पहिए वाली तथा पानी से ठंडा होने वाले चार गियर वाले इंजन से युक्त एक मोटरकार को पेरिस की एक प्रदर्शनी में प्रदर्शन किया। बग्घियां बनाने वाली एक फ्रांसीसी कम्पनी ने डायमलर की मोटरकार का निर्माण का ठेका प्राप्त कर लिया और इस प्रकार मोटरकार का निर्माण करने वाला वह पहला देश बन गया।
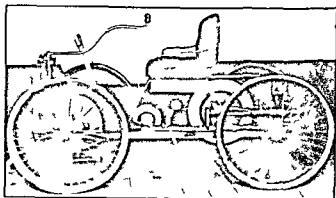
हेनरी फोर्ड की परिवर्धित मोटरकार
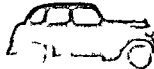
की तरह इसमे जटिलता नही होती। अत इसे नियंत्रित करना ज्यादा आसान होता हे। इसम पेराफिन जेसा सस्ता ईधन या कोयले का चूरा एक दहन-कक्षा मे जलता है और उसमे से निकलने वाली गैसे टरबाइन को चलाने के लिए जबदस्त बल प्रदान करती हे। इस इजन को बहुत अधिक हवा की आवश्यकता पडती है, जिसे टरबाइन मे चलने वाला एक कम्प्रेसर सपीडित (Compressed) करता हे। यह इसे सपीडित कर ईधन की फुहार छोडने वाले यत्रा क मध्य से निकालते हुए दहन-कक्षा मे धकेलता ह। गर्म गैसे जब टरबाइन के ब्लेडो का चलाने के लिए उससे टकराती हे, तो बहुत ताप उत्पन्न होता हे।

गेस टरबाइन इजन मे गीयर की आवश्यकता नही पडती। बहुत अधिक ताप उत्पन्न होने से गेस टरबाइन कार की बाडी विशेप मिश्र धातु से बनायी जाती हे। 1952 मे ब्रिटेन के एक इजीनियर रोवर ने पहली टरबाइन कार बनायी। इस कार ने लगभग 150 मील प्रति घटे का वेग प्राप्त किया। इस कार के टरबाइन-इजन का भार केवल 300 पोड था। अगर इतनी वेग पाने के लिए पेट्रोल इजन बनाना पडता तो उसका भार लगभग एक हजार पोंड होता, जिसे कार मे लगाना असभव होता। अमरीका की कम्पनी जनरल मोटस न 'फायर वर्ड-3' नामक अपनी पहली प्रयोगात्मक टरबाइन कार 1958 मे तेयार की। इसके
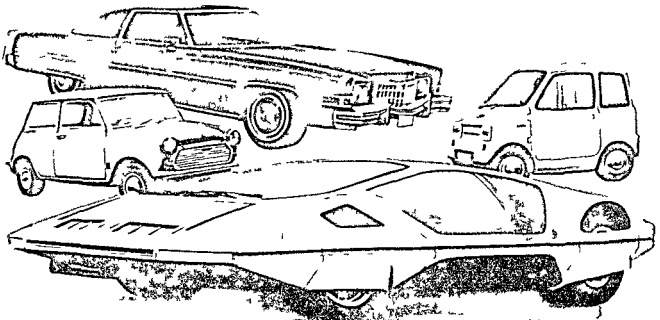
कछ आधुनिक मोटरकारे

इजन के चक्कर प्रति मिनट 27 000 थे। 600 पौंड भार का यह इजन 225 हार्स-पावर की शक्ति का था। इसम ताप नष्ट करन के लिए एक ताप एक्सचेंजर की व्यवस्था भी थी। यह 90 प्रतिशत ताप को कम्प्रेशर कक्षा में वापस लौटाकर पुन काय म लगा देता था। इस कार में स्टीयरिंग व्हील और एक्सीलरेटर की जगह दूसरी व्यवस्था थी। गाडी का मोडन, गति कम-ज्यादा करन की व्यवस्था इलक्ट्रॉनिक प्रणाली से होती थी।

वर्वेरिया क एक अन्य आविष्कारक इजीनियर फेलिक्स वान्केल न रोटरी-पिस्टन इजन का आविष्कार कर उसे कार मे लगाया। वान्केल क रोटरी-पिस्टन इजन से युक्त कार 'माज्दा 110 एस' 1968 म बनकर तैयार हुई। यह कार तज गति म भी बहुत बढ़िया चलती है और इसक इजन म ज्यादा आवाज नही होती। इसी दौरान ईंधन-सेल (बैटरी) स चलने वाली कार पर भी काफी प्रयोग हुए। ब्रिटन क एक युवक फ्रांसिस टी बैकन न सन् 1932 मे इधन-सेल का कार मे प्रयोग क परीक्षण शुरू किए और पूरे सत्ताइस वष बाद इस प्रकार का इधन-सेल बनान म सफल हुए।

इधन-सेल मे सेलो की एक पूरी बैटरी होती है। इसके अदर विद्युत-धारा उत्पन्न होती है। इस बटरी में दो इलेक्ट्रोडो की व्यवस्था होती है। ये इलेक्ट्रोड निकल चूण स बनी छेददार प्लेटो की शक्ल म होते है। य प्लेट पोटशियम हाइड्रॉक्साइड के चालीस प्रतिशत घोल मे स्थित होती हैं। सेल चालू करने पर 200° सेंटीग्रेड का ताप उत्पन्न होता है तथा गैसो से जो पानी तैयार होता है वह भाप के रूप मे निकलता रहता है।
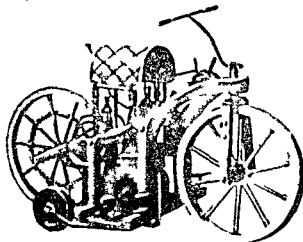
डायमलर द्वारा निर्मित मोटर साइकिल का आरंभिक रूप

इस सेल मे हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतर प्रभाव स करेंट और पानी उत्पन्न होता है तथा पानी भाप के रूप म निकलता है। अमेरिका मे क्राइसलर कार्पोरेशन न एक ईंधन-सेल कार का निर्माण किया। इस कार म प्रत्येक पहिए म एक-एक विद्युत मोटर सम्बद्ध थी। अत इस कार म गीयर-बाक्स, डिफरेंशियल ट्रासमिशन, चालन शाफ्ट तथा पीछे लगने वाले एक्सल की कोइ जरूरत नही थी। रूस मे भी इधन-सेल स चलन वाले वाहनो पर परीक्षण हो रहे है। इधन-सेल चालित वाहनो मे आवाज नही होती, नुकसान देने वाला धुआ नही होता और खच भी बहुत कम आता है।

इधन-सेल का उपयोग आजकल कृत्रिम उपग्रह मे किया जाता है। इसके द्वारा रेडियो ट्रासमीटर के लिए विद्युत उत्पन्न होती है। इधन-सेल से निकट भविष्य मे परिवहन क्षेत्र म क्रांतिकारी परिवतन होने की पूरी-पूरी सभावना है।

मोटर-साइकिल

मोटर-साइकिल के आविष्कार का श्रेय जमनी के इजीनियर गोटलीब डायमलर को है। उनके पिता एक बेकर थे। उनका जन्म न्यूरेम्बर्ग मे हुआ था। इजीनियर बनने के बाद उन्होंने जमनी और विदेशी कारखानो मे काम करके काफी अनुभव प्राप्त किया।

गैस इजन के आविष्कारक ओगस्ट निकोलस ओट्टो के साथ उन्होंने उनके कारखाने मे भी काम किया ओर गैस इजन म कई महत्त्वपूर्ण सुधार कर उसे ओर उपयोगी बनाया। गोटलीब डायमलर ने ही सबसे पहले यह विचार प्रकट किया था कि इस इजन का उपयोग सडक पर चलने वाले किसी वाहन मे किया जा सकता है। डायमलर ने इसके लिए इसमे मुख्य रूप से दो परिवर्तन आवश्यक समझे। पहला, इजन को मुख्य नली से प्राप्त गैस की बजाए पेट्रोल वाष्प से चलाना होगा। दूसरा परिवर्तन वह गैस इजन को चलाने मे प्रयुक्त होने वाली प्रज्वलन-प्रणाली मे करना चाहता था। ओट्टो की प्रज्वलन-प्रणाली मे सिलिंडर के बाहर एक छोटी-सी स्थायी लौ रहती थी, जो ज्यादातर सपीडन (Compression) के एक निश्चित बिन्दु पर

एक वाल्व के खुलन पर गैस को विस्फोटित करती थी। डायमलर चाहत थे कि इजन के सिलिडर क अदर ही विद्युत-प्रज्वलन की व्यवस्था होनी चाहिए।

कुछ दिन बाद डायमलर स्टुटगाट के पास काम्टाट नामक शहर म आ गए ओर वहा उन्हाने अपनी प्रथम मोटर-साइकिल का निमाण किया। अतदहन-इजन (Internal Combustion) द्वारा चलने वाली यह सबसे पहली मशीन गाडी थी। सन् 1885 मे उन्हाने अपनी इस मोटर-साइकिल का अपने घर के पिछवाडे चलाकर देखा। 1877 मे समक्स क एक इजीनियर जम्म स्टारले ने एक तिपहिया माटर-साइकिल का निमाण किया। स्टारले उम ममय साइकिल उद्योग क पितामह माने जाते थे।

जिस समय गोटलीव डायमलर न अपनी प्रथम मोटर-साईकिल का आविष्कार किया, उससे कुछ दिना पहले ही मानहाइम (जमनी) मे एक अन्य आविष्कारक काल बेज ने एक छोटी-सी तिपहिया पट्रोल-चालित कार तेयार की थी।
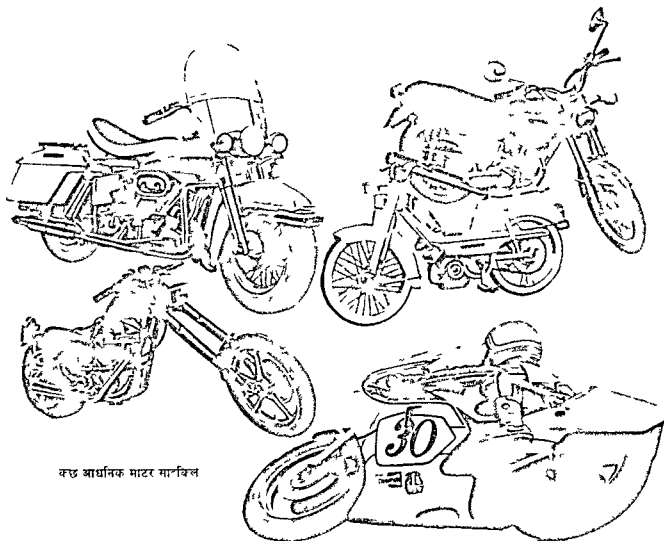
कछ आधनिक माटर सार्किल

रेल का आविष्कार

आज से लगभग तीन सौ वर्ष पहले फ्रास के एक व्यक्ति सालमन डी कास ने जब भाप से चलने वाली गाडी का विचार जनता और सरकार के सामने रखा तो लोगो ने उसे पागल समझा और सरकार ने उसे पागलखाने मे बद कर दिया।

सबसे पहला सफल रेल-इजन जार्ज स्टीफेसन ने बनाया था, अत उन्हे रेल-इजन का आविष्कारक माना जाता है।

वैसे सन् 1763 म फ्रास के एक व्यक्ति निकोलस जोसेफ कूनो ने एक वाष्पचालित गाडी बनायी, परतु यह सफल न हो सकी। सन् 1770 मे एक अमरीकी इजीनियर आलिवर इवास ने भी भापचालित गाडी तैयार की थी।

रेल इजन के आविष्कारक जॉर्ज स्टीफेसन

गैसबत्ती के आविष्कारक स्काटिश विलियम मर्डोक ने भाप इजन गाडी पर कुछ अच्छे प्रयोग किए, लेकिन उनकी कम्पनी के मालिको ने उन्हे बीच मे ही रोक दिया। इसका कारण यह था कि जेम्स वाट (स्काटिश) भाप-इजन के आविष्कार का पेटेट प्राप्त कर चुके थे।

जॉर्ज स्टीफसन द्वारा
निर्मित रॉकेट नामक रेल इजन (1829)
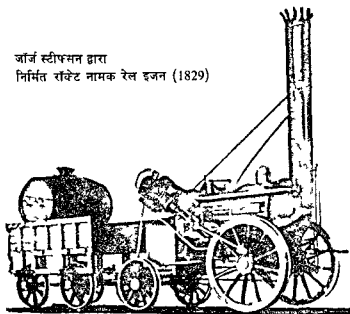
लेकिन मर्डोक के एक अन्य साथी रिचर्ड ट्रेविथिक ने उनके द्वारा बनाए भाप-इजन मे कई सुधार किए और एक ऐसी भाप-गाडी बनायी जो सडको पर बिछी लकडी की पटरियो पर चल सकती थी। ये पटरिया वास्तव मे माल से भरी गाडियो को घोडा द्वारा आसानी से खीचने के लिए बिछायी जाती थी। ट्रेविथिक ने अपनी भाप-गाडी का नाम 'पफिग डेविल' रखा था। एक दिन वह अपनी भाप गाडी के इजन को बद करना भूल गए। परिणामस्वरूप इजन म आग लग गयी। 1803 मे ट्रेविथिक ने एक और इजन बनाया ओर सडक पर चलाया, लेकिन इजन सडक पर सफलतापूर्वक नही चल सका। पहली बार टेविथिक ने यह निष्कर्ष निकाला कि भाप-इजन सडक पर चलनेवाला वाहन नही बन सकता। अत उसी ने सबसे पहले भाप-इजन को पटरियो पर चलाया। एक लोहे के कारखाने के लिए उसने रेल-परिवहन के लिए पहला भाप-इजन बनाया, लेकिन सफल होने से पहले ही वह आर्थिक सकट मे फस गया और 1833 मे 62 वर्ष की अवस्था मे उसकी मृत्यु हो गयी।

ट्रेविथिक का इजन (1803) फायर फ्लाई (1840) स्टर्लिंग इजन (1870)
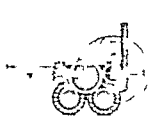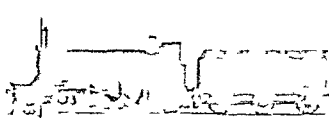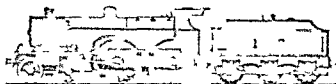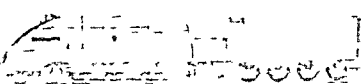
मिडलैंड इजन (1902) मैलार्ड इजन (1935)
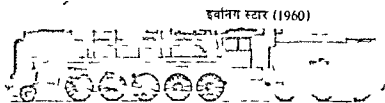
इवनिंग स्टार (1960)

रेल इजनो का विकासक्रम

रेल-इजन का सफल प्रदर्शन जार्ज स्टीफेसन ने किया। वह एक कोयला खदान मे खलासी था। अनपढ होते हुए भी इजनो क बारे मे उसे अच्छी-खासी जानकारी थी। जाज स्टीफेमन का मालिक उनसे बहुत खुश था। स्टीफेसन ने एक रेल-इजन बनाने मे आथिक मदद के लिए अपने मालिक को सहमत कर लिया। दो वर्ष के कडे परिश्रम के बाद सन् 1814 मे स्टीफेसन ने एक इजन तयार किया, जिसका नाम उन्होने 'ब्लूचर' रखा। यह रेल-इजन आठ डिब्बे जिनमे करीब तीस टन कोयला आता था, थोडी-सी चढाई के बावजूद चार मील प्रति घटे की रफ्तार से खीच ले जाता था। एक वर्ष बाद उन्होने कुछ सुधार करके एक दूसरा इजन बनाया जो अपक्षाकृत उत्तम सिद्ध हुआ।

इसी बीच आकलेंड की विशाल घाटी मे स्टाकटन से डालिगटन तक रेलवे लाइन बिछाने की अनुमति सरकार से प्राप्त हो गयी। इसके लिए रेल-इजन बनाने का काम स्टीफेसन को ही सापा गया, क्योंकि तब तक स्टीफेसन रेल-इजनो के अधिकारी विशेषज्ञ मान लिए गए थे।

सन् 1825 मे दस मील लम्बी रेल-लाइन का उद्घाटन हुआ ओर तेतीस डिब्बो के साथ स्टीफेसन के 'एक्टिव' नामक इजन ने उस पर सफलतापूर्वक यात्रा की। 450 व्यक्तियो के स्थान पर लगभग 600 व्यक्ति उस गाडी मे सवार हो गए थे। इस प्रकार यह पहली बार लोगो न भाप से चलने वाले नए वाहन की सवारी का आनद प्राप्त किया।

स्टीफेसन ने जब आमजनता के लिए परिवहन के रूप मे रेलगाडी के उपयोग का प्रस्ताव रखा तो कुछ विरोधी तत्त्वो ने इसका काफी विरोध किया ओर इसके चलने पर रोक लगाने की माग की, परतु अत म सरकार ने इसकी उपयोगिता को समझते हुए परिवहन के रूप म अपनाने की अनुमति दे दी। सबको समान रूप से अवसर प्रदान करने की ब्रिटिश परम्परा के अनुसार स्टीफेसन के अलावा अन्य इजन-निर्माताओ को भी मौका दिया गया। रेल-इजनो के निर्माण का ठेका देने स पूर्व ब्रिटिश सरकार ने एक इजन दोड प्रतियोगिता का आयोजन किया।

इस प्रतियोगिता मे कुल चार इजनो ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता म दो युवा इजीनियरो जॉन ब्रदवेट और जॉन एरिकसन के रेल इजन 'नॉवल्टी' टिमोथी हेक्वर्थ के 'सास्पारील' बस्टार्ल के 'परसीवरेस' और स्टीफेसन के 'राकेट' नामक इजनो ने भाग लिया।
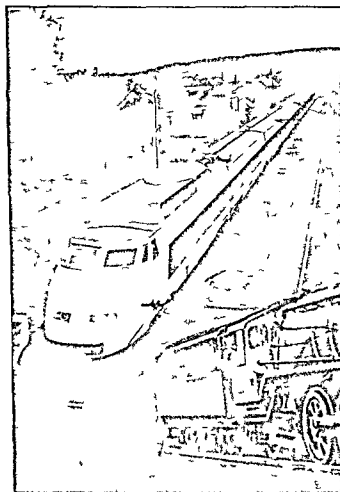
राकेट' जैसे ही अन्य सात इजनो से 15 सितम्बर 1830 को मेनचेस्टर, लिवरपुल रेल लाइन का उद्घाटन हुआ।

इस प्रकार रेलगाडी के आविष्कारक के रूप मे जाज स्टीफेसन विश्व म प्रतिष्ठित हुए।

जार्ज स्टीफेसन के भाप-इजन मे बाद मे कई अन्य वैज्ञानिको ने अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए। आज

विद्युत शक्ति स चालित एक विकसित रल इजन
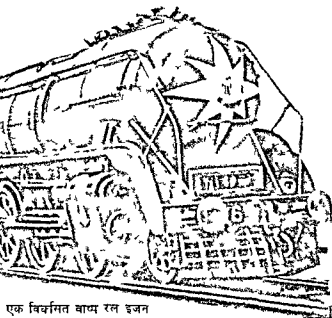
एक विकसित वाष्प रल इजन

सबसे पहले 'राकेट' ने प्रदर्शन दिया ओर लगभग तेरह मील प्रति घटे की रफ्तार से दूरी तय की। उसके बाद 'नॉवल्टी' इजन ने प्रदर्शन दिया। शुरुआत मे यह जब 'राकेट' से दूनी रफ्तार से दाडा तो लोग चकित रह गए, लेकिन कुछ दूर जाकर ही यह इजन बेदम होकर रुक गया। 'मास्पारील' इजन का भी कुछ दूर जाकर बायलर फट गया और 'परसीवरेस' तो छह मील प्रति घटे की रफ्तार से अधिक वेग प्राप्त ही न कर पाया। इस प्रतियागिता मे 'राकट' को ही सफलतम इजन माना गया।

अब म्टीफसन के डाइवर डिक्सन ने 'राकट' की वास्तविक शक्ति का प्रदर्शन किया। उसने 13 टन का भार खीचते हुए अपने इजन को पद्रह मील प्रति घटे की रफ्तार से बीस बार दौडाया। अत मे उसने हजारो दर्शको की तालिया की गडगडाहट के बीच अपने इजन को उन्तीस मील प्रति घटे की रफ्तार से दौडाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।

रेल-इजन भाप के अलावा डीजल और विद्युत शक्ति से भी चलने लगे है, जिनकी रफ्तार 100-180 किलोमीटर प्रति घटे होती है। ये हजारो टन माल एक साथ ले जा सकते है।

भारत मे सबसे पहली रेलगाडी 16 अप्रैल 1853 मे बम्बई से थाना के बीच चली थी। पूरे एशिया महाद्वीप के देशो मे सर्वप्रथम भारत मे ही रेलगाडी चलना आरम्भ हुई। आज हमारे देश मे 102005 किलोमीटर लम्बा रेलमार्गों का जाल बिछा हे। पहले रेल-इजन और डिब्बे विदेशो स मगवाए जाते थे, परतु अब पश्चिम बगाल मे स्थित चितरजन कारखाने मे भाप और बिजली से चलने वाले बढ़िया किस्म के इजन बनाए जाते है। मुगल सराय (मडुवाडी) के कारखाने मे डीजल इजन बनते हे। माल और यात्री डिब्बे पेरम्बुर (मद्रास) और बगलोर के कारखाना मे निर्मित होते हैं। देश क समस्त माल का 65% तथा 51% सवारिया आज रेल द्वारा ही ले जायी जाती ह।

हवाई जहाज का आविष्कार

हवाई जहाज के आविष्कारक आर्विल और विल्बर राइट

हवाइ जहाज क आविष्कार आर उसके विकास म अनक वज्ञानिका का हाथ रहा ह, परतु सफल वायुयान बनाने का श्रेय अमरिका क दो वज्ञानिका विल्बर राइट आर आर्विल राइट (राइट ब्रदर्स) को प्राप्त हुआ। अत उन्ह ही हवाइ जहाज का आविष्कारक माना जाता ह।

इमस पहल मनुष्य भाति-भाति क तरीका से आकाश म उडन के सपन दखता रहा था, परतु उसका सपना पूरा न हा सका।

हाइडाजन गस की खोज क बाद वायुयान क रूप म सबस पहल गस-गुब्बारा का आविष्कार हुआ। इससे पहले भी गुब्बारा का गरम हवा द्वारा उडाया जाता था। हाइडोजन गस का उडान के लिए प्रयाग सबसे पहल लीआन्स क पास आनान नगर के दा युवका जाजफ आर एतीयने मागालफियर न किया। उन्हाने एक गुब्बार का 6000 फुट की उचाइ तक उडाया। उसके बाद पेरिस क राबट बधुआ न दस फुट व्यास का रशम का गुब्बारा तैयार किया आर उसम हाइडाजन गस भरी। 27 अगस्त 1783 का गुब्बारा छाडा गया जा अधिक गस भरी हान के कारण 15 मील दर जाकर अचानक फट गया। 19 सितम्बर सन् 1783 म इसी प्रकार क गुब्बार म एक छोटी-सी टाकरी लगाकर आर उसम एक मुर्गा, बत्तख आर भेड बिठाकर उडाया गया। 21 नवम्बर सन् 1783 का सबस पहला मानवयुक्त गुब्बारा आकाश म उडाया गया।

1785 म एक अग्रेज वज्ञानिक डॉ जेफ्राइस आर जा पियर ब्लाशर नामक एक मेकेनिक न गुब्बार से इंग्लिश चनल पार करने का साहसिक प्रदर्शन किया, लेकिन आधी दूरी तय करने के बाद गुब्बारा नीच आन लगा। दोना ने भार हल्का करने क लिए खटाला काटकर फक दिया आर गुब्बारे की जाली स चिपककर उडते रह। इसक बाद उन्हान अपने कपडे भी उतार-उतार कर फकन शुरू कर दिए। अत मे किसी तरह वे चनल पार करने मे सफल हो गए। हवाई गुब्बारा का आविष्कार ता हा गया था, लेकिन इनसे दुघटनाओ का सिलसिला शुरू हो गया। अत यह कोइ सुरक्षात्मक साधन साबित नही हुआ। साथ ही गब्बारा वायु की दिशा म ही बहता था। पूरी उन्नीसवी सदी के दारान गुब्बार केवल उत्सव प्रदर्शन आर कलाबाजी दिखान क साधन ही बने रह।
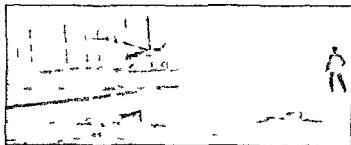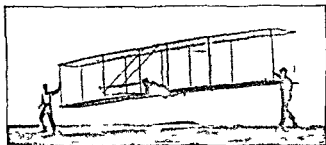
राइट बंधु अपने बनाए हुए हवाई जहाज की परीक्षण उड़ान के दौरान

वायु की दिशा के विरुद्ध गुब्बारे को चलाने के बहुत से तरीके इस्तेमाल किए गए। फलस्वरूप 'डिरिजिबल' गुब्बारा-यान का निमाण हुआ ओर उन्हे स्क्रू पखे से चलाया गया। पखा चलाने के लिए पेट्रोल इजन को भी डिरिजिबल मे इस्तेमाल किया गया, परतु केवल लागा के जीवन के बलिदान के एक लम्बे सिलसिले के अलावा ओर कुछ हासिल न हुआ।

उसके बाद एक अन्य अफसर लेफ्टिनट जनरल काउड फर्डिनाड जेपेलिन ने विशेष डिजाइन के वायुपोत बनाए जो जेपेलिन-यान कहलाए, लेकिन ये भी बेकार सिद्ध हुए।

सन् 1799 मे कैली नामक व्यक्ति ने सबसे पहले एक ऐसे सिद्धात का प्रतिपादन किया जिससे भारी वस्तु भी हवा मे उडाइ जा सकती थी। उसने 1804 म अपने सिद्धात पर आधारित एक ग्लाइडर तेयार किया। कैली के आरभिक काय के कारण ही इग्लड ओर फ्राम मे स्थिर पख वाले वायुयान पर विचार किया जाने लगा। उन दिनो वायुयान को ऊपर उठने की शक्ति प्रदान करने के विकल्प के रूप मे केवल भाप-इजन ही उपलब्ध था। पखधारी भाप-इजन बने भी जिन्हे 'विग्ड लोकोमोटिव' कहा गया, परतु वे भी उपयागी सिद्ध न हो सके।

1890 के आस-पास जर्मन इजीनियर आटा लिलियथाल ने ग्लाइडिग सबधी अनेक प्रयोग किए। वे अपने ग्लाइडर के सहारे हवा मे उडने मे काफी हद तक सफल हुए। पाच वष की अवधि के बीच उन्होने लगभग दो हजार उडाने भरी। एक उडान के दोरान उनका ग्लाइडर हवा के झोके से लडखडा कर गिर पडा और उनकी मृत्यु हो गयी।

उन्ही दिनो अमरीका के राइट बधु आर्विल राइट ओर विल्बर राइट अपना मशीनी यान बनाने मे लगे हुए थे। 1903 मे उनकी पहली उडन-मशीन तेयार हुइ। 17 दिसम्बर 1903 को उसे उडाने के लिए पटरियो पर फिट किया गया। आविल ने मशीन के नियत्रण को पेट के बल लेटकर सभाला। कुछ सेकडा की उडान के बाद विमान जमीन पर उतर आया। उन्होने कुछ अन्य सुधारो के साथ एक नया विमान बनाया। वे हर नए विमान मे कुछ न कुछ सशोधन, परिवर्द्धन करते। ओर अत मे मशीनी हवाइ जहाज के आविष्कारक के रूप मे राइट-बधु प्रतिष्ठित हो गए।
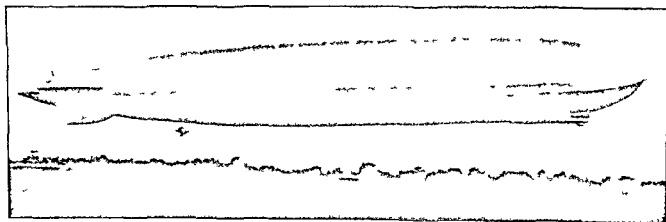
एक डिरिजिबल गब्बारा यान
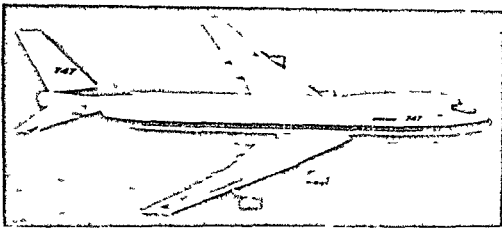
आधुनिक हवाई जहाज

इसक बाद ससार के अनेक देशा म विमान बनाने ओर उडान के कई प्रयोग किए गए। फ्रास के सातोस-डुमोट ने भी वायुपोत बनाना छोडकर विमान बनाने मे ध्यान देना शुरू किया। एक अन्य व्यक्ति ब्लेरियो ने विमान-उडान के लिए एक नया तरीका निकाला जो राइट बधुओ के तार तानने की सुविधा से ज्यादा बेहतर सिद्ध हुआ। ब्लेरियो के एक साथी इजीनियर ह्यूबट लादाम ने पहली असफलता के बावजूद दूसरी बार अपना विमान 3,300 फुट ऊचाई तक ले जाकर एक कीर्तिमान स्थापित किया। एक रूसी युवक इगोर सिकोर्स्की न पहली बार अपने विमान मे चार इजनो का इस्तेमाल किया, जिनकी क्षमता 100 अश्व-शक्ति थी। इस विमान मे सोलह यात्रियो के बेठने की जगह थी।

अन्य पश्चिमी देशो मे भी विमान का यातायात के विश्वसनीय साधन के रूप मे स्थापित करने की दिशा मे काफी काम किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दोरान अनेक देशो ने विमान-विकास पर खुलकर खच किया ओर कई किस्म के विमान बनाए गए। विमाना से बम गिराने का काम भी वड पैमाने पर लिया गया।

सन् 1914 से 1918 के मध्य हवाई जहाजों की रफ्तार 80-150 मील प्रति घटे तक प्राप्त कर ली गया थी। विमानो से यात्री ओर डाक-सेवा भी युद्ध के तुरत बाद स शुरू हो गयी।

हवा से भारी मशीनो के माध्यम से उडने का तरीका इस शताब्दी के पूर्वार्ध तक वेसा ही रहा। उडान से सबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए और वायुयाना के आकार मे कइ गुना वृद्धि भी हुई। इस प्रकार इजन की शक्ति, रफ्तार ओर यात्रिया की सुविधाआ म काफी वृद्धि हुई।

Bomber
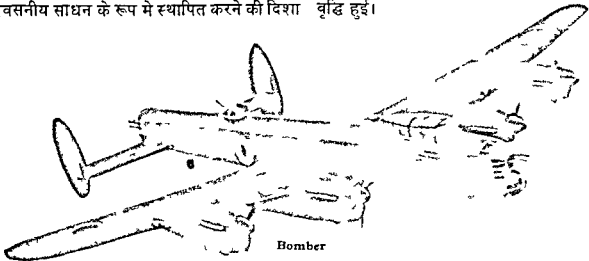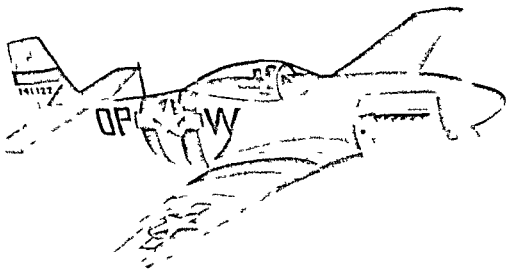
आज वायुयान आधुनिक सुविधाआ से परिपूर्ण हे और ध्वनि की गति से भी तेज गति से उडने मे सक्षम हैं।

भारत मे सन् 1911 से वायुयाना का आगमन हुआ। ससार म वायुयान-डाक सेवा सबसे पहले भारत मे ही आरभ हुइ। सन् 1929 म भारत से पहला यात्री-विमान लदन के लिए उडा। आजादी के बाद भारत सरकार की दो विमान सस्थाए 'एयर इंडिया' और 'इंडियन एयर लाइस' खुलीं। आज इन दोनो कम्पनियो के पास छह सौ स अधिक आधुनिक विमानो का बेडा है, जिसमे बोइग आर जम्बोजेट जैस विशालकाय विमान सम्मिलित हे।

आजादी के बाद बगलौर मे वायुयान बनाने का कारखाना खोला गया। 'हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट लिमिटेड' नाम के इस कारखाने म आज यात्री और युद्ध के विमान बनाए जाते हे। कानपुर के कारखाने मे वायुसेना के विमानो की मरम्मत आर निर्माण का काम भी होता हे। नासिक, हेदराबाद ओर कोरापुट मे मिग लडाकू विमान बनाने क कारखाने हे।
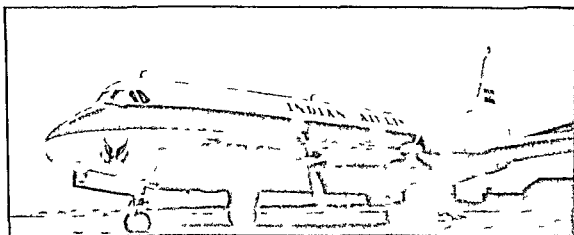
एक भारतीय वायुयान

हेलीकॉप्टर का आविष्कार

हेलीकॉप्टर अर्थात् सीधी उडान भरने वाले वायुयानो की कल्पना सबसे पहले सन् 1500 के लगभग लियोनार्दो दा विंची ने की थी। उन्होने हेलीकॉप्टर के सरल आरेख और कुडलाकार पेचो पर आधारित हेलीकॉप्टर के अनेक चित्र भी बनाए थे, लेकिन उस समय मोटरो का विकास नही हुआ था, जिसके बिना इनके आरेखित हेलीकॉप्टरो ने कोई प्रायोगिक रूप न लिया। सन् 1800 के लगभग सर जार्ज कैली नामक अग्रेज ने भी हेलीकॉप्टर पर कुछ परीक्षण किए और उनके द्वारा बनाया गया हेलीकॉप्टर का मॉडल 90 फुट की ऊचाई तक उडा। इटली के एक युवक ने भाप से चलने वाली मशीन को 40 फुट ऊपर तक उडाया।

सिकोर्स्की वी 5 300

बीसवी सदी के प्रारम्भ मे एक बर्लिनवासी आविष्कारक हरमान गैंसविट ने एक हेलीकॉप्टर बनाया, जो साइकिल के पैडल से चलाया जाता था, परतु यह हेलीकॉप्टर असफल रहा। 1907 मे एक फ्रासीसी आविष्कारक कोर्नू ने एक युवक को साथ बैठाकर एक मिनट तक अपना हेलीकॉप्टर उडाया।

पियासे का ट्रासपोर्ट हेलीकॉप्टर

इगोर सिकोर्स्की (रूसी-अमरीकी) ने लगभग 1909 मे कीव नगर मे अपना पहला हेलीकाप्टर विकसित किया। इसमे पेट्रोल इजन का इस्तेमाल किया गया था। इस हेलीकॉप्टर की उत्थापन शक्ति (लिफ्टिंग पावर) इसके वजन से कम थी। अत वे आरम्भ मे सफल न हो सके। तीस साल बाद जब सिकोर्स्की विमानो के एक सफल निर्माता और डिजाइनर के रूप मे ख्याति पा चुके तो उन्होने हेलीकाप्टर बनाने की ओर फिर से रुचि लेना शुरू कर दिया।

सिकोर्स्की के विचार मे एक ऐसे यत्र की कल्पना थी, जिसमे एक इजन से चलने वाले रोटर की व्यवस्था होनी थी। वह अपने यत्र मे ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे, जो उसे ऊपर उठाने के साथ-साथ आगे भी बढ़ा सके और आवश्यकता पडने पर हवा मे एक जगह काफी देर
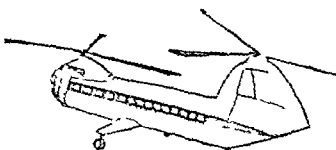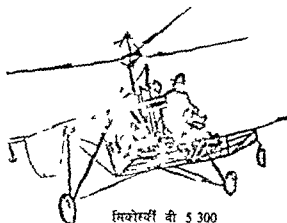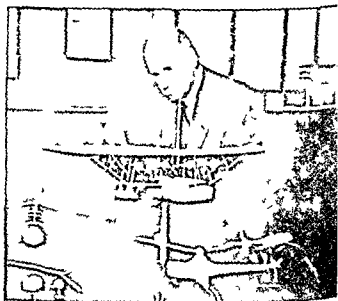
अपने हेलीकॉप्टर के मॉडल का निरीक्षण करते हुए इगोर सिकोर्स्की
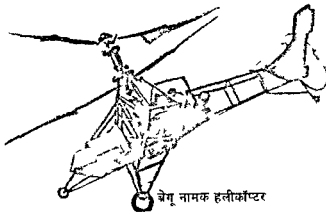
ब्रेगू नामक हलीकॉप्टर
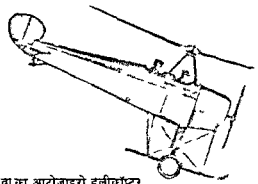
सीरवा का आटोजाइरो हलीकॉप्टर

तक स्थिर भी रख सके। उन्होने अपने यान के रोटर मे तीन पत्तियो की व्यवस्था रखने का विचार किया, जो हवा को ठीक अतराल पर काट सके ओर चालक द्वारा नियंत्रित भी की जा सके। इसके साथ ही एक सहायक रोटर की व्यवस्था कर हेलीकॉप्टर की पूछ के सिरे पर लम्ब रूप मे प्रोपेलर रखने का विचार किया, जो मुख्य रोटर से ताल-मेल रखते हुए पूरे यत्र के घुमावो को रोककर उसे एक सीधी चाल मे रखने का कार्य करे। सन् 1938 मे जर्मनी की फोक विमान कम्पनी मे एक जर्मन-दल ने ऐसा हेलीकॉप्टर बनाने मे सफलता प्राप्त की, जो हवा मे सीधा ऊपर उठकर उड सकता था। इसमे 150 हार्स पावर का इजन लगाया गया था। प्रदर्शन के दौरान यह विमान लगभग 11 हजार 500 फुट की ऊचाई तक जा पहुचा था। फोक कम्पनी का ही दूसरा हेलीकॉप्टर फोक-223 जो 1940 मे बनकर तेयार हुआ, लगभग 23 हजार 400 फुट की ऊचाई तक जा पहुचा था। इस हेलीकॉप्टर मे एक हजार हार्स पावर का इजन लगाया गया था, परतु द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इनकी चर्चा जर्मनी के बाहर न हो सकी।

सिकोर्स्की ने अमरीकी सेना के लिए एक ऐसे ही हेलीकॉप्टर का निमार्ण किया जिसका नाम एक्स आर-4 था। 1941 मे दिसम्बर के महीने मे इसकी परीक्षण उडाने हुई। सैकडो सैनिक अफसरो के सामने इस हेलीकॉप्टर ने उडाने भरने के साथ-साथ कुछ आश्चर्यजनक करतब भी दिखाए। परीक्षण पूरी तरह सफल रहा।

इस प्रकार सिकोर्स्की हेलीकॉप्टर के आविष्कारक के रूप मे प्रतिष्ठित हो गए। इसके बाद इसमे अनेक सुधार कर इसे और अधिक उपयोगी ओर विश्वसनीय बनाया गया और तब से हेलीकॉप्टर ने हर क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

युद्ध के समय घायलो को सुरक्षित स्थानो पर पहुचाना, सैनिको को विभिन्न मोर्चों पर उतारना, बाढ़-पीडितो की सहायता करना, समुद्री दुर्घटनाओ मे मदद पहुचाना, खेतो मे कीट-नाशक औषधिया छिडकना, भू-अन्वेषण मे सहायता करना, किसी भी दुर्घटना में फसे लोगो को बचाना आदि अनेक महत्त्वपर्ण कामो मे हेलीकॉप्टर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हेलीकॉप्टर तेज गति की सीधी उडान के लिए उपयुक्त साधन नही है। यह 150-200 मील प्रति घटे से अधिक की रफ्तार से नही चल सकता। इसके अलावा इसकी सबसे बडी खामी यह है कि यह आवाज बहुत तेज करता है और यात्रा के लिए महगा पडता है।
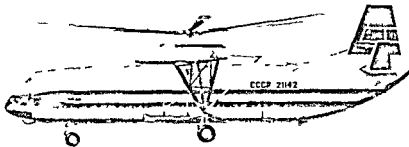
एक विकसित हेलीकॉप्टर

जेट-विमान का आविष्कार

जेट-प्रक्रिया मे भाप, हवा अथवा कोई अन्य गैस किसी नोजल से निकलने की प्रतिक्रियास्वरूप उन वस्तु को आगे की ओर धकेलती है। यह प्रक्रिया न्यूटन के गति सबधी तृतीय नियम पर आधारित है। यदि किसी हवा भरे गुब्बारे के मुह से हवा निकलती है, तो गुब्बारा वायु के निकलने की विपरीत दिशा मे दौडने लगता है। यही जेट-प्रक्रिया है। राकेट-प्रोपल्शन (प्रणोदन) का सिद्वात भी लगभग इसी के सामान है।

फ्रक बिटल नामक एक अग्रेज विमान चालक ने बिना प्रोपेलर के विमान चलाने का विचार रखा था। उसने प्रोपेलरो को चलाने के लिए पिस्टन इजना की जगह राकेट-इजन या गेस टरबाइन जसे किसी साधन का भी सुझाव रखा था। टरबाइन एक ऐसे सपीडक को भी चलाता है, जा वायुयान के अगले भाग से वायु को खीचता ह, साथ ही उसे दहन-कक्ष मे भेजने के पहले सपीडित भी करता हे। विटल ने अपने इस सिद्धात को 1930 मे पेटेट कराया, परतु 1934 में उसकी अवधि समाप्त हो गयी। कारण, किसी ने भी उनके आविष्कार मे रुचि लेकर पसा नही लगाया। दो वर्ष बाद उन्हे कुछ समर्थन मिला और कुछ पसा इकट्ठा कर उन्होने एक कपनी गठित की। तभी 1939 मे युद्ध के बादल मडराने लगे और उन्हे तुरत एक जेट-विमान का नमूना बनाने का निर्देश मिला। इसे सोलह व्यक्तियो के एक दल ने विटल के निर्देशन म वडे गोपनीय ढग से तयार किया। इसका नाम इ-28 रखा गया। परीक्षण उडान म यह
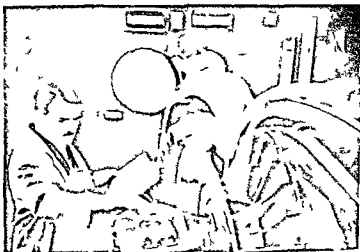
फ्रेक विटन अपने गैस टर्बाइन मॉडल क साथ

सफल हुआ। रॉयल एयरफोर्स के जिन अधिकारियो ने इसे पहली बार उडते देखा ता अपनी आखो पर विश्वास न कर सके। सबसे वडा आश्चय ता उन्हे यह देखकर हुआ कि इसमे कोई प्रोपेलर नही लगा था।

इसी प्रकार का जेट-विमान जर्मनी क एक युवा इजीनियर पाब्सट फॉन आहाइन ने बनाया। यह बहुत बडा विमान था। इसने छह मिनट की उडान मे लगभग 400 मील प्रति घटे की गति प्राप्त की, परतु जमनी क नाजी अधिकारियो और निर्माताआ के आपसी वाद-विवाद क कारण इसका विकास यही रुक गया।

विटल जेट-विमान का आविष्कारक मान लिया गया।

इसके बाद कई देशो ने जेट-विमान के निर्माण मे रुचि दिखायी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ससार के लगभग सभी विकसित देशा मे जेट-वायुयान का उपयोग सैनिक और नागरिक क्षेत्रो म होने लगा।

1947 म एक अमरीकी जेट-वायुयान 'बेल एक्स एस-1' ने ध्वनि की गति से भी तेज उडने का प्रदशन किया। ध्वनि की रफ्तार भूतल के समीप 760 मील प्रति घट के लगभग होती हे। अगर प्रोपेलर से चलने वाला कोई वायुयान इतनी रफ्तार प्राप्त करे ता वह
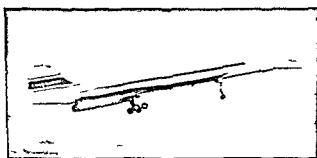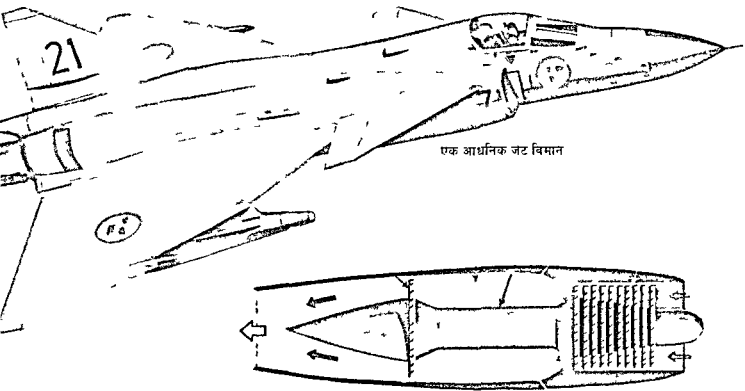
एक आधुनिक जट विमान

जेट विमान इजन का आतरिक भाग

नष्ट हो जाएगा। यही कारण है कि आजकल के तेज रफ्तार से चलने वाले विमान जेट-चालित ही होते हैं।

जेट-वायुयानो के इजनो मे सामने एक खुला हुआ मुह होता है, जिसमे बहुत ज्यादा दवाव के साथ वायु को अदर फका जाता है।दवाव के साथ-साथ अदर फेकी जाने वाली वायु एक विशेष प्रकार के चेम्बर (प्रकोष्ठ) म पहुचती है। इस चेम्बर मे इस वायु के साथ पैराफिन अथवा पेट्रोलियम तेल धीरे-धीरे मिलाया जाता हे। चेम्बर मे भारी दवाव के कारण वायु मिश्रित यह पेट्रोलियम तेल जल उठता हे ओर इससे उत्पन्न गैसो का विस्फोट भी होता है। विस्फोट के कारण उत्पन्न गैसे तेजी से वाहर निकलना चाहती हैं, परतु इनके बाहर निकलने का मार्ग बहुत छोटा रखा जाता है। मार्ग छोटा होने से गैसे बहुत अधिक दवाव के साथ वाहर निकलती हैं। गैसे जव पीछे की ओर तेजी से निकलती हैं, ता वायुयान आगे की ओर तेजी से धकेला जाता है। इस प्रकार के लगातार धक्के से वायुयान आगे बढ़ता रहता है।

जिस छोटे से मुह की नली से ये गैसे तेजी से निकलती हैं, उसे अग्रेजी मे 'जेट' कहा जाता है।

जेट-वायुयान मे चार जेट-इजन होते हैं। ये इजन काफी वडे हाते हैं। प्रत्येक इजन के जेट पर जहा से गेसे वाहर फेंकी जाती हैं, लगभग 5000 पोंड का दवाव उत्पन्न होता है। इसका यांत्रिक नियत्रण अन्य वायुयानो की तुलना मे अपेक्षाकृत सरल हाता है।

जेट-वायुयान को कम स कम 40 000 फुट की ऊचाई पर उडाया जाता है। जेट-विमान जितना अधिक ऊचाइ पर उडेगा, उतनी ही उसकी रफ्तार भी तेज हागी।

पैराशूट का आविष्कार

पैराशूट म उतरन की परिकल्पना का लियानार्दो द्वारा बनाया चित्र

लर्नारमैड न 1783 म टावर म कूदकर प्रदर्शन किया
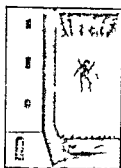
लियानार्दो दा विंची

पराशूट वायुसेना का एक महत्त्वपूर्ण साधन ह। इसकी मदद से वायुयान से कही भी सनिक उतार जा सकते हैं। पराशूट की कल्पना सभवत सबसे पहल विश्व विख्यात चित्रकार, वज्ञानिक लियोनार्दो दा विंची (1452-1519) न की थी, परतु पराशूट का आविष्कार करने का श्रेय सेबस्टियन लेनॉरमड (फ्रास) नामक एक व्यक्ति को जाता ह।

लियानार्दो दा विंची को पराशूट साधन का प्रणता अवश्य माना जाता ह, क्याकि पराशूट क सिद्धात का प्रतिपादन सबसे पहल उन्होने ही किया था। इस पर परीक्षण सबधी कोइ कार्य उन्होने किया या नही, इसका कही कोइ उल्लख नही मिलता। लर्नॉरमेंड (फ्रास) न 1783 म अपन बनाए हुए पराशूट का प्रदर्शन एक टॉवर से कूद कर किया था।

लकिन फ्रास क हवाबाज ज पी ब्लंकॉड न सन् 1785 म सबसे पहल पराशूट का सफल प्रदशन किया था। उसने पराशूट की रस्सिया मे एक टोकरी बाध कर उसम एक कुत्त को बठाकर गुब्बारे की सहायता स काफी ऊचाई मे गिराया था। 1793 म ब्लकॉड स्वय एक गब्बारे स काफी ऊचाइ पर जाकर पराशूट की मदद से नीचे उतरा था, जिसम उसका एक पर टूट गया था। 1837 मे एक व्यक्ति रॉबट कांकिग न पराशूट म कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार किए।

1912 म कप्टन नाम के एक साहसी व्यक्ति न पहली बार उडते हुए हवाइ जहाज से छलाग लगायी ओर पैराशूट की मदद से जमीन पर सकुशल उतरा।

उसक पैराशूट स उतरने के कई सफल परीक्षण फ्रास आर पोलेंड के हवाबाजो न किए। प्रथम विश्वयुद्ध क अतिम चरण म अनक हवाइ जहाजा क पायलट पेराशट से कूद और कई जगह इस विधि स सनिक भी उतारे गए।

पेराशूट से कूदन क लिए किसी विशेष स्थान की जरूरत नही पडती। दूसर दुघटनाग्रस्त होते हवाई जहाज से पैराशूट द्वारा कूद कर प्राण-रक्षा भी की जा सकती हे।

हवाइ जहाज क साथ-साथ पराशूट का उपयाग भी तेजी से बढता गया। युद्ध मे पराशूट का बहुत अधिक महत्त्व ह। आजकल हर देश की वायुसेना म पराशूट स

आर्धनिक पैगशट
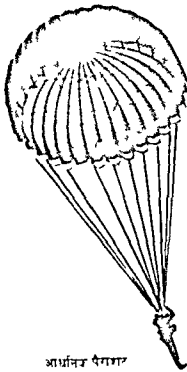
उतरन वाल मनिका की टुकडी रहती ह। यद्ध क दौगन शत्रु मेना का घग्न क लिए मानका का पैगशट म उतार दिया जाता है। बाढ़ग्रस्त अकालग्रस्त या बर्फ म घिर लागा का रमद दवाइया कपड तथा अन्य जरूरत का मामान भी पराशूटा मे बाधकर पहुचाया जा मकता ह।

पगशट मामान्य तार पर छतरीनमा आकार म फलकर लगभग 24 फुट हा जाता ह। इस फलाव मे हवा इसम म मरलता म बाहर निकल नही पाती आर पगशूट हिंडोल की तरह झूलता हुआ मनुष्य या बाझे का लकर आमानी मे जमीन पर उतर आता ह।

कभी-कभी जट-विमान धरती पर उतरन आर अपनी रफ्तार कम करने क लिए पराशट का इस्तेमाल करत हैं।

मामम की जानकारी प्राप्त करन क लिए जिन उपकरणा का गुब्बारा द्वारा ऊचाइ पर भजा जाता ह उन्ह परीक्षण क बाद पगशट की मदद म जमीन पर उतार लिया जाता ह।

पैगशूट का एक विशष ढग म लपटकर बडल-मा बनाया जाता ह जिम बल्ट की महायता म पीठ पर बाध लत हैं। जब छाताधारी वाययान म कूदता ह तो कुछ नीच आन क बाद डारी का झटका दकर पगशूट खाल दता ह। पगशट खलत ही छतरी की तरह फल जाता ह। वायुयान म कदन म पहल या तरत बाद पगशट खालने मे उमक हवाइ जहाज क पखा आदि म अटक जाने का डर रहता ह। अत उडत हवाइ-जहाज म कुछ निचाइ पर आन क बाद ही पगशट खाला जाता ह। कुछ विशेष किस्म क पैराशूट कुछ देर बाद अपन आप ही खुल जाते हैं। पगशूट क ऊपरी भाग म एक छाटा-मा छेद बना हाता हे। इमम म छतरी म भरी हवा धीर-धीर निकलती रहती है। इम छद की व्यवस्था मे पराशूट के तज हवा या किसी आर वजह मे उलटने का डर नही हाता।

पैराशूट का कपडा रेशम या नायलोन के महीन मजबूत धागो से बुना जाता है।

राकेट और उपग्रह का आविष्कार

राकेट अग्नि-वाण के रूप मे हजारो वर्षो से प्रचलित रहा है। भारत म प्राचीन काल स ही अग्नि-वाण का युद्ध-अस्त्र के रूप म इस्तमाल होता रहा है। रामायण और महाभारत काल मे अनेक प्रकार के अग्नि-वाणो का उल्लेख प्राचीन ग्रथो मे मिलता है। दीवाली आदि त्योहारो म आतिशबाजी के रूप म अग्नि-वाण सैकडो वर्षो स मनोरजन का साधन रहा है।

रूसी वैज्ञानिक सियोल्कोवस्की ने सन् 1903 म सभवत सबसे पहले यह सुझाव दिया था कि पृथ्वी के वातावरण से बाहर जाने वाले यान के रूप म राकेट की व्यवस्था ही सर्वोत्तम हो सकती है। इसका मुख्य कारण यह था कि राकेट उन सभी ईंधन-रसायनो को अपने अदर ही ढोता चलता है जो उसे अतरिक्ष (Space) म आगे बढ़ाते हैं। उसे वायु से आक्सीजन प्राप्त करने की आवश्यकता नही रहती।

डॉ वॉन ब्रान जिन्होने चद्रमा तक रॉकेट भेजने म सफलता प्राप्त की

1923 म जर्मनी क एक वैज्ञानिक हरमान आबर्थ न अपनी पुस्तक 'राकेट और अतर्ग्रहीय अतरिक्ष मे राकेट' क बारे म बहुत कुछ जानकारी दी। एक अन्य वैज्ञानिक फ्रिट्ज फान आपल न बर्लिन म एक राकेट-चालित कार का परीक्षण किया था। एक और वैज्ञानिक मैक्स वलियर न 1929 म राकेट-चालित कार का प्रदर्शन बवेरिया की एक जमी हुई झील पर किया था, जो 235 मील प्रति घटे की गति स चली, परतु राकेट-ट्यूब क फट जाने स वलियर की मृत्यु हो गयी।
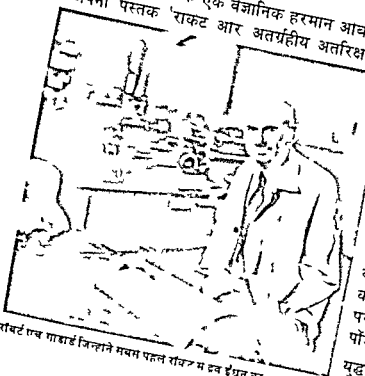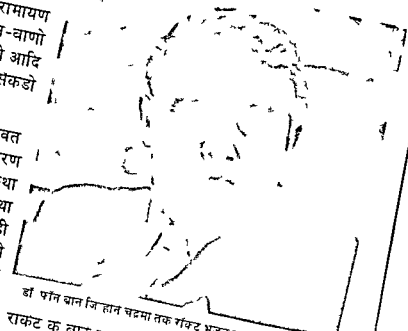
रॉबर्ट एच गाडार्ड जिन्होने सबस पहले रॉकेट म द्रव ईंधन का उपयोग किया

जर्मनी के वैज्ञानिको न वी-1 और वी-2 नाम क राकेटो को विकसित किया जो उडन-बमो क रूप म द्वितीय विश्व युद्ध म ब्रिटेन क खिलाफ इस्तेमाल किए गए। वी-2 राकेट आधुनिक राकेटो का पहला नमूना था। वी-2 न 15 मील की ऊचाइ पर 3 700 मील प्रति घटे की रफ्तार प्राप्त की। बाद म यह 60 मील की ऊचाइ पर 650 मील दूर गया। इसके राकेट इजनो न 55000 पोंड का प्रणाद (Thrust) उत्पन्न किया था।

युद्ध के समय स ही अमरीका रूस और ब्रिटेन म राकेट के विकास की गति तेज होती गयी। अनेक प्रकार के नियंत्रित शस्त्र और अतरिक्ष राकेटो का विकास हुआ।
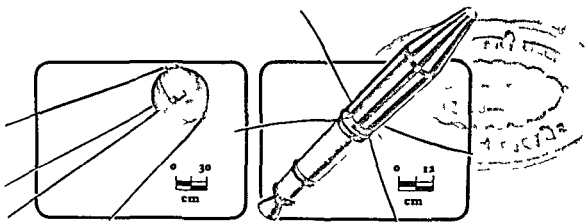
दा आरंभिक उपग्रह

प्रोपेलर वाले विमानो को सघन वायु की आवश्यकता पडती हे, ताकि प्रोपेलरो को दाब उत्पन्न करने के लिए सघन वायु मिल सके ओर विमान सुगमता से आगे बढ सके। जेट-यान को आगे बढने के लिए वायु की आवश्यकता नही पडती, लेकिन यह वायु पीने वाली मशीन से चालित होता है। अत अतरिक्ष के लिए ये दोनो यान अनुपयुक्त ह, क्योकि इनमे किसी न किसी रूप मे वायु की आवश्यकता पडती ह। राकेट को आगे बढने के लिए वायु की जरूरत नही पडती।

राकेट चाहे युद्ध के लिए बनाया जाए या अतरिक्ष मे जाने के लिए अथवा चाद पर जाने के लिए, इनके इजन केवल दो प्रकार के होते हैं। एक ठोस ईधन से चलने वाले, दूसरे तरल ईंधन से चलने वाले। ठोस ईधन से चलने वाले राकेट कम दूरी के लिए उपयुक्त होते हैं। सबसे पहले राकेट मे इस्तेमाल किया गया ईधन बारूद था। आधनिक राकेटो मे एल्कोहल, मीथेन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और फ्लोरीन आदि का इस्तेमाल तरल ईंधन के रूप मे हाता हे। राकेट का एग्जास्ट दो बातो पर निर्भर होता है—1 गैसे किस रफ्तार से बाहर ठेली जाती हैं और 2 इसके चलने की रफ्तार। अत महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह हे कि किस प्रकार का ईधन प्रयोग मे लाया जाए और उसके निकास की व्यवस्था कैसी हो ताकि राकेट ईधन गेसे अधिक से अधिक रफ्तार से बाहर आ सके, जिससे राकेट को अधिकतम गति प्राप्त हो सके।

हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के ईंधन-मिश्रण का निकास वेग लगभग 13,000 फुट प्रति सेकण्ड से भी अधिक होता है। बोरोन और हाइड्रोजन के यौगिक

कछ अ य विकसित उपग्रह
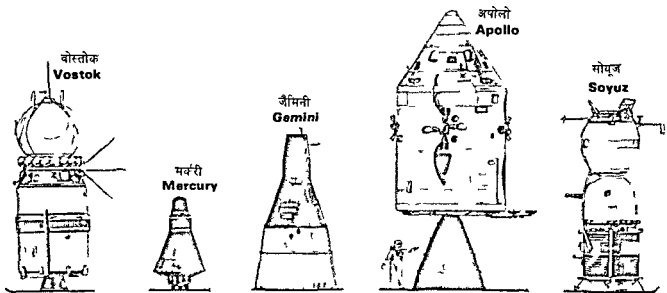
पेटाबोरेन का आक्सीजन के साथ निकास वेग लगभग 10,000 फुट प्रति सेकण्ड होता है। इन यौगिकों के जलने से जो भयकर ताप उत्पन्न होता है, उससे राकेट को सुरक्षित रखने के लिए विशेष धातु का उपयोग किया जाता है।

अब वह दिन दूर नही जब राकेट-विमानो से यात्रा सभव हो सकेगी। राकेट-विमानो से 9,000 से 12 000 मील प्रति घटे की रफ्तार प्राप्त की जा सकती है। अमेरिका मे निर्मित एक राकेट-विमान एक्स-15 से एक परीक्षण उडान म 3 140 मील प्रति घटे की रफ्तार प्राप्त की गयी थी। यह परीक्षण 1961 मे किया गया था। इसके इजन का प्रणोद (Thrust) 57000 पोंड था।

अमरीका ने हाल ही मे स्पेस-शटल चैलेजर ओर कोलम्बिया नामक अतरिक्ष विमानो का उपयोग प्रारम्भ किया है। ये राकेट-विमान सचार उपग्रहो को अतरिक्ष म स्थापित होने के लिए छोडकर पुन वायुयान की भांति पृथ्वी पर लौट आते हैं। दो भारतीय सचार उपग्रह अमरीका के चैलेजर नामक अतरिक्ष-विमान से ही छोडा गया था।

अतरिक्ष मे प्रथम उपग्रह को ले जाने वाला रथम रूसी राकेट सन् 1957 मे छोडा गया था। स्पुतनिक नाम का यह उपग्रह विश्व का पहला कृत्रिम उपग्रह था।

रूस के राकेट-उडान अभियान के पथप्रदर्शक सर्जी करालोव (1930)। कोरोलेव का उस राकेट ओर उपग्रह के विकास मे पूरा हाथ था, जिसके द्वारा रूस का प्रथम उपग्रह छोडा गया था। जिस राकेट मे विश्व का प्रथम अतरिक्ष यात्री यूरी गगारिन भेजा गया था, वह भी कोरालेव की देखरेख मे तेयार हुआ था।

जर्मनी का एक राकेट इजीनियर वर्नहर फॉन ब्रॉन द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद अमेरिका जाकर रहने लगा। वहा उसने अतरिक्ष अभियान दल का नेतृत्व किया ओर अमरीका का पहला उपग्रह एक्सप्लोरर-1 को अतरिक्ष-कक्षा मे पहुचाने मे सफलता प्राप्त की। वर्नहर फॉन ब्रॉन के नेतृत्व मे ही सेटर्न नामक उस राकेट का निर्माण भी हुआ जो सबसे पहले मानव को चद्रमा तक ले गया।
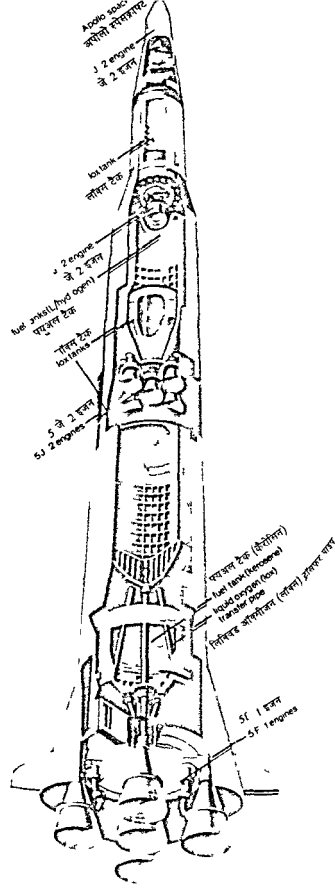
रॉकट के आतरिक भाग

कृत्रिम उपग्रह के अतरिक्ष अभियान की शुरुआत तो लगभग उसी दिन से हो गयी थी, जब सत्रहवी शताब्दी मे जमनी के अतरिक्ष विज्ञानी जोहान्न कैपलर (1571-1630) न सूय की परिक्रमा करन वाले उमक ग्रहो की चाल, परिक्रमा पथ आर सूय म दूरी से सर्बांधत तीन नियमो का प्रतिपादन किया। उसक बाद ब्रिटेन के सर आइजेक न्यूटन न भी गुरुत्वाकर्षण सबधी नियमो का प्रतिपादन किया जो आज अतरिक्ष-अभियान मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रह हैं।

अतरिक्ष का अन्वपण अभियान उस दिन शुरू हुआ जब 4 अक्टूबर 1957 मे रूस न अपने रूसी राकेट द्वारा एक छोटा-सा कृत्रिम उपग्रह स्पुतनिक-1 अतरिक्ष मे 560 मील ऊपर पहुचाया। इस उपग्रह ने 17000 मील प्रति घटे की गति से पृथ्वी के चक्कर लगाए। उसके बाद से अनेक रूसी उपग्रह अतरिक्ष म भेजे गए। 12 अप्रेल 1961 को रूस न अपने साढ़े चार टन वजन के अतरिक्ष यान द्वारा पहला मानव अतरिक्ष मे भेजने मे सफलता पायी। यूरी गगारिन विश्व क प्रथम अतरिक्ष-यात्री थे। जमनी के फॉन ब्रॉन ने *अमरीकी अतरिक्ष अभियान* दल का नेतृत्व कि[illegible]ा और उनके नेतृत्व म अमरीका का प्रथम कृत्रिम [illegible]पग्रह एक्सप्लोरर 1 फरवरी 1958 मे अतरिक्ष मे [illegible] आ गया।

स्पेस शटल अतरिक्ष की ओर

उसके बाद म रूस आर अमरिका ने अनेक बार अतरिक्ष म अपन उपग्रह भेज। अनेक रूसी चद्रयान चद्रमा के धरातल पर उतरकर विभिन्न प्रकार के अन्वेषण कर सफलतापूवक पृथ्वी पर वापस आ चुके ह।

अतरिक्ष यानो से मगल, शुक्र और शनि आदि ग्रहो का बहुत निकट से सर्वेक्षण किया जा चुका हे।

चद्रमा पर कदम रखने वाला पहला मानव अमेरिका का नील आमस्ट्राग था। वह 21 जुलाइ 1969 को चाद पर उतरा। उनके साथ दूसरा अतरिक्ष यात्री था एडविन एल्ड्रिन।

अतरिक्ष-यात्रा के अलावा उपग्रह सचार के माध्यम के रूप मे बड महत्त्वपूर्ण सावित हुए हैं। सचार उपग्रहो क जरिये रेडियो-प्रसारण, टेलीफोन-वार्ता, टेलीप्रिंटर तथा टेलीफोटो सवा ओर टेलीविजन प्रसारण की व्यवस्था बखूबी की जा सकती है। सचार उपग्रह 'अतरिक्ष टलीफोन एक्सचेज' की तरह कार्य करता हे।

इसी तरह के एक अमरीकी सचार उपग्रह 'टेलस्टार' ने सन् 1962 म अमरीका ओर यूरोप के मध्य टेलीविजन कार्यक्रमो को रिल करन का कार्य आरम्भ किया। इसके बाद तो अन्य विकसित देशो ने भी अपने-अपने सचार उपग्रहा की अतरिक्ष मे स्थापना की और आकाश मे सचार उपग्रहो का जाल-सा बिछ गया।

उपग्रह ओर भू-केद्र का सबध सूक्ष्म तरगो के जरिये स्थापित होता है। ये तरगे विद्युत-चुम्बकीय तरगो की तरह ही होती हैं। रेडियो तथा टेलीविजन कार्यक्रमो के प्रसारण मे भी इन्ही तरगो का इस्तेमाल किया जाता हे। ये तरगे अति उच्च और अल्ट्रा हाई फ्रिक्वेसी की होती
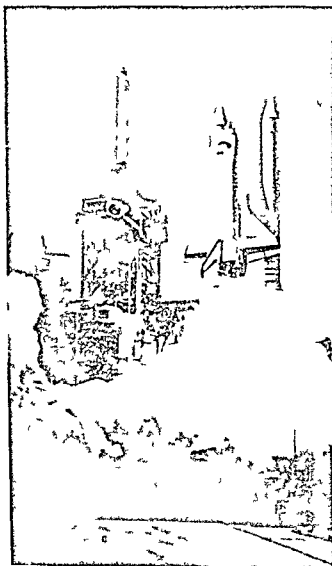
हैं। माइक्रोवेव अथवा सूक्ष्म-तरंगे प्रकाश की रफ्तार से ही गति करती हैं। रेडियो तरंग पट्टी जिसे रेडियो स्पेक्ट्रम कहते हैं, मे विभिन्न रेडियो-तरगों को भिन्न-भिन्न कामो के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अलग-अलग कार्यो के लिए प्रसारण-तरगो की भिन्नता के कारण ही अनेक तरह के प्रसारण एक साथ किए जा सकते हैं और न एक दूसरे से टकराते नहीं हैं। रेडियो प्रसारण साधारण तौर पर प्रति सेकण्ड दस लाख हर्ट्ज से पद्रह मेगा हर्ट्ज वाली तरगो तक किया जाता है और इससे अधिक 100 मैगा हर्ट्ज तक टेलीविजन प्रसारण की व्यवस्था होती है। इनका प्रसार क्षेत्र तरगो को दी गयी शक्ति पर निर्भर होता है।

अब आइए देखे कि उपग्रह से सम्पर्क किस प्रकार किया जाता है। किसी भी तरह की सूचना को सबसे पहले उपकरणो की सहायता से विद्युत-चुम्बकीय सक्रता मे परिवर्तित किया जाता है। उपग्रह मे लगा अति सवेदनशील रेजोल्यूशन रेडियो मीटर मौसमी हलचलो की सूचना और बादलो आदि के चित्रों की जानकारी देता है। रेडियो मीटर तक धरती के केद्र से जिस प्रकार की तथा जितनी शक्ति की ऊष्मा-तरंगे आती हैं, उन्हे यह विद्युत-चुम्बकीय तरगो मे परिवर्तन करता रहता है। इन्हे पुन शक्तिशाली बनाकर धरती पर स्थित भू-केन्द्र की ओर भेज दिया जाता है, जहा इन्हे यत्रो की सहायता से फिर से चित्रो और अन्य सूचनाओं के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। यह प्रक्रिया माडुलशन कहलाती है।

हमारे देश मे भी सचार उपग्रहो के माध्यम से सचार व्यवस्था को एक नया आयाम दिया गया है। 'इन्सेट-1 बी' हमारे देश की सचार व्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

अंतरिक्ष मे परिक्रमा लगाता उपग्रह

अस्त्र-शस्त्र
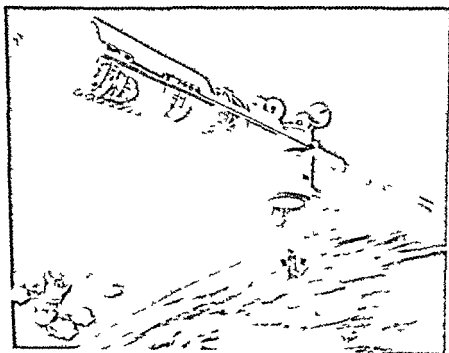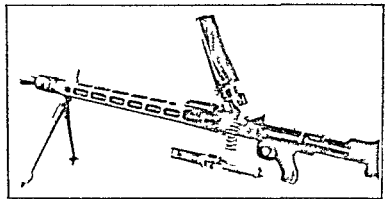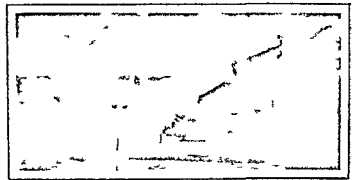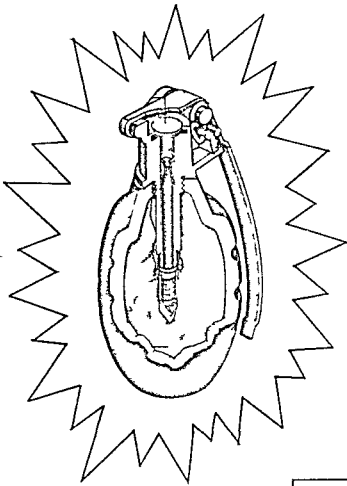
बारूद और बम का आविष्कार

बम अनेक प्रकार के होते हैं, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रा, परिस्थितियो और शक्ति के अनुसार अनेक वर्गो मे वाटे जा सकते हैं। बमो का निर्माण सैकडो वर्षो से होता आ रहा है। अत किस प्रकार के बम का आविष्कार कब हुआ यह कहना कठिन है। बम का अर्थ हे विस्फाटक पदार्थों ओर विस्फोटक प्रेरका क मिश्रण से बनी वस्तु। शायद बम-निर्माण की शुरुआत तो उसी समय से हो गयी थी, जब मनुष्य ने सबसे पहले विस्फोटक पदार्थ अथवा बारूद की खोज की।

सभवत बारूद की खोज आज से हजारो वर्ष पूर्व चीन मे हुई थी। प्राचीन काल मे चीनी लोग बारूद स तरह-तरह की आतिशबाजी बनाते थे। तरहवी शताब्दी के मध्य काल तक यूरोप के देश बारूद स
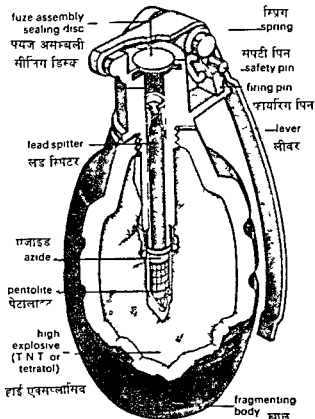
हैंड ग्रेनड का आतंरिक भाग
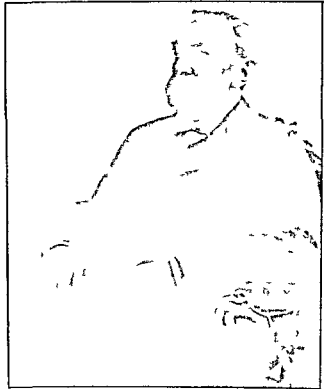
डाइनामाइट क आविष्कारक अल्फ्रड नाबल

परिचित नही थे। एक अग्रज रोजर बेकन ने सन् 1245 म सबसे पहले अपनी पुस्तक 'दि सीक्रेट वर्क्स ऑफ आर्ट एड नेचर' मे बारूद का उल्लेख किया था। अत प्रमाणो के अनुसार रोजर बेकन को ही बारूद का आविष्कारक माना जाता है।

सामान्य बारूद 75 प्रतिशत पोटेशियम नाइट्रेट 15 प्रतिशत चारकोल और 10 प्रतिशत सल्फर के मिश्रण से तेयार होता है ओर अपनी मात्रा से लगभग 3000 गुना धुआ ओर गेस छोडता है।

बदूक, पिस्तोल, तोप, राइफल, माइस, मिसाइल, राकेट, बम आदि सभी युद्ध-उपकरण बारूद के आविष्कार के वाद ही बन पाए। यदि बारूद का आविष्कार न हुआ होता तो उपर्युक्त युद्ध-शस्त्रा का भी निर्माण न हुआ होता।
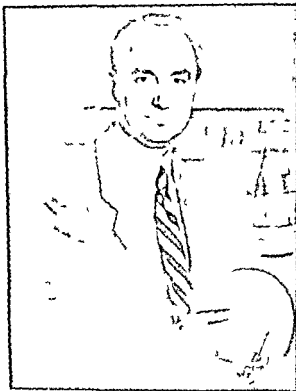
एटम बम के निर्माता वैज्ञानिकों में प्रमुख एनरिको फर्मी

बारूद के बाद गन-काटन (बारूदी रुई) का आविष्कार एक जर्मन कैमिस्ट क्रिश्चियन शॉनबीन ने 1845 मे किया। 1846 म तूरीन इस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी म कैमिस्टी के प्रोफेसर एस्केनियो सोब्रेरो ने एक बहुत शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ नाइटो-ग्लिसरीन की खोज की। नाइट्रो-ग्लिसरीन जलने पर अपनी मात्रा से 12000 गुना गैस छोडता ह। नाइट्रो-ग्लिसरीन साद्र सल्फ्यूरिक एसिड ओर साद्र (Concentrated) नाइट्रिक एसिड पर धीरे-धीरे ग्लिसरीन की बूद टपकाने मे बनता है। यह विस्फोटक इतना ज्यादा खतरनाक था कि लान-ले जान या उपयोग करने म थोडी-सी असावधानी या घटक म ही फट जाता था।

सन् 1886 म स्वीडन क एक कैमिस्ट अल्फ्रेड नोबेल ने सिद्ध करके दिखाया कि यदि नाइटो-ग्लिसरीन को किसलगुर (Kieselguhr) नामक एक प्रकार की चिकनी मिट्टी म मिलाकर रखा जाए तो इस विस्फोटक पदार्थ का सुरक्षित रूप म इस्तेमाल किया जा सकता है। नोबेल ने उसके बाद डाइनामाइट का आविष्कार किया। इसका उपयोग शांतिपूर्ण कार्यो जैसे-पहाड, चट्टान, कोयला तोडने आदि मे किया जाता था, परन्तु इसे जान-माल की हानि के लिए भी प्रयुक्त किया गया। आजकल डाइनामाइट मे अमोनियम नाइट्रेट और काष्ठ-लुगदी के साथ सोडियम नाइट्रेट भी मिलाया जाता है। इन्ही नोबेल के नाम से नोबेल पुरस्कार है।

इसके बाद अन्य कई प्रकार के विस्फोटको का अन्वेषण हुआ। अधिकाश विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र गुप्त रूप से बनाए जाते थे। अत कई शस्त्र उपकरणो के आविष्कारको का ठीक-ठीक पता नही चल सका।

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध मे बहुत से अस्त्र-शस्त्र गुप्त रूप से बनाए गए, जिनका पता बाद मे ही चल पाया। अश्रु गैस बम, हैड ग्रेनेड तथा साधारण बम, नेपाम बम आदि अनेक खतरनाक बमो का निर्माण इन्ही युद्धो के दौरान हुआ।

इसके बाद यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि तत्त्वो की खोज हुई। परमाणु-विखण्डन की प्रक्रिया की खोज ने सन् 1945 मे परमाणु बम के निर्माण को जन्म दिया। इसके पश्चात नाभिकीय संगलन की खोज के आधार पर हाइड्रोजन बम का निर्माण शुरू हुआ। अब तो वैज्ञानिकों ने न्यूट्रान बम का भी आविष्कार कर लिया है। ये तीनो बम महाविनाशकारी सिद्ध हुए है।

विध्वंसक बम
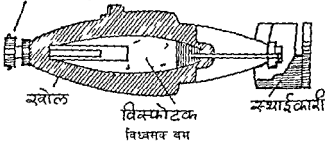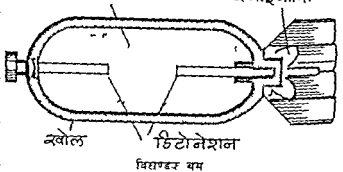
विखण्डन बम
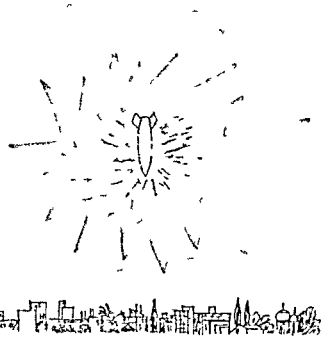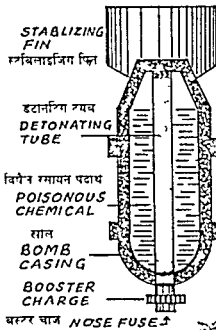
रासायनिक बम

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कुछ जर्मन और फ्रांसीसी भौतिकशास्त्री इंग्लैंड पहुंच गए और उन्होंने नाभिकीय विखंडन का उपयोग किसी बम में किए जाने के विषय में परीक्षण करने शुरू किए। गणना द्वारा उन्होंने पता लगाया कि अगर आधा किलो यूरेनियम-235 में मौजूद सभी परमाणुओं को किसी युक्ति द्वारा विखंडित किया जा सके तो लगभग 2 करोड़ पौंड टी एन टी (Trinitrotoluene) की तुल्य क्षमता वाला भीषण धमाका हो सकता है। बस, इंग्लैंड सरकार ने जार्ज टामसन के नेतृत्व में परमाणु बम बनाने के लिए एक दल गठित कर दिया। परंतु यूरेनियम-235 और यूरेनियम-238 एक ही तत्त्व के दो आइसोटोपों (समस्थानिक) को अलग करने की जटिल प्रक्रिया ने समस्या पैदा कर दी।

परंतु अमरीका के वैज्ञानिक एनरिको फेर्मी ने इस समस्या को सुलझा लिया और 16 जुलाई 1945 को अमरीका ने अपने पहले परमाणु बम का विस्फोट करके परीक्षण किया। उसके बाद 6 अगस्त 1945 को अमरीकी बम वर्षक विमानों ने जापान के हिरोशिमा नगर पर यूरेनियम-235 से बना और तीन दिन बाद दूसरे नगर नागासाकी पर प्लूटोनियम से बना परमाणु बम गिराया। इन बमों से सदियों से बसे ये दोनों नगर और उनके निवासी क्षणभर में नष्ट हो गए। इन बमों के विस्फोट के बाद ही संसार को पहली बार यह पता चला कि गुप्त रूप से इस क्षेत्र में कितनी जबर्दस्त तैयारी हो रही थी।

उसके बाद अमरीका के वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन बम का निर्माण किया और सन् 1952 में उसका परीक्षण किया।

आजकल युद्ध में कई प्रकार के बमों का इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के लिए 1 विध्वंसक बम, 2 विखण्डक बम, 3 अग्नि बम, 4 रासायनिक बम, 5 जीवाणु बम, 6 विकिरण बम, 7 नाभिकीय चार्जयुक्त बम, 8 न्यूट्रॉन बम आदि।

विध्वंसक बमों का इस्तेमाल इमारतों, पुलों, कारखानों आदि को नष्ट करने के लिए किया जाता है। इन बमों का वजन 50 किलो से 10 हजार किलोग्राम तक हो सकता है। इसका ऊपरी खोल पतला होता है। इसमें साधारण किस्म का विस्फोटक भरा होता है, जिसका वजन कुल भार का लगभग आधा होता है।

विखण्डक बम (फ्रेग्मेंटेशन बम) का खोल विध्वंसक बम से कुछ अधिक मोटा होता है। यह बम जब वायुयान से गिराया जाता है, तो यह जमीन से कुछ पहले

ही धमाके के साथ फट जाता है और इसके छितरे हुए टुकडो से लोग घायल हो जाते हैं या मर जाते हैं। इसका कुल वजन 2 किलो से 50 किलोग्राम तक होता है। अक्सर इन्हे बडे क्षेत्रो मे गिराया जाता है।

अग्नि बमा (इसेन्डियरी बम) को घनी आबादी वाले स्थानो कारखाना बडी इमारता आदि पर गिराया जाता है। इससे आग तुरत ही चारा आर फल जाती है। इन बमा का खोल भी पतला हाता है। आग भडकाने क लिए इसम थमाइट इलक्ट्रॉन फास्फारस आर नेपाम जेसे अग्निज्वालक रासायनिक पदार्थ इस्तेमाल म लाए जात है। आग लगाने वाला पदार्थ एक खास तरह के प्रज्वालक पलीते के साथ भरा होता ह।

रासायनिक बम एक प्रकार का बडा बलून जैसा होता है। इसकी दीवार पतली होती हैं। इसके खोल मे विषले पदार्थ भर हाते हैं। इसक अलावा इसमे पलीते के साथ थाडा विस्फाटक पदार्थ भी रखा हाता है। यह जमीन पर और जमीन से ऊपर भी फटता ह। इसके फटने के साथ विषली गस और पदार्थ जमीन आर आस-पास की वायु मे मिलकर वातावरण को जहरीला बना देते हैं जिसम लाग मर जात है।

जीवाणु बम क अदर अनक कक्ष हाते हैं। हर कक्ष म भिन्न-भिन्न प्रकार क रोग फलाने वाल विषाणु और जीवाणु भरे होत हैं। इस प्रकार के बमा का वजन 75 किलो के लगभग हाता है। इसम एक फ्यूज का प्रबध होता ह। बम गिराने पर जमीन से कुछ ऊपर ही फ्यूज जल उठता है आर बम का विस्फोट हो जाता है। विस्फाट के साथ ही आसपास के वातावरण म विषाणु फैल कर उस क्षत्र के लोगो को रागग्रस्त कर देत हैं।
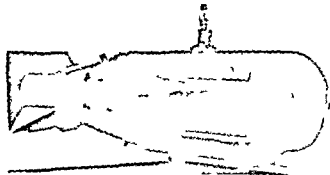
हिरोशिमा पर गिराया गया परमाणु बम

जीवाणु बम
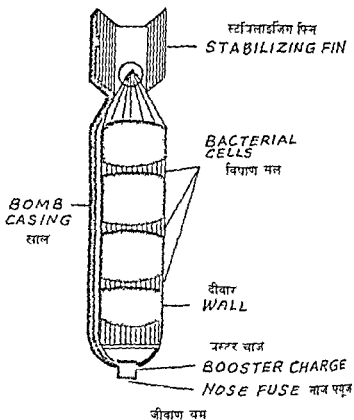
विकिरण बम लगभग रासायनिक बम की तरह ही होता ह। इसका खोल पतला होता ह। इस बम मे रेडियोधर्मी पदार्थ तरल या ठोस रूप म भरे होत हैं। इसमे विस्फोटक पदार्थ थोडी मात्रा में भरा होता है, जो बम क गिराने पर धमाक के साथ रेडियोधर्मी सदूषका को वायु म मिला दता है। इस प्रकार उस क्षेत्र के लोग रेडियोधर्मी विकिरणजन्य रोगो स पीडित हा जाते हैं।

नाभिकीय बम सबस अधिक सहारक होते हैं। परमाणु ओर हाइड्रोजन बम इसी श्रेणी म आते हैं। इन बमा म नाभिकीय चार्ज भरा हाता है। परमाणु बम के प्रमुख भाग निम्न ह —

1 नाभिकीय (Nuclear) चार्ज, 2 नाभिकीय इधन जो एक पूर्व निश्चित क्षण पर विखंडित होता है 3 एक ऐसी युक्ति जो वस्तुआ का विस्फाटी न्यूक्लीय रूपातरण करती है, 4 विशेष धातु अथवा नाभिकीय इधन का बना हुआ एक मोटा खाल। आधुनिक परमाणु बमो म यूरेनियम आइसोटोप्स (Isotope) यूरेनियम-233 ओर प्लूटोनियम-239 नाभिकीय चार्ज की भांति प्रयाग किया जाता है। यूरेनियम-235 का उपयोग भी

न्यूट्रॉन बम
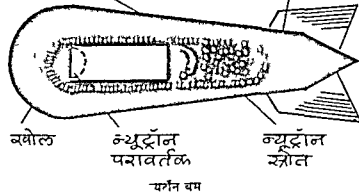
होता ह परतु यह बहुत महगा पडता हे। अगर एक किलाग्राम यूरेनियम के सभी नाभिका का विस्फाटी रूपातरण हाता हे तो इससे लगभग 20 000 टन टी एन टी के विस्फाटन क बराबर ऊजा (Energy) उत्पन्न होती है। टी एन टी का पूरा नाम हे-टाइनाइट्रोटाल्यून (trinitrotoluene)। यह विस्फाटन का एक पेमाना ह। 7 000 मीटर प्रति सेकण्ड के विस्फोटन-प्रेरक का एक टी एन टी क बराबर आका जाता हे। टी एन टी की एक बम म आ जाने वाली इतनी बडी मात्रा को ढोन के लिए कइ हजार डिब्बो वाली एक मालगाडी की जरूरत होगी।

न्यूट्रॉन बम की एक विशेषता यह है कि यह मनुष्य, जीव-जतुआ आदि का तो नाश करता है, परतु इमारतो, भवनो, कल-कारखानो को नष्ट नही करता, ताकि उस क्षेत्र पर यदि कब्जा हा जाए तो इनका उपयोग किया जा सके।

इस बम के तीन प्रभाव क्षेत्र होते हैं—मध्य वाले क्षेत्र मे तुरत मृत्यु हो जाती हे, दूसरे क्षेत्र मे कुछ घटो या दिनो मे मत्यु होती ह ओर तीसरे प्रभावित क्षेत्र मे आने वाले वर्षो मे तरह-तरह की बीमारिया फेलती रहती हें ओर मनुष्य जीव-जतु धीरे-धीरे मरते रहते हें या शीघ्र ही अपग, बूढ़े आर कमजोर हो जाते हैं। इसके विस्फोट से करोडो न्यूट्रॉनो की बोछार होती है, जो अलग-अलग क्षेत्रो मे अलग-अलग प्रभाव दिखाते हैं। इससे विस्फोट तरगे ओर ताप तरगे बहुत कम निकलती हें, इस कारण तोड-फोड बहुत ही कम होती है। एक किलो टन न्यूट्रॉन बम का असर लगभग दो किलोमीटर क्षेत्र पर होता हे। अधिक शक्तिशाली न्यूट्रॉन बम इससे भी ज्यादा क्षेत्र को प्रभावित करत हें।

क्लस्टर और फासफोरस बम

क्लस्टर बम बडी सख्या म तबाही मचाने वाला आधुनिक बम ह। इसका असर काफी बड दायरे मे हाता ह। यह अमरीका द्वारा बनाया गया।

क्लस्टर बम के खोल मे छोटे-छाटे अनेक बम तरतीब से भरे होते ह। हवाइ-जहाज से गिराने पर क्लस्टर बम का खोल वाय के दबाव मे खुल जाता हे ओर घूमन की गति म ये छाट-छाट बम एक बडे क्षेत्र मे छितरा जाते ह आर टकराकर फट पडते ह। इनसे बादल की तरह उठन वाले धुए स मीलो तक समस्त जीवित-प्राणियो की जीवनलीला समाप्त हो जाती है।

क्लस्टर बम क खाल के अदर 650 तक छोटे बम रखे जाते ह।

फासफारस बम की चपेट मे आए लोग जीवित जल जाते हे। यदि शरीर के किसी हिस्से के जख्म पर से चिपका हुआ फासफोरस हटाने की कोशिश की जाए तो यह वायु के सम्पक मे आकर फिर से आग पकड लेता हे। फासफारस बम के घातक प्रहार से घायल-व्यक्ति का जीवन बडा पीडादायक होता हे।

फासफोरस बम फटने के साथ ही आग पकड लेता हे ओर जब तक यह वायु के सम्पर्क मे रहता है जलता ही रहता है।
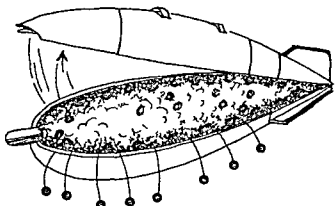
क्लस्टर बम का खोल खलते ही छोट छोटे बम इधर उधर छिटककर काफी बडे क्षेत्र में तबाही मचाते हैं

मशीन-गन का आविष्कार

एक सफल मशीन-गन का आविष्कार अमरीका के हिरम मैक्सिम ने सन 1882 में किया था जो लंदन में काम कर रहा था। यह सिंगल-बैरल का हथियार था और पूरी तरह स्वचालित था। इसकी लोडिंग फायरिंग और खाली कारतूस को बाहर निकालने की तथा फिर से लोड हो जाने की प्रक्रिया आदि इसके प्रतिक्षेप (रिकॉइल) द्वारा ही सम्पन्न होती थी। वैसे इसके पहले एक अन्य अमरीकी व्यक्ति रिचार्ड जार्डन गैटलिंग ने सन 1862 में एक ऐसी ही मशीन-गन बनायी थी जो एक मिनट में लगभग 125 गोलियां छोड़ती थी परन्तु यह पूर्ण स्वचालित मशीन-गन नहीं थी। हां इसे मशीन-गन का प्रारम्भिक रूप माना जा सकता है। गैटलिंग की मशीन-गन काफी भारी और बेडौल थी।

हिरेम मैक्सिम की मशीन-गन काफी सुधरी हुई और स्वचालित थी। उसने उसमें एक जल-शीतित बैरल की व्यवस्था की थी, जिसमें गोलियां भरने के लिए एक लम्बे कपड़े के बेल्ट को लगाया जाता था जिसमें गोलियां एक-सी दूरी पर एक के बाद एक लगी रहती थीं। स्वचालन पद्धति के लिए इसमें प्रतिक्षेप-बल (Force of recoil) के सिद्धांत को अपनाया गया था।

फ्रांस में जिस मशीन-गन का विकास किया गया, वह प्रोपेलेंट गैस (प्रणोदक गैस) के दबाव की व्यवस्था से चलती थी। आजकल की मशीन-गनों में यही प्रणाली अपनायी जाती है।

मशीन-गन की सबसे बड़ी समस्या इसके जल्दी गरम हो जाने की थी, क्योंकि इसमें गोलियां एक के बाद लगातार तेजी से छूटती थीं। अतः पहले इसे ठंडा रखने के लिए जल-शीतित जैकेट की व्यवस्था काम में लायी जाती थी परंतु इससे बड़ी असुविधा होती थी।
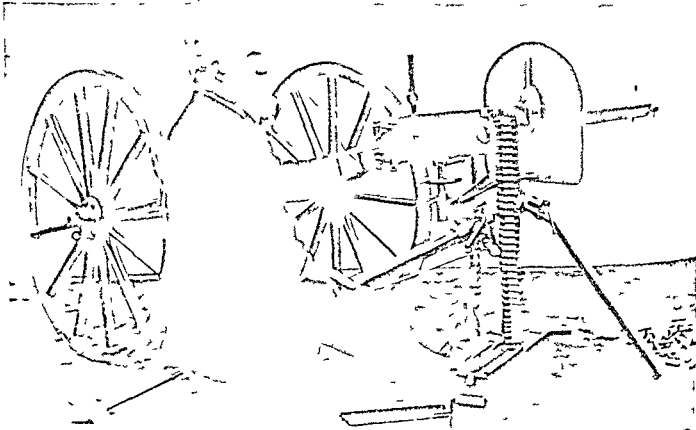
हिरम मैक्सिम अपनी मशीनगन का परीक्षण करते हुए

बाद में इन्हें ठडा रखने के लिए हवा की व्यवस्था की गयी।

मूल रूप से मशीन गन राइफल की तरह का ही अस्त्र है। इसमें प्रति मिनट 500 से 600 तक गोलिया छोडी जा सकती हैं। इसकी मार 2500 मीटर तक होती है। इसमें एक विशेष व्यवस्था होती है जिसमें इसकी रफ्तार घटायी बढ़ायी जा सकती है। मशीन गन में राइफल की ही 303 की गोलिया प्रयोग में लायी जा सकती हैं। इसकी एक पट्टी (Belt) में 3501 गोलिया की लडी होती है। मशीन-गन कई प्रकार की होती हैं। यहा हम कुछ प्रकार की मशीन-गनों का विवरण दे रहे हैं —

लूइसगन यह हल्की मशीन-गन है। इसका वजन 27-28 पौंड होता है और एक सैनिक इसे आसानी से अपने पास रख सकता है। इसे लडाकू विमानों में भी आसानी से फिट किया जा सकता है। इसकी मगजीन में एक बार में 48 कारतूस भर जा सकते हैं। यह लगभग 440 मीटर तक सही निशाना लगा सकती है।

ब्रेनगन यह भी हल्के किस्म की मशीन-गन है। इसकी नाल का मुह राइफल की नाल के लगभग बराबर ही होता है। इसका वजन 20 पौंड के लगभग होता है। निचाई पर उडते हुए विमान को इसमें आसानी से निशाना बनाकर गिराया जा सकता है। इस मशीन-गन में प्रति मिनट 500 गोलिया छोडी जा सकती हैं परंतु लगातार गोलिया छोडने का इसमें प्रबंध नही होता। इसका निशाना लगभग 700 मीटर तक सही लग सकता है। इसके अदर भी 303 के कारतूसों का प्रयोग किया जाता है। इसकी नाल पर साइलेंसर की व्यवस्था होती है, जिससे इसकी आवाज और चमक ज्यादा नही होती।

टामीगन यह बहुत अच्छे किस्म की मशीन-गन है। इसे सैनिक कंधे पर रखकर बडी आसानी से चला सकता है। यह एक मिनट में 600 से 700 तक गोलिया छोडती है। इसका वजन 14-15 पौंड होता है। इससे 60-70 मीटर तक का सही निशाना लगाया जा सकता है। इसमें भी राइफल में प्रयुक्त होने वाला 303 का कारतूस इस्तेमाल किया जाता है।

मध्यम प्रकार की अच्छे किस्म की मशीन-गन से एक मिनट में 250 गोलिया छोडी जा सकती हैं। इस मशीन-गन से लगातार काफी समय तक गोलिया छोडी जा सकती हैं। इसका वजन करीब 30-40 पौंड तक होता है। इसमें एक ऐसी विशेष व्यवस्था होती है, जिससे एक गोली भी छोडी जा सकती है और लगातार कई गोलिया भी छोडी जा सकती हैं।
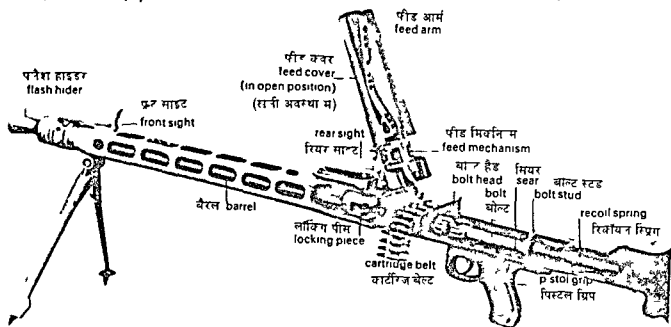
एक आधुनिक जर्मन मशीनगन जो गैस से संचालित होती है

टैंक का आविष्कार

टैक का आविष्कार 1882 के आसपास एक ब्रिटिश इजीनियर जॉन फेण्डर न किया था। इस टेंक मे पहियो के स्थान पर एक चक्रपट्टी लगी थी, जा कइ पहियो की मदद से जमीन पर घूमती थी आर टेंक आग वढता था। चक्रपट्टी धातु की पट्टियो को क्रम से चन की तरह जाडकर बनायी गयी थी। ससार का सबसे पहला सफल टैंक सन् 1900 म इग्लैंड की जॉन फाउलर एण्ड कम्पनी ने बनाया था। यह टेंक भाप से चलता था।

प्रथम विश्वयुद्ध म जब जर्मनी ओर ब्रिटेन की सनाओ ने मार्चाबदी कर ली तो ऐसी स्थिति आ गयी कि कोइ भी सेना आग नही बढ पा रही थी। जगह-जगह पर खाइया खुदी होन से घुडसवार सेना आर तोपखाने आग नही बढ सकते थे। शत्रु पर आगे बढकर आक्रमण करना आर घेरावदी करना असभव होता जा रहा था। इस कठिनाई स छुटकारा पाने क लिए टेंक जेस युद्ध-वाहन का आविष्कार हुआ। यह एक चलती-फिरती ऐसी विशाल मशीन हे, जा खदक-खाइयो, ऊचे-नीचे रास्ता का पार करती हुई दुश्मन के क्षेत्र म बखाफ घुमकर अपनी ऊपर लगी तोप म चारा ओर गोलियो की बाछार कर सकती ह।

सन् 1914 मे विश्व क कई दश जैस बल्जियम फ्रास ओर ब्रिटन टेंको के विकास म लग हुए थे। सन् 1915 मे फोस्टर कम्पनी ने लिटल विली' नामक छोटा-सा टेंक बनाया। 1916 मे इसका विकसित रूप बना जिसे 'बिग विली' का नाम दिया गया। सन् 1918 मे जब प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुआ तब तक फ्रास लगभग 3870 आर ब्रिटेन 2636 टेंक बना चुके थे। इसके बाद टेंको म बहुत से सुधार हुए। दूसर महायुद्ध म ता टेंक निमाण में क्राति-सी आ गई । सन् 1939 आर 1944 क बीच जमनी, ब्रिटेन, अमेरिका, रूस ओर जापान ने लाखो की सख्या म टेंक बना लिए थे। द्वितीय महायुद्ध मे इनका खुलकर प्रयाग किया गया। पिछले 35 वर्षो म ता विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ टेंक निर्माण मे भी आश्चर्यजनक प्रगति हुइ ह।

इसका नाम 'टेंक' क्या पडा? इसकी भी एक दिलचस्प घटना हे। शुरू-शुरू म टेंक का गुप्त रखा जाता था, ताकि दुश्मन को पता न चल सके ओर इसका इस्तेमाल अचानक ही युद्ध-क्षेत्र म हो। अत इसे एक विशाल बक्से म रखा जाता था और रेल पर चढा दिया जाता था। इसके खाल के ऊपर लिख दिया जाता था-'टेंक फॉर द जनी फ्रॉम द फक्टरी'। यहा टेंक का अथ पानी की टकी या होज मे था। इस प्रकार अनेक टेंक गुप्त रूप से युद्ध-क्षत्र म भेजे जात थे आर मबकी पेकिंग पर यही लिखा हाता था। इस लिखावट क आधार पर ही इस युद्ध- वाहन का नाम 'टेंक' पड गया। इस प्रारम्भिक टेंक का वजन 28 टन था ओर लम्बाई 8 मीटर क लगभग थी। जॉन फण्डर को टेंक बनान की प्ररणा एक केटर पिलर टेक्टर से मिली थी। आज के टेंको स यह प्रथम टेंक बिल्कुल भिन्न था।

टेंको को भार आर उपयोग की दृष्टि से तीन भागो मे बाटा जाता हे हल्के टेंक, मध्यम टेंक ओर भारी टेंक।
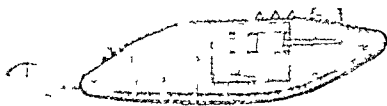
1916 म निर्मित बिग विली नामक टैंक

1917 म बना मीडियम A व्हिपेट टैंक
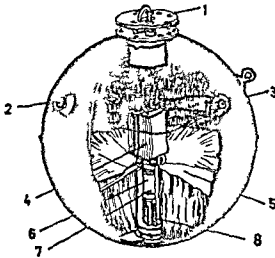
सुरंग (Mine) का आविष्कार

सम्पर्क सुरग का आतरिक भाग
1 विस्फोटक तत्र 2 3 सम्पर्क हार्न 4 बैटरी 5 विस्फोटक चार्ज
6 बम्पर 7 प्रस्फोटक (डिटोनेटर) 8 बल स्थानिक यन्त्र

सुरग (Mine) का आविष्कार 1919 से 1939 के मध्य हुआ। इसका आविष्कार भी गुप्त रूप से हुआ। कुछ लोगो का अनुमान है कि सुरगो का विकास विशेष तौर पर टैक-दस्तो की गतिविधि पर रोक लगाने के लिए हुआ। सुरगो का इस्तेमाल सबसे पहले अमेरिका, ब्रिटन और रूस मे आरम्भ हुआ। सामान्य रूप से सुरग मे 5-6 पौंड टी एन टी शक्ति की बारूद भरी होती थी। आरम्भ मे एक टैंक को नष्ट करने के लिए कई सुरगो का एक साथ इस्तेमाल किया जाता था।

अब सुरग थल पर ही नही, समुद्र मे भी जहाजो पनडुब्बियो आदि को नष्ट करने के लिए बिछायी जाती हैं।

सामान्य तौर पर सुरग का धात्विक अथवा अधात्विक खोल एक शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ से भरा होता है। इसका विस्फोटक पदार्थ जरा से धक्के के साथ ही धमाके के साथ फटकर तीव्र बल उत्पन्न करता है और बडे-बडे टैंको युद्धपोतो को पलक झपकते ही नष्ट कर देता है।

सुरग कई प्रकार की होती हैं। उनमे से कुछ प्रमुख निम्नाकित है –

स्थल सुरगे स्थल-युद्ध मे स्थल-सुरगो का इस्तेमाल एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र के रूप मे किया जाता है। शत्रु सेना के सभावित मार्ग मे ये सुरगे जमीन मे कुछ गहराई पर बिछा दी जाती हैं। इन्हे बडी सावधानी और होशियारी से बिछाया जाता है। इन पर से जब सैनिक या मोटर-गाडी या कोई अन्य वाहन गुजरता है, तो उसके दबाव से ये धमाके के साथ फटकर उसे नष्ट कर देती हैं।

सामान्य तौर पर स्थल सुरगे दो प्रकार की होती है – 1 टैक-भेदी सुरगे, 2 मानवघाती सुरगे।

1 टैकभेदी सुरगे टैक भेदी सुरग मानवघाती सुरगो से अधिक शक्तिशाली होती है, क्योंकि इनसे टैक, टैक आदि भारी युद्ध-वाहनो को नष्ट किया जाता है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान ब्रिटेन और अमेरिका मे एक बहुत हल्की टैंकभेदी सुरग सबसे पहले विकसित की गयी थी। यह चपटे क्वार्ट डिब्बे (चौथाई गलन मापन का पात्र) के आकार की थी। इसमे टैट्रिटॉल नामक विस्फोटक पदार्थ का मिश्रण भरा गया था। सैनिक इसे आसानी से अपनी जेब मे रख सकते थे। इसे जमीन मे छोटा-सा गड्ढा खोदकर अथवा घास-फूस से ढककर छिपा दिया जाता था। उसके बाद इसमे कुछ सुधार किया गया। इसमे एक अतिरिक्त सेकेण्डरी फ्यूज की व्यवस्था की गयी जिससे यह जरा से धक्के या वजन से भी विस्फोटित हो जाती थी। इसी कारण इसका नाम 'हस्टी माइन' यानी 'जल्दबाज सुरग' रखा गया।

2 मानवघाती सुरगे मानवघाती सुरगो मे एक पाउण्ड से अधिक विस्फोटक पदार्थ नही भरा जाता। ये सुरग मनुष्य के हाथ-पैर उडाने अथवा उन्हे जान से मारने के लिए काफी हैं।

मानवघाती सुरग भी दो प्रकार की होती है – 1 सीमित सुरग (बार्उडिग माइन), 2 स्थिर सुरग (स्टेबल माइन)।

सीमित सुरग विस्फोटित होने से पहले हवा में उछलती हैं, फिर धमाके के साथ फटती हैं जबकि स्थिर सुरग जमीन के अदर बिछाए गए स्थान पर ही फटती हैं। सीमित सुरग का विकास सन 1939 में जर्मनी में किया गया था। स्थिर सुरगो का सबसे पहले रूस में विकसित किया गया।

समुद्री सुरग समुद्री सुरगो का इस्तमाल अतजलीय आयुध की तरह किया जाता है। ये सुरग उन समुद्री मार्गो पर जल के अदर बिछा दी जाती हैं जहा से शत्रुओ के युद्ध-पोतो के आने की आशका होती है। समुद्री सुरग आमतौर से दो प्रकार की होती हैं-1 मुक्त सुरग और 2 नियंत्रित सुरग।

मुक्त सुरगो के दो प्रकार होते हैं। पहला सर सुरग और दूसरा तल पर बिछायी जाने वाली सुरग। ये सुरग समुद्र तल में बिछायी जाती हैं। जब कोई युद्ध-पोत इनके ऊपर से गुजरता है तो ये प्रभावित होकर फट पडती हैं। सर सुरग सम्पर्क या प्रभावी गण की होती हैं। युद्ध-पोत के सम्पर्क में आने या टकरा जाने पर ही फटती हैं जबकि प्रभावी सुरग युद्ध-पोतो से प्रभावित या आकर्षित होकर फटती है।

नियंत्रित सुरग जरूरत के मुताबिक उसके तटीय नियत्रण तथा प्रक्षेप-केन्द्रो से अतजलीय विद्युत तथा नियत्रण केबल प्रणाली द्वारा नियंत्रित होती है और उन्हे निदेश देकर विस्फोटित किया जाता है।

चुम्बकीय सुरगे चुम्बकीय (मैग्नेटिक) सुरगो का उपयोग लोहे के ढाचे वाले युद्ध-पोतो के लिए किया जाता है। चुम्बकीय सुरगो का विस्फोटित होना युद्ध-पोतो के चुम्बकीय क्षेत्र (मैग्नेटिक फील्ड) पर निर्भर करता है। इन सुरगो से युद्ध-पोत की रक्षा करने के लिए उसके चुम्बकीय क्षेत्र को कम कर दिया जाता है। चुम्बकीय सुरग चुम्बकीय शक्ति से खिचकर युद्ध-पोत से टकराती है जिसके फलस्वरूप उनका विस्फोट हो जाता है।

ध्वानिक सुरगे ध्वानिक सुरग माइक्रोफोन के सिद्धात पर कार्य करती हैं। ध्वानिक सुरग में लगे माइक्रोफोन युद्ध-पोतो के प्रोपेलरो और इजनो की ध्वनि का ग्रहण करते हैं और इसे एम्प्लीफाइ (वर्धित) कर सुरग को विस्फोटित करने में सहायता करते हैं। समुद्र में बिछी इस प्रकार की सुरगो पर आमतौर पर कीचड, कचरा और समुद्री घास-फूस आदि की परते चढ जाती हैं, जिस कारण इन्हे विस्फोटित होने के लिए उच्च आवृत्ति की आवश्यकता पडती है।

समुद्री सुरगो की सफाई के लिए लगरयुक्त दो नावो के मध्य कुछ अतर रखकर उन्हे आरेदार रस्सो से सम्बद्ध किया जाता है। सुरगो की मूरिंग लाइनो को जब इस रस्से की रगड से काटा जाता है तो ये अलग होकर समुद्र की सतह पर आ जाती है। तब इन्हे दूर से राइफल से निशाना बनाकर नष्ट कर दिया जाता है।

मिसाइल का आविष्कार

मिसाइल एक ऐसा प्रक्षेपास्त्र है जिसे बिना किसी चालक के धरती के नियंत्रण-कक्ष से मनचाहे स्थान पर हमला करने के लिए भेजा जा सकता है। पत्थरों के टुकड़ों को फेंककर मारना मिसाइलों का आदिरूप था। तीर भी एक प्रकार के मिसाइल ही थे। आज मानव ने अनेक प्रकार के मिसाइल बना लिए हैं जो धरती, समुद्र और आकाश सभी जगह प्रयोग हो सकते हैं।

मिसाइलों का आविष्कार द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान जर्मनी में हुआ। ब्रिटेन पर बम गिराने के लिए जिस वी-1 प्रक्षेपास्त्र को जर्मनी ने इस्तेमाल किया था, वह एक मिसाइल ही थी। इन मिसाइलों की गति लगभग 360 मील प्रति घंटे थी और ये 125 मील दूर तक मार कर सकती थीं।

दूसरे प्रकार की मिसाइल वी-2 का निर्माता जर्मनी का वानर फान ब्रान था। अतः विश्व की पहली मिसाइल वी-2 को ही माना गया। इसके बाद अमरीका के रॉबर्ट गॉडार्ड ने मिसाइल-निर्माण में आश्चर्यजनक उन्नति की।

इस समय अमरीका और रूस ने इतनी बड़ी और विश्वसनीय निर्देशित मिसाइलें तैयार कर ली हैं जो भारी से भारी हाइड्रोजन और एटम बम को ढोकर लक्ष्य तक कुछ ही पलों में पहुंचा सकती हैं।

मिसाइल दो प्रकार की होती हैं—1 निर्देशित और 2 अनिर्देशित।

1 निर्देशित मिसाइलें निर्देशित मिसाइलों के छोड़े जाने के बाद आकाश-मार्ग में कहीं भी उनकी दिशा में परिवर्तन लाया जा सकता है। नियंत्रण-कक्ष से उन्हें जैसा निर्देश मिलता है, वे उसी के अनुसार अपनी दिशा में परिवर्तन करते हुए अपने लक्ष्य का पीछा करती हैं। वर्तमान युद्ध-प्रणाली में अधिकतर निर्देशित मिसाइलों का ही प्रयोग होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि इन्हें नियंत्रण में रखकर सही निशाने पर पहुंचने तक निर्देश दिया जा सकता है। अतः इनका वार अचूक होता है।

धरती पर स्थित लक्ष्य को निशाना बनाने के लिए धरती से जो मिसाइल छोड़ी जाती हैं, उन्हें धरती से धरती (Ground to ground) मिसाइल कहा जाता है। धरती से आकाश में किसी लक्ष्य को निशाना बनाने के लिए जो मिसाइलें धरती से आकाश की ओर छोड़ी
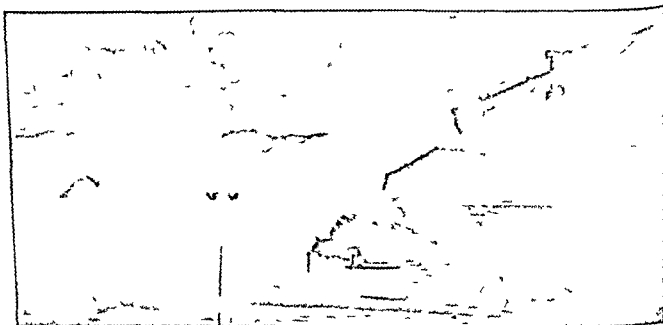
एक मिसाइल निर्देशित स्थान की ओर जाती हुई

जाती ह, उन्हे धरती म वायु(Ground to air) मिसाइल कहा जाता ह। इसी प्रकार हवा से हवा मे मार करने वाली आर आकाश में धरती पर मार करन वाली मिसाइले भी होती हैं।

नियन्त्रित या निर्देशिन मिसाइल का नियन्त्रण रेडियो, राडार ओर इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटरा द्वारा किया जाता ह। जब राडार की एक तरग लक्ष्य तक पहुच जाती ह तो वह कम्प्यूटर को उसकी ऊचाइ, लम्बाइ-चाडाई दिशा आर वेग आदि की सूचना दती ह। कम्प्यूटर कुछ क्षणा म पूरा हिसाब-किताब लगाकर मिसाइल को सेट करके दाग देता ह। मिसाइल की उडान क साथ एक दूसरी राडार-तरग उस पर नजर रखती ह। यह तरग कम्प्यूटर को मिसाइल की उडान आर दिशा के विषय मे सूचना दती रहती ह। कम्प्यूटर रेडिया तरगो द्वारा मिसाइल के मार्ग आर दिशा मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता रहता है। ये रेडिया तरग मिसाइल के भीतर लगे मार्ग निश्चित करने वाले उपकरणा पर नियन्त्रण रखकर उसे लक्ष्य तक पहुचाती हैं।

2 अनिर्देशित मिसाइले ये मिसाइल अपन लक्ष्य पर सीधे छाड दी जाती ह। इनकी दिशा या माग नही बदला जा सकता। इनमे भी धरती से धरती, धरती से हवा, हवा से हवा आर हवा से धरती पर मार करने वाली मिसाइले होती है।

मिसाइला क कल-पुर्जो की काय-प्रणाली काफी जटिल हाती ह। कुछ देशा की विभिन्न प्रकार की मिसाइलो के विवरण निम्न प्रकार स हैं --

क्रूज मिसाइल यह एक अत्यत, आधुनिक अमरीकी मिसाइल हैं। इसका पूरा नाम 'ग्राउण्ड लाच्ड क्रूज मिसाइल' है। यह एक छोटे से सन-सानेट जट-इजन स शक्ति प्राप्त करती है। इसकी रेज 2400 किलोमीटर है ओर यह शत्रु क खोजी राडारो की नजरो मे बचने के लिए काफी नीची उडान भरती है।

ट्रायडेंट मिसाइल यह भी अमरीका की ह और इसकी रेज 7400 किलोमीटर ह। यह समुद्री जहाजो पर इस्तेमाल की जाती ह। अब ये पनडुब्बियो स भी चलायी जा सकेगी।

लाच यह अमरीका की धरती से धरती पर मार करने वाली मिसाइल ह। इसकी सबसे बडी विशेषता यह ह कि यह आकाश मे भी कहर ढा सकती ह आर पानी मे भी तर सकती ह। इस मिसाइल मे ध्वसक सिरा, निर्देशक उपकरण, ऊजा-टकी तथा एक इजन हाता ह।

ब्लड हाउड यह ब्रिटेन की विमान-भेदी मिसाइल हे। इसकी एक यूनिट मे चार निर्देशित मिसाइल, उनके प्रक्षेपक, लक्ष्य खोजने वाला राडार तथा कट्राल-कक्ष होता ह। राडार द्वारा लक्ष्य बताने पर यह मिसाइल ऊष्मा के सिद्धात पर उसका पीछा करती हे।

गेनफुल यह सोवियत सघ की आधुनिक मिसाइल ह। एक लाचर पर इस प्रकार की तीन मिसाइल रखी जा सकती हैं। इस मिसाइल म एक शक्तिशाली राकट-माटर लगी हाती ह। यह भी ऊष्मा क सिद्धात पर कार्य करती ह। यह धरती म हवा मे मार करने वाली मिसाइल हे।

एकरा यह फ्रास की टेंक-भेदी मिसाइल ह। यह निर्देशित आर अनिर्देशित दोनो प्रकार की होती हे। मिसाइल दागने के बाद इसका खोल अपने आप अलग हो जाता हे। यह मिसाइल ताप जसे उपकरण से छाडी जाती ह। इस किस्म की निर्देशित मिसाइल मे निर्देशन के लिए अवरक्त (इन्फ्रा रेड) किरणो का इस्तेमाल किया जाता हे।

कोबरा यह पश्चिम जमनी की टेंक-भेदी मिसाइल हे। इसको दागने के लिए किसी प्रक्षपक की आवश्यकता नही पडती। चलान वाला इसदा मव द नियन्त्रण बक्स और सम्पर्क तार से कर देता ह। नियन्त्रण बक्स का बटन दबाते ही मिसाइल लक्ष्य की ओर चल पडती है। इसम लगा नियन्त्रण उपकरण निर्देश पाकर लक्ष्य तक इसे पहुचाता ह। एक नियन्त्रण-बक्स क साथ दस मिसाइलो का जाडा जा सकता ह।

5
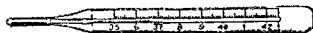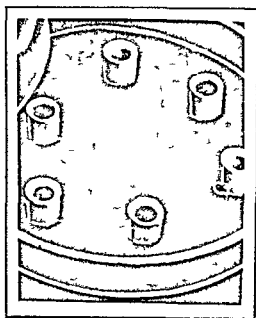
चिकित्सा

क्लोरोफार्म का आविष्कार

चिकित्सा विज्ञान मे क्लोरोफार्म का आविष्कार बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे आपरेशन के समय रोगी को बेहोश करने के लिए प्रयोग किया जाता है। बेहोशी की अवस्था मे आपरेशन से होने वाली पीडा से रोगी को छुटकारा मिल जाता है। इसके आविष्कारक जेम्स नेग सिम्पसन थे। उन्होने विद्यार्थी जीवन मे ही इस प्रकार की औषधि के निर्माण क विषय मे एक सकल्प ले लिया था। इस आविष्कार के पीछे उनके जीवन मे घटी एक दर्दनाक घटना का हाथ हे।

एडिनबरा के एक अस्पताल मे एक व्यक्ति की टाग मे विषैला घाव हो जाने से सारे शरीर मे विष फैल जाने का डर था। अत उसकी टाग काटना जरूरी हो गया। उसके हाथ-पेर रस्सी से बाध दिए गए। आगे क्या होना है, इसकी कल्पना मात्र से वहा के लोग सहमे हुए थे। कुछ ही देर मे सजन आए। कुछ अन्य डाक्टरो ओर नर्सो ने उस आदमी को कसकर पकड लिया। सर्जन ने तब आरी से उसकी टाग को काटना शुरू किया। भयकर पीडा से वह व्यक्ति बुरी तरह छटपटा रहा था। उसकी ददनाक चीख से सबके दिल दहल रहे थे। काफी देर तक चीखने-चिल्लाने के बाद जब वेदना सह पाना *कठिन हो गया तो वह व्यक्ति मूर्च्छित हो गया।*

डाक्टरी पढ़ने वाले इस विद्यार्थी ने टाग काटने के इस बीभत्स दृश्य को देखा और उसकी दिल दहलाने वाली भयकर चीखे सुनी तो वह अपने को सभाल न सका और बेहोश होकर गिर पडा। होश मे आने पर कई दिन तक उसकी आखो के सामने यह भयकर दृश्य घूमता रहा। उसने विचार किया कि क्या कोइ ऐसी दवाइ नही बनायी जा सकती, जो ऐसे रोगियो को बहोश कर दे, ताकि उन्हे पीडा का अनुभव न हो। बस, उसने सकल्प कर लिया कि वह इस प्रकार की ओपधि बनाने की कोशिश करेगा।

डाक्टर बनने के बाद उसने अपना निजी चिकित्सालय खोला ओर चेतनाहीन करने वाली ओपधि के शोध कार्य मे लग गया। दिन-रात उसने एक कर दिया। आए दिन अस्पतालो मे इस तरह के दर्दनाक दृश्य देखते-देखते वह तग आ चुका था। वह जल्दी से जल्दी रोगियो को आपरेशन से हाने वाली भयकर पीडा से छुटकारा दिला देना चाहता था। इतना ही नही आपरेशन के दौरान सर्जनो को इतनी मानसिक परेशानी होती थी कि वे ठीक तरह से आपरेशन भी न कर पाते थे।

एक दिन शाम को जब डॉ सिम्पसन अपने शोध कार्य मे लगे हुए थे, तो उनके द्वारा तेयार किए गए एक मिश्रण को उनके एक सहयोगी ने सूघ लिया। सूघने के कुछ ही क्षणो मे वह बहोश होकर गिर पडा। जब सिम्पसन ने यह दश्य देखा तो वे तुरत उसके पास आए और उन्होने भी वह *ओपधि सूघी। वे भी इससे मूर्च्छित* हो गए। कुछ देर बाद जब उनकी पत्नी प्रयोगशाला मे आयी तो यह दृश्य देखकर घबरा गयी। उन्होने दौडकर डॉ सिम्पसन को उठाया। सिम्पसन थोडी देर मे होश मे आ गए और सज्ञाहीन औपधि को पा खुशी मे 'मिल गया- मिल गया' कहकर चिल्लाने लगे। 4 नवम्बर 1847 को उन्होने क्लोरोफार्म नामक इस बेहोश करने वाली औपधि का आविष्कार कर अपना सकल्प पूरा किया। उसके बाद इस औपधि पर बहुत से प्रयोग और परीक्षण किए गए, ताकि यह मनुष्य के लिए हानिकारक न हो। क्लोरोफार्म के बाद बेहोश करनेवाली ओपधियो के क्षेत्र मे अनेक प्रयोग किए गए। इन प्रयोगो के फलस्वरूप आज इससे भी उत्तम प्रकार की औपधिया खोज ली गइ है। वास्तव मे अब क्लोरोफार्म को बेहोश करने के लिए प्रयोग नही किया जाता, बल्कि दूसरी औपधियो को ही काम मे लाया जाता है।

स्टेथस्कोप का आविष्कार

स्टथस्काप एक एसा डाक्टरी यन्त्र ह जिस हृदय आर फफडे सवधी रागा का पता लगान क लिए काम म लाया जाता ह। इस यन्त्र का आविष्कार सन 1816 म फ्रास क रेन थियाफिल हैसिन्थे लैनिक नामक डाक्टर न किया था। यह लकडी से बनाया गया था तथा इसका बलन जेसा आकार था। बलन म एक आर पार छद था। इसका एक सिरा रागी की छाती पर तथा दूसरा डॉक्टर कान पर लगात थ। दिल की धडकन म पदा हुई ध्वनि तरग छद स हाती हुइ काना तक पहचती थी जिसस राग का पता लगा लिया जाता था।
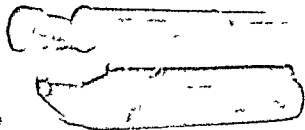
डॉ लनिक न अनक रागा क रागिया पर इसक परीक्षण किए। भिन्न-भिन्न रागा क रागिया क हृदय की धडकना की अनियमितता क आधार पर उन्हान रागा का पहचानन क अनक परीक्षण किए और उनका वर्गीकरण किया। इन परीक्षणा स प्राप्त परिणामा क सम्बध म उन्हान 1819 म एक पुस्तक भी लिखी।
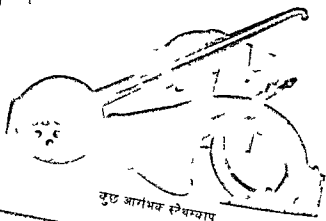
पहला सफल बाइनॉरल यानी दाना काना म लगान वाला स्टथस्काप सन 1885 म डा कमन न विकसित किया। इसका प्रयाग बहुत ही सुविधाजनक था।

आधुनिक स्टथस्काप म छाती तथा पीठ पर लगान क लिए एक धातु का घटीनमा उपकरण हाता है। इसक अदर एक डायफ्राम लगा हाता ह जा धडकन की आवाज क साथ उसी आवृति म कम्पन करता ह। इस उपकरण स एक रबर की नली जुडी हाती ह। इस नली का दूसरा सिरा धातु की एक अन्य नली स जुडा हाता ह जो दूसर सिर पर दा भागो म बट जाती ह। इन दाना भागा पर धातु की दा नलिया लगा दी जाती हैं, जिनक दाना दूसर सिर काना म लगाए जात हैं।
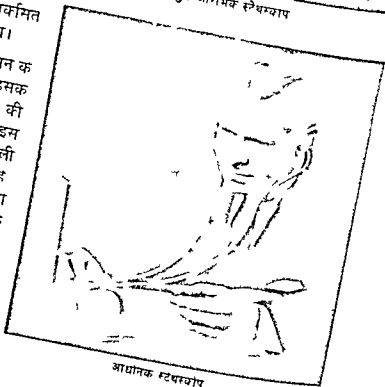
डॉक्टर इस यन्त्र स हृदय की धडकना क अतिरिक्त श्वास नलिका म वायु क आन-जान म उत्पन्न हान वाली ध्वनि का भी सुनकर राग तथा राग की दशा का अनुमान लगात हैं।

कुछ आरंभिक स्टेथस्कोप

आधुनिक स्टेथस्कोप

पेनिसिलिन का आविष्कार

अलेक्जण्डर फ्लेमिंग परीक्षण प्लेट का अध्ययन करते हुए

पेनिसिलिन औषधि की खोज ब्रिटेन के सर एलेक्जण्डर फ्लेमिंग ने सन् 1928 में की थी, लेकिन इसका आम उपयोग इसकी खोज के लगभग दस वर्ष बाद ही हो पाया। इसकी खोज से निमोनिया, खांसी गले की सूजन और घावों जैसे गंभीर रोगों पर विजय पाने का मार्ग खुल गया। इस औषधि में रोगों के कीटाणुओं को मारने का विलक्षण गुण है।

पेनिसिलिन एक प्रकार की फफूंद से बनती है। जिसे पेनसीलियम कहते हैं। यह फफूंद ठीक उसी तरह की होती है जो आमतौर पर कई दिनों तक खुले में रखने पर डबल रोटी, मटर, नींबू आदि पर लग जाती है। दूसरी प्रकार की फफूंदों से अनेक प्रकार की औषधियां बनायी जाती हैं जिन्हें 'एंटीबॉयटिक्स' औषधियां कहा जाता है।

एक दिन प्रोफेसर फ्लेमिंग भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर उग आयी फफूंद की प्यालियों पर कुछ परीक्षण कर रहे थे। उन्होंने फोड़े से प्राप्त पस में विद्यमान जीवाणुओं पर परीक्षण करते हुए एक बड़ी ही विचित्र चीज देखी। उन्होंने देखा कि पस की जेली पर एक फफूंद उग आयी थी, लेकिन आश्चर्य था कि फफूंद के चारों ओर खाली जगह बची हुई थी, जबकि फफूंद की प्लेट अच्छी तरह ढकी हुई थी। फ्लेमिंग ने देखा कि फफूंद ने अपने चारों ओर एक विशेष प्रकार का पदार्थ उत्पन्न किया है जिसने जीवाणुओं की वृद्धि में रुकावट डाली है। अन्य प्रयोगों से उन्हें ज्ञात हुआ कि यह विशेष फफूंद 'पेनिसिलियम' फफूंदों के एक बहुत बड़े परिवार की एक सदस्या है।

फ्लेमिंग ने कई पदार्थों की फफूंद उगायी और विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं पर फफूंद के प्रभाव के परीक्षण किए। सबसे पहले फ्लेमिंग ने एक विशेष रोग के रोगाणुओं को मांस के शोरबे की जेली में डाला और उसमें फफूंद के बीजाणु मिलाए। फफूंद के आस-पास की जगह खाली रही। इसका अर्थ यह था कि यह फफूंद रोग के रोगाणुओं को रोकने में सफल रही। इसी प्रकार उन्होंने कई रोगों के रोगाणुओं पर फफूंद का प्रभाव ज्ञात किया। उन्होंने पाया कि कुछ रोगाणुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है और कुछ पर नहीं।

इसके बाद उन्होंने यह पता करने के लिए परीक्षण करने शुरू किए कि प्रभाव डालने वाला पदार्थ फफूंद में मौजूद है अथवा फफूंद से उत्पन्न होता है और किस प्रकार अलग किया जा सकता है ताकि जीवों के शरीर में प्रवेश कराकर उसका प्रभाव देखा जा सके।

फ्लेमिंग ने मांस के शोरबे में फफूंद उगाकर शोरबे को छानकर अलग कर दिया। छाने गए द्रव में उन्होंने रोगाणुओं की कल्चर मिलाकर देखा। यह द्रव रोगाणुओं के विरुद्ध उतनी ही तेजी से कार्य कर रहा था जितनी फफूंद के परीक्षण के समय। इस प्रयोग में

फ्लमिग को ज्ञात हो गया कि फफूद द्वारा उत्पन्न वह सक्रिय पदार्थ जो रोगाणुओ के विरुद्ध कार्य करता है द्रव मे घुलकर आ जाता है। इस तरह उन्होने पेनिसिलिन का आविष्कार किया। रोगाणुओ को उत्पन्न होने से रोकने के लिए उन्होने यह द्रव तैयार कर लिया था। इस द्रव को एंटीबायोटिक अथवा प्रतिजीवी कहते हैं। इस द्रव का नाम फ्लमिंग ने पेनिसिलिन रखा।

उसके बाद फ्लमिंग ने पेनिसिलिन-द्रव से अनेक परीक्षण किए और अत मे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस द्रव को औषधि के रूप मे मनुष्य के शरीर मे इजेक्शन द्वारा पहुचाया जा सकता है। फ्लमिंग ने इसका प्रयोग अनेक चर्म-रोगो के इलाज मे भी किया जिसके परिणाम बहुत ही उत्साहजनक निकले।

सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य पेनिसिलिन पदार्थ को इस द्रव से अलग करना था जिसमे फ्लमिंग को सफलता नहीं मिली। इसका सबसे बडा कारण इस पदार्थ की विलक्षणता थी। यह पदार्थ परीक्षण करते वक्त तुरत ही दूसरे पदार्थ मे बदल जाता था।

सर हॉवर्ड फ्लोर

पेनिसिलिन का बैक्टीरिया पर प्रभाव

पेनिसिलिन को द्रव से अलग करने मे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर फ्लोर ने किसी हद तक सफलता पायी। सन् 1938-39 मे उन्होने थोडी-सी पेनिसिलिन अलग की और उसे इजेक्शन के रूप मे रोगी के शरीर मे पहुचाने के लिए तैयार किया। 1941 मे उन्होने इसका परीक्षण कुछ रोगियो पर किया जिसके बहुत ही अच्छे परिणाम निकले।

उसके बाद अनेक वैज्ञानिको ने बडी मात्रा मे पेनिसिलिन उत्पादन करने के लिए मिलकर प्रयत्न किए। अमरिका की अनेक प्रयोगशालाए इस कार्य मे महीनो तक लगी रही तब कही जाकर बडी मात्रा मे पेनिसिलिन प्राप्त करने का तरीका मालूम किया जा सका।

पेनिसिलिन डिफ्थीरिया, निमोनिया रक्त-विषाक्तता (Blood Poisoning) फोडे, गले का दर्द, खासी, दमा आदि अनेक गम्भीर रोगो के इलाज के लिए इजेक्शन और गोलियो के रूप मे प्रयोग की जाती है। ऑपरेशन के वक्त भी पेनिसिलिन का इजेक्शन रोगी को दिया जाता है।

थर्मामीटर का आविष्कार

थर्मामीटर का आविष्कार इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गेलिलियो ने लगभग सन् 1593 में किया था। गेलिलियो ने सबसे पहले वायु का तापमान मापने वाले थर्मामीटर का आविष्कार किया था। उसके बाद मौसम और शरीर का तापमान मापने के लिए अनेक प्रकार के थर्मामीटरों का विकास हुआ। सन् 1714 में गेलिलियो के थर्मामीटर से प्रभावित होकर जर्मनी के एक भौतिकशास्त्री गेब्रिल फारेनहाइट ने शरीर का तापमान लेने वाला थर्मामीटर बनाया जो फारेनहाइट थर्मामीटर कहलाता है।
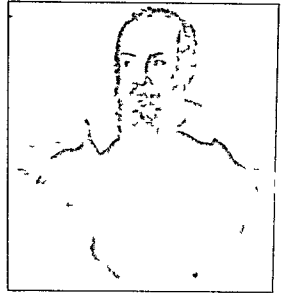
गेलिलियो (1564 1642)

आज कई प्रकार के थर्मामीटर प्रचलित हैं, जो भिन्न-भिन्न कार्यों में प्रयोग होते हैं।

एल्कोहल थर्मामीटर निम्न तापमान मापने के काम में इस्तेमाल किए जाते हैं। इस थर्मामीटर में काच की पतली सूराख वाली नली में एल्कोहल भरा होता है, जिसमें थोडा-सा लाल रंग मिला दिया जाता है, ताकि स्केल पर तापमान ठीक से पढ़ा जा सके। गर्मी के कारण एल्कोहल का प्रसार होता है और सर्दी पहुचने पर इसका आयतन घट जाता है। इसका उपयोग मौसम का तापमान ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

अन्य कई प्रकार के थर्मामीटरों में पारे का इस्तेमाल किया जाता है। पारा भी गर्मी-सर्दी पाकर शीघ्र ही फैलता है और सिकुडता है। पारे वाले थर्मामीटरों का उपयोग 300 डिग्री सेल्सियस तक तापमान ज्ञात करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

शरीर का तापमान ज्ञात करने के लिए एक विशेष प्रकार के पारद थर्मामीटर का उपयोग किया जाता है। इस थर्मामीटर को जब जीभ के नीचे या बगल में लगाकर शरीर का तापमान लिया जाता है, तो पारा सकरी नली में ऊपर चढ़कर शरीर के तापमान के अनुसार एक निश्चित स्थान तक पहुचकर ठहर जाता है। इस प्रकार इसे शरीर से हटाकर आसानी से पढ़ा जा सकता है। नीचे उतारने के लिए इसे पाच-छह झटके
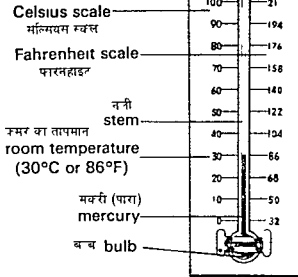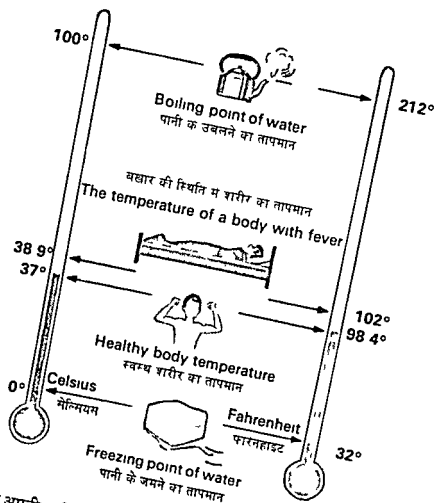
दिए जाते हैं जिससे पारा फिर अपनी घुडी वाली जगह म आता है।

कुछ अन्य प्रकार के थर्मामीटर विशेष धातुओ के तारो से बनाए जाते है। ये थर्मामीटर तारो की कुडली के कसन और ढीले पडने से तापमान मापते हैं। जब तापमान बढ़ता है, तो तार की कुडली क्स जाती है ओर तापमान के घटने पर ढीली पड जाती है। तार की कुडली के एक छोर पर निर्देशक लगा होता है। यह निर्देशक एक चिन्हित डायल पर घूमकर तापमान वताता है। कुछ थर्मामीटरा म निर्देशक के छार पर पेंसिल लगी होती है, जिसकी मदद स य कागज के ग्राफ पर तापमान के घटन-वढने को अंकित भी करते रहत हैं।

तापमान डिग्री मे मापा जाता है, परतु सभी थर्मामीटरा की डिग्रिया का पेमाना एक-सा नही होता हे। उदाहरणार्थ-मनुष्य क शरीर का तापमान सटीग्रड थर्मामीटर मे 37° डिग्री होता है जवकि फारेनहाइट थर्मामीटर मे 98 4 डिग्री।

फरेनहाइट थर्मामीटर म हिमाक (Freezing Point of Water) 32 डिग्री आर क्वथनाक (Boiling Point of Water) 212 डिग्री होता है जबकि सटीग्रेड थर्मामीटर म हिमाक शून्य हाता है ओर क्वथनाक 100 डिग्री।

औद्योगिक क्षेत्र क हर उत्पादन और नियत्रण कार्य म विभिन्न प्रकार के धर्मामीटरा की जरूरत पडती है।

कैट-स्कैनर का आविष्कार

कैट-स्कैनर का आविष्कार ब्रिटिश भौतिकशास्त्री डॉ गाडर हाउर्मफिल्ड और अमरीकी भौतिकविज्ञानी डॉ कोरमक ने सन 1972 में किया। इस अदभुत आविष्कार के लिए दोनो ही वैज्ञानिको को 1979 में आयुर्विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

कैट-स्कैनर के विकास से पहले रोग का पता लगाने के लिए कई प्रकार से शरीर के एक्स-रे कराने पडते थे। उदाहरण के लिए सिर के रोग में सिर का एक्स-रे करवाना पडता था। उसमे लम्बा पंक्चर कराना पडता था। मस्तिष्क की रक्त धमनियो में विशेष कंट्रास्ट डाइ इंजेक्ट करके फिर एक्सरे करवाना पडता था। इसके अलावा और न जाने किस-किस तरह की जाच करवानी पडती थी। ऐसे परीक्षणो मे शारीरिक कष्ट के साथ-साथ खतरा भी होता था परंतु कैट-स्कैनर के आविष्कार से अब केवल एक परीक्षण से ही रोग का पता लग जाता है और सफल इलाज किया जा सकता है। इसमे न शारीरिक कष्ट होता है न खतरा।
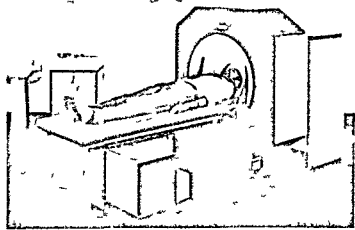
कैट स्कैनर मे सिर का परीक्षण किया जा रहा है।

कैट-स्कैनर वास्तव मे एक्सरे उपकरण का ही एक विकसित रूप है। सामान्य तौर पर एक्सरे चित्र से कठोर ऊतक (Tissue) जैसे हड्डिया और कोमल ऊतक जैसे मस्तिष्क आदि तो पहचान मे आ जाते हैं पर विभिन्न कोमल ऊतको को अलग-अलग पहचानना बहुत मुश्किल होता है। इसका कारण यह है कि कोमल ऊतक एक्स किरणो को बहुत कम मात्रा मे अवशोषित
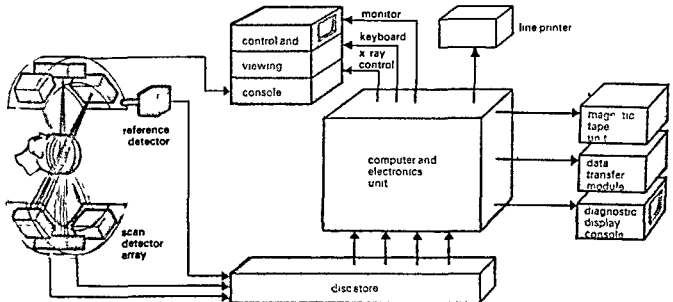
कैट स्कैनर जो सिर की जाच के लिए प्रयुक्त किया जाता है उसका एक ब्लाक चित्र

कर पात हैं। दूसरे, एक्स किरणा से प्राप्त चित्र केवल दो आयामी ही बनते हैं, जिसस मोटाई या गहराइ का आभास नही हो पाता। ऑपरशन क लिए एक्सरे स पूरी जानकारी प्राप्त नही हा पाती और डाक्टरा को बहुत-सी वाता क लिए अटकला पर निर्भर रहना पडता है।

केट-स्कैनर पद्धति म तीन विमाओ वाला चित्र प्राप्त होता ह अर्थात चित्र गहराई और ऊचाई-निचाई को भी दशात हैं। इस उपरकण म एक ओर एक्सरे स्रोत होता है। वीच म रोगी के लिए मोटरचालित स्ट्रेचर हाता ह और उसक दूसरी ओर एक डिटेक्टर नामक उपकरण। डिटेक्टर एक कम्प्यूटर से सबद्ध होता ह। कम्प्यूटर एक टी वी स्क्रीन स जुडा होता है। कम्प्यूटर के गणित-सूत्र आर चित्र टी वी स्क्रीन पर चित्रित होते रहते हैं। स्केन हो रह क्षेत्र से गुजर कर एक्स किरण डिटेक्टर तक पहुचती है। डिटेक्टर इन्हे इलेक्ट्रिक सिग्नल्स क रूप म कम्प्यूटर तक पहुचाता है। कम्प्यूटर प्राप्त सिग्नलो को गणित-सूत्र का प्रयोग करत हुए चित्र का रूप देकर टी वी स्क्रीन पर उभारता है। भिन्न-भिन्न ऊतक अपन घनत्व (लम्बाई, चोडाई, मोटाई) के अनुसार स्पष्ट रूप से स्क्रीन पर दिखायी पडत हैं।

कैट' शब्द कम्प्यूटराइज्ड एक्सियल टामोग्राफी का संक्षिप्त रूप है।

केट-स्केनर दो प्रकार क हात हैं–पहला हेड-स्केनर, जो मस्तिष्क म ट्यूमर, सिर की चोट की वजह स रक्तस्राव या ब्रेन हेमरेज आदि म इस्तेमाल हाता ह। दूसरा वॉडी-स्कैनर हाता है, जो अपेक्षाकृत कुछ वडा होता है और शरीर के अन्य भागो का परीक्षण करने के लिए प्रयुक्त किया जाता ह। केट-स्कनर की कीमत लगभग एक करोड रुपये होती है।

हमारे देश मे दिल्ली, वम्बइ और मद्रास म हैड-स्कैनर और मद्रास म वॉडी-स्कैनर की सुविधाए उपलब्ध हैं।

आधुनिक केट-स्कैनर स्केनिंग करते वक्त मात्र 4-5 सकण्ड के समय मे लगभग 1 84320 रीडिंग लकर कम्प्यूटर तक पहुचा दता है। रीडिंग क आधार पर कम्प्यूटर 1 88 करोड गुणा और 94 लाख जोड करक निश्चित क्षत्र के चित्र को स्क्रीन पर प्रेषित कर गहराई से जानकारी देता है। चिकित्सक को तुरत ज्ञान हो जाता है कि सिर या शरीर के किस हिस्से से रक्तस्राव हो रहा है और ऑपरशन के लिए निश्चित जगह और गहराई तक का ठीक-ठीक पता चल जाता है। इससे रोगी का तुरत ऑपरेशन किया जा सकता है। मस्तिष्क के ट्यूमर की भी प्राथमिक अवस्था म ही जानकारी प्राप्त कर इसका उपचार सरलता से किया जा सकता है।

केट-स्कैनर से यह भी पता किया जा सकता है कि ट्यूमर के लिए प्रयुक्त की जा रही औषधि उस पर असर कर रही है या नही। केट-स्कैनर का उपयोग केवल रोग के निदान क लिए ही नही, वल्कि उसक सही इलाज का पता लगाने के लिए भी किया जाता है।

वॉडी-स्कैनर शरीर के किसी भी हिस्से या पूरे शरीर का स्कैनिंग कर सकता है। शरीर के किसी भी स्थान पर छोटे स छोटे कैंसर का इसस पता लगाया जा सकता है।

विविध
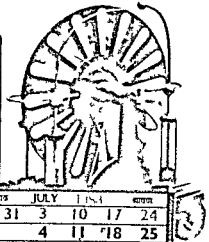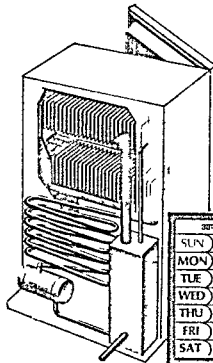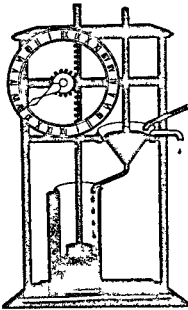
कैलेण्डर का आविष्कार

कलेण्डर का आविष्कार मवम पहले प्राचीन बेवीलान के निवामिया न किया था। यह चद्र कैलेण्डर कहलाता था। कैलेण्डर का विकास समय नापने की दिशा मे एक वहुत ही महत्त्वपूण कदम था। दजला-घाटी के खगाल-विज्ञानी वहुत वद्धिमान थे। उन्हाने आकाश की वृत्ताकार विशाल पट्टिका को वारह ममान भागा म विभाजित किया जिस आज राशिचक्र कहा जाता ह। राशिचक्र के बारह भागो म मे गजरकर अपना एक चक्कर पूरा करने म सूय को एक वय लगता था। अत सौर वय को भी वारह भागो म वाटा गया और प्रत्येक भाग को एक महीना माना गया।

राशिचक्र के दो तारामडलो के मध्य की दूरी पार करने मे सूय को जितना समय लगता था, उतने समय मे चद्रमा अपनी लगभग सभी कलाए पूरी कर लेता था। समय की इन्ही दोना अवधियो को माम या महीने का नाम दिया गया। सूय और चद्र के समय को 12 समान भागा म बाटकर 12 महीना के 360 दिन निर्धारित हो गए। इस तरह का महीना 30 दिन का बना।

लेकिन कुछ समय बाद ही खगोलशास्त्रिया का यह मालूम हो गया कि 360 दिनो का वर्ष कुछ छोटा रह गया ह, क्योकि मूय का चक्कर 360 दिना मे पूरा नही हो पाता था। प्रति वर्ष 5 दिनो का अतर रह जाता था। यह अतर छह वर्षो म पूरे एक महीने के बराबर हो जाता था। इस अतर को पूरा करने के लिए हर छठे वर्ष एक महीना साल मे अतिरिक्त जोड दिया जाता था। इस तरह पाच वर्ष के बाद हर छठा वर्ष तेरह महीने का होता था।

उसके बाद कुछ महीने 31 दिन के ओर कुछ तीम दिन के रखकर 5 दिनो को महीनो म जोडकर खपाया गया। इस प्रकार वर्ष 365 दिन का हो गया, परतु फिर भी कुछ अशुद्धि रह ही गयी। बाद के परीक्षणो से पता चला कि पृथ्वी को सूर्य की पूरी परिक्रमा करने मे 365¼ दिन लगते हैं। इस तरह 4 वर्ष मे एक दिन का अतर आ जाता है। इस अतर को मिटाने के लिए चौथे वर्ष मे एक दिन को कम दिना वाले महीने फरवरी मे जोडकर इस कमी को भी दूर कर लिया गया। इस तरह चौथे वर्ष का फरवरी माह 28 दिन के बजाए 29 दिन का होने लगा। इसे 'लीप वर्ष' कहा गया।

बेबीलोन के खण्डहरों मे प्राप्त एक प्राचीन कैलेण्डर

जूलियन कैलेण्डर

इस कैलेण्डर का विकास रोम के जूलियस सीजर के नाम पर ईसा से 46 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। उन्होने इस कार्य के लिए यूनान के सोसीजन खगोलशास्त्री की मदद ली। इस कैलेण्डर मे सात महीने 31 और चार महीने 30 दिन के रखे गए। 31 दिन के महीनो मे जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, अक्तूबर तथा दिसम्बर थ और 30 दिन के महीनो मे अप्रैल, जून, सितम्बर और नवम्बर थे। फरवरी 28 दिन का रखा गया। जिसमे लीप वर्ष मे एक दिन जोडने की व्यवस्था

रखी गयी। सीजर ने अपने कैलेण्डर को काफी सुधरा हुआ रूप दिया परंतु फिर भी इसमें समय की कुछ त्रुटि थी क्योंकि सौर वर्ष का जब ठीक ठीक नापा गया तो वह 365 दिन 5 घंटे 48 मिनट 46 सेकण्ड का निकला। जूलियन कैलेण्डर वास्तविक सौर वर्ष से 11 मिनट 14 सेकण्ड लम्बा था इससे 128 वर्ष में एक दिन बढ़ जाता था।

क्रिश्चियन कैलेण्डर

क्रिश्चियन कैलेण्डर का बुनियादी आधार रोमन कैलेण्डर है। इसका प्रादुर्भाव लगभग 800 वर्ष ईसवी पूर्व का माना जाता है। इसकी नींव रोमुलस ने डाली थी। आरम्भ में रोमन कैलेण्डर में 304 दिन तथा दस महीने हुआ करते थे। इन महीनों के नाम थे-मार्टियस एप्रिलिस, माइअस, यूनिअस, क्विण्टलिस, सेक्स-टिलिस, सेप्टेम्बर, आक्टोबर, नवम्बर तथा डिसम्बर। मार्टियस यानी मार्च से इसकी शुरुआत होती थी। इन महीनों में 5 मास 31 दिनों के चार मास 30 दिन के तथा एक मास 29 दिन का होता था।

लगभग 700 ईस्वी पूर्व कैलेण्डर में न्यूमा पाम्पिलिअस ने जैनारियस और फेब्रुअरियस नाम के दो महीने और जोड़ दिए। इस प्रकार पूरा वर्ष 12 महीने का हो गया और इसमें 355 दिन हो गए। 44 ईस्वी पूर्व जूलियस सीजर के नाम पर सातवें माह का नाम जूलियस रख दिया गया जो बाद में जुलाई कहलाया। इसी प्रकार सम्राट आगस्टस ने आठवें मास को 31 दिन का बनाकर अपना नाम दे दिया जो अगस्त कहलाया।

ईस्वी सन की गणना ईसा के जन्म से तीन वर्ष बाद से की जाती है। छठी शताब्दी में डायानीसियस ने इसमें कुछ सुधार किए लेकिन फिर भी प्रति वर्ष समय में काफी फर्क आता रहा।

सन 1580 तक जूलियन कैलेण्डर वर्ष में 10 दिन आगे था। पोप ग्रेगरी ने अक्टूबर सन 1582 में इस कैलेण्डर में 10 दिन कम कर दिए। उन्होंने लीप वर्ष में फरवरी को 29 दिन का माना। इस प्रकार ग्रेगरी ने बहुत वर्षों में पड़ने वाले बहुत बड़े अंतर को काफी कम कर दिया। इसमें अब एक वर्ष में केवल 26.3 सेकण्ड की त्रुटि होती है। आजकल इसे लोग ग्रेगरी कैलेण्डर के नाम से जानते हैं और संसार के लगभग सभी देश इस कैलेण्डर का उपयोग करते हैं।

प्राचीन रोमन कैलेण्डर

मुस्लिम कैलेण्डर

मुस्लिम कैलेण्डर का जन्म कुरान की आयत से हुआ। इसका आधार चद्र की गति था। इसमे सूर्य पर ध्यान नही दिया गया। इसी कारण इसके दिन आर ऋतुए सरकती रहती हैं। जो उत्सव त्योहार सर्दियो मे आते हैं, कुछ वर्षो बाद वे गर्मियो मे आ जाते हैं।

हिजरी सवत् 622 ईसवी से प्रचलित हुआ। जिस दिन हजरत मोहम्मद मक्का छोडकर मदीना के लिए रवाना हुए, उसी दिन स इसे आरम्भ माना गया। हिजरी का अर्थ एक देश छोडकर दूसरे देश जाना ह। खलीफा प्रथम उमर ने हिजरी सवत् का काफी प्रचार किया। कुरान से निश्चित कर मोहर्रम के पहले दिन यानी 16 जुलाई 622 ईसवी से इसका प्रारम्भ माना गया। इसमे 30 तथा 29 दिनो के बारह चद्र मास माने गए। जुल-हिज्जा को कभी-कभी 30 दिन का मान लिया जाता है। इस प्रकार वर्ष मे 355 दिन माने जात हैं। हिजरी कैलेण्डर मे मोहर्रम 30 दिन, सफर 29 दिन, रबी प्रथम 29 दिन, रबी द्वितीय 29 दिन, जमादी प्रथम 30 दिन, जमादी द्वितीय 29 दिन, रजब 30 दिन, शअबान 29 दिन, रमजान 30 दिन, शव्वाल 29 दिन, जुल-कअदा 30 दिन और जुल-हिज्जा 29 दिन। रमजान का नवा महीना उपवास का होता है। हिजरी सवत (मोहम्मदी सवत्) भारत, सऊदी अरब, जोडन, यमन, फारस, मोरक्को आदि देशो मे प्रचलित है।

हिब्रू कैलेण्डर

अमरीका मे भी एक धार्मिक कैलेण्डर प्रचलित हे। इसे हिब्रू (*Hebrew*) कैलेण्डर कहते हैं। यह ईसा पूर्व 3760 वष से तीन महीने पहले से आरम्भ होता है। अत-हिब्रू केलेण्डर का वर्ष प्रचलित वर्ष मे 3760 वर्ष जाडने से प्राप्त होता है।

भारतीय कैलेण्डर

भारत मे लगभग तीस प्रकार के कैलेण्डर समय-समय पर प्रचलित रहे हैं, जो चद्र-सूर्य और ताराओ तथा धामिक सिद्धातो पर आधारित रहे हैं।

भारत मे कई हिन्दू सवत् प्रचलित रहे हैं, जैसे सतयुग मे ब्रह्म सवत्, त्रेतायुग मे वामन सवत्, राम सवत् और परशुराम सवत्, द्वापर युग मे युधिष्ठिर सवत् और कलियुग मे विक्रम सवत्।

सवतो के प्रादुर्भाव का सबध विशेषत किसी महापुरुष की मत्यु अथवा किसी ऐतिहासिक घटना से जुडा रहा।

भारत मे आजकल तीन कैलेण्डर प्रचलित हैं-ग्रेगरी, शक सवत् ओर विक्रम सवत्।

'कालककार्यकाण्ठक' नामक जैन ग्रथ मे उल्लेख है कि जब विक्रम ने शका पर विजय प्राप्त की तो इस खुशी के मोके पर विक्रम सवत् (58 ई पू) प्ररम्भ किया गया। उत्तर भारत मे यह चैत्र मास की पूर्णिमा से आरम्भ होता है। दक्षिण भारत और गुजरात क्षेत्र मे यह कार्तिक से तथा कुछ क्षेत्रो मे आषाढ़ से आरम्भ होता है।

विक्रम सवत् मे 57 वर्ष घटाने पर ईसवी सवत् निकल आता है। इसी प्रकार ईसवी सन् मे से 78 वर्ष कम करने पर शक (शालिवाहन)सवत् निकल आता हे।

शक सवत् का उल्लेख भारतीय शिलालेखो ओर अभिलेखो मे मिलता है। इसके स्थापकों मे कनिष्क, शालिवाहन आदि के नाम लिए जाते हैं। इडोनेशिया और इडोचीन मे प्राप्त सस्कृत अभिलेखो मे भी शक सवत् का उल्लेख हे। इसका आरम्भ 78 ईसवी मे हुआ।

शक सवत् बसत ऋतु विषुव के अगले दिन से सामान्य वर्ष मे 22 मार्च से और लीप वर्ष मे 21 मार्च से आरम्भ होता है। इसके आश्विन, कार्तिक, अगहन, पोष माघ और फाल्गुन महीने 30 दिन के तथा बेशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण और भाद्र महीने 31 दिन के हात ह। पहला महीना चैत्र सामान्य वर्षो मे 30 दिन का आर लीप वर्ष मे 31 दिन का होता है।

चीनी कैलेण्डर

चीन मे भी दो प्रकार के केलेण्डर प्रयाग मे लाए जाते हैं, एक चीनी केलेण्डर जो इसा से 2397 वर्ष पूव आरम्भ हुआ था, उसे इस्तेमाल किया जाता है, और दूसरा ग्रगरी कैलेण्डर।

घडी का आविष्कार

जहा तक समय बताने वाले उपकरण का आविष्कार का प्रश्न है, उसका आविष्कार किसी वैज्ञानिक न नही किया। यूरोप की औद्योगिक क्रांति न घडी क रूप म, निर्माण मे परिवतन अवश्य किया था लकिन उसका आविष्कार बहुत पहल ही हो चुका था।

विश्व का सबस पहली घडी सभवत सेट आर्गास्टिन की पुस्तक घडी थी। आर्गस्टिन अपनी इस प्रार्थना पुस्तक के कुछ निश्चित पृष्ठ, निश्चित समय म पढ़ लेते थ और उसके बाद गिरजाघर का घटा बजा देते थे। इस प्रकार वे पुस्तक का उपयोग घडी के रूप मे करते थे। लेकिन एक दिन वे पढ़ते-पढ़ते थककर ऐसे सोये कि सुबह का घटा बजा न सक और सारा नगर सोता रहा।

तब लोगो का ध्यान सूरज की तरफ गया। लोगो न सूरज क उदय होने, अस्त होने और फिर निकलन क समय को चौबीस भागो म विभाजित किया फिर सूरज की परछाई की लम्बाई को माप कर सूर्य-घडी बनान का प्रयास किया। यूनानियो ने सूर्य के आधार पर जो घडी बनायी उसम सूईया नही थी।अको पर सूर्य की छाया घडी के केन्द्र मे लगे एक स्तम्भ के माध्यम स पडती थी।
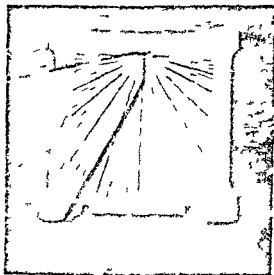
प्राचीन सूर्य घडी

ईसा मे लगभग 300 वर्ष पूर्व बेबीलोन म अर्ध गोलाकार सूर्य-घडी का निर्माण किया गया। इसका निर्माण बरासस नामक एक ज्योतिषी न किया था।

इसके बाद रात म समय की जानकारी प्राप्त करन के लिए चद्रमा को आधार बनाकर चद्र-घडी का आविष्कार किया गया। आज भी आधुनिक घडियो का

जल घडी

मोमबत्ती घडी

दीप घडी

रेत घडी

पडलम घडी
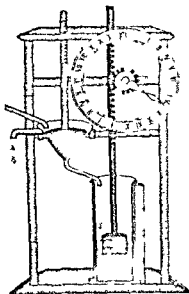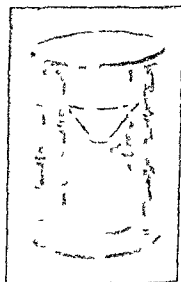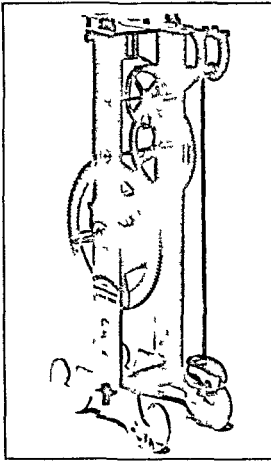
समय ठीक करन के लिए सूय और चद्र का ही सहारा लिया जाता है।

समय की जानकारी पाने के लिए तीसरा साधन पानी वना। जल-घडी का आविष्कार भी सबसे पहले वेवीलोन म ही हुआ। एक बडे से वर्तन के पानी को चावीम भागो मे बाट कर तथा वर्तन मे चावीस चिन्हो को अंकित किया गया। वतन के नीचे छोटा छेद किया गया, जिसमे से पानी बूद-बूद कर टपकता था और एक घटे क चिन्ह पर आते ही उतने समय का घटा वजाकर समय की सूचना द दी जाती थी। लगभग 1150 वर्ष पहल बगदाद क प्रसिद्ध मम्राट हारन अल रशीद द्वारा महान सम्राट शार्लेमेन को एक जल-घडी भेट मे दी गयी थी। जल-घडियो का उपयोग हर जगह पर किया जा सकता था। जबकि सूर्य और चद्र-घडिया बादलो के छा जाने पर बेकार हो जाती थी। जल-घडी के समान ही दूध-घडी का भी कुछ समय तक प्रचलन रहा।

उसके वाद रेत-घडी का आविष्कार हुआ। एक चिन्हित वतन मे रेत भरकर रखी जाती थी। यह वर्तन शकु-आकार का होता था। इसक नीचे एक छेद से धीरे-धीरे रेत निकलता रहता था।

उसके वाद अग्नि-घडी का आविष्कार हुआ। अग्नि-घडी के रूप मे दीपक ओर मोमवत्ती का प्रयोग किया जाता था। इन घडियो का यूरोप मे जल-घडियो म ज्यादा प्रयोग होता था। चीन मे अब भी कुछ स्थाना पर अग्नि-घडी का इस्तेमाल होता है।

आज मे लगभग 2000 वष पहले रोम के एक प्रमिद्ध घडी-साज केसीवायस ने स्वय चलने वाली घडी का निमाण किया था। वह जल-घडी निर्माता था। उसने विद्युत आर भाप के अभाव मे अपनी घडी के सचालन के लिए पानी ओर हवा का प्रयाग किया। इस घडी मे सूइ क स्थान पर एक छोटी छडी लगी थी, जिसे एक लडका पकडे हुए दिखाया गया था। उसने इस घडी के कल-पुर्जे वडे परिश्रम से बनाए थे।

यूराप मे सवसे पहले सम्राट एडवड प्रथम ने लदन के समद-भवन पर घडी लगाने का आदेश दिया। इस घडी का नाम था-'विग टॉप'। अपने किस्म की यह विश्व की सबसे वडी कल-पुर्जो वाली घडी मानी जाती थी। इस घडी ने लगभग चार सा वर्षो तक लदनवासियो को समय से अवगत कराया। उसके बाद इस घडी की जगह
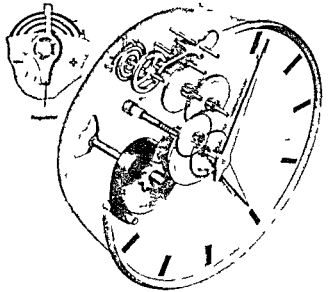
एक दूसरी घडी लगायी गयी, जिसका नाम 'बिगबैन था। यह आज भी लगी हुई है।

शुरुआत की मकेनिकल घडिया म केवल घट वाली सूइ हुआ करती थी। मिनट और सकण्ड वाली सइया नही होती थी।

करीब 500 वष पहल छोटी घडिया का निमाण शुरू हुआ ओर केवल 200 वष पहल की बनी घडिया ही इस काबिल हा सकी कि मिनट और सेकण्डा का सही समय बता सक।

500 वष पहले जो पहली वाच घडी बनायी गयी उसमे भार क स्थान पर मैन स्प्रिग का पहली बार इस्तेमाल किया गया। इससे पहल सूई घुमान क लिए भार पडुलम का उपयाग किया जाता था। इसी कारण छाटी घडियो का बनाना भी असभव जान पडता था।

न्यूरम्बर्ग मे अडे के आकार की घडिया का निर्माण हुआ जा 'न्यूरेम्बर्ग क अड' क नाम से मशहूर हुई, परतु ये घडिया ठीक समय बताने म असफल सिद्ध हुई। अन्य कई जगहा पर बहुत अच्छे किस्म की घडिया बनन लगी। फूल, तितली, क्रॉस, गोलाकार, तिकोनी आदि जाने कितने आकार प्रकार की घडिया बनने लगी।

सन् 1500 म एक जर्मन पीटर हेनलीन नामक ताला बनाने वाले ने इस्पात की पत्ती की स्प्रिग का उपयोग कर छाटी घडी बनाने मे सफलता प्राप्त की। भार के स्थान पर स्प्रिग के उपयोग से घडी का भार और आकार बहत घट गया।
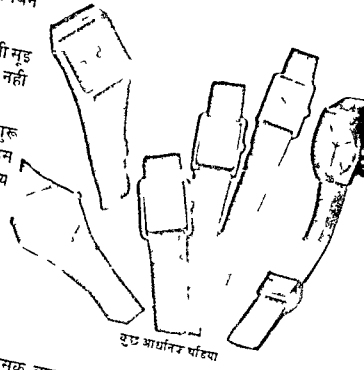
कुछ आधुनिक घडिया

इसक बाद 1658 क लगभग हालैंड क एक महान वैज्ञानिक क्रिश्चियन हाइजिस न एव पैंडुलम का उपयाग करत हुए यांत्रिक घडी बनायी। यह लालक भार-चालित न हाकर स्प्रिग-चालित था।

इसी प्रकार धीर-धीर अच्छे किस्म क स्प्रिग बनन लग। कलाई घडिया के लिए चपट सतुलन पहिए (बैलस व्हील) से चालित कश-स्प्रिगा न ले लिया। इस प्रकार कलाइ घडिया का विकास हुआ।

आजकल एक स एक बढ़िया घडिया बनने लगी हैं। इलेक्ट्रानिक घडिया म यांत्रिक घडिया की तरह समय म परिवर्तन नही हाता। व एक छाटे स बटननुमा सल स वर्ष भर तक निर्दोष समय दता है। अब घड़िया म तारीख और वार जानन की भी व्यवस्था है।

विद्युत घडिया का भी आविष्कार हुआ। इन घडिया म विद्युत मे उत्पन्न 50 साइकल प्रति सेकण्ड की स्थिर आवृत्ति (फ्रिक्वसी) इस्तेमाल की जाती है।

क्वार्ट्ज घडिया अत्यत सही समय देती हैं। इनका इस्तेमाल वैज्ञानिक प्रयोगशाला, रलवे-स्टेशन अस्पतालो आदि स्थाना पर अधिकतर किया जाता है जहा समय की परिशुद्धता का विशष महत्त्व है। क्वार्ट्ज जैसे क्रिस्टला म यह विशेषता हाती है कि जब इन्हे किसी इलेक्ट्रानिक परिपथ म रखा जाता हे, तो ये रेडियो फ्रिक्वेसी से उत्तेजित किए जाते है और एक-सी
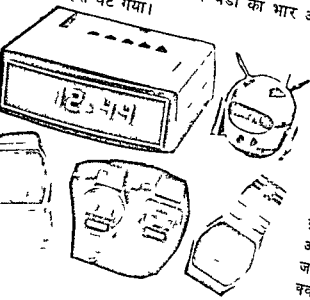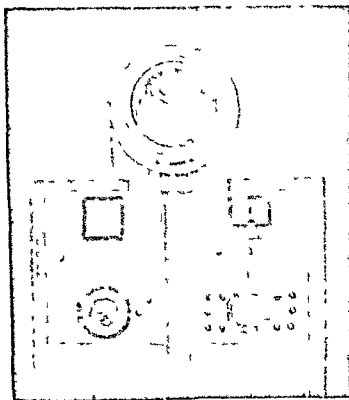
परमाणु घडी

विश्वसनीय गति से कम्पित होते हैं, परतु काफी पुराने पड जाने पर क्वार्ट्ज की परिशुद्धता मे भी कमी आ जाती थी।

अत वेज्ञानिका का ध्यान अणुओं आर परमाणुओ की ओर गया ओर समय की परिशुद्धता के लिए इन पर परीक्षण शुरू हो गए।

परिणामस्वरूप 1949 म पहली परमाणु घडी का निर्माण हुआ। इस घडी मे अमोनिया के अणु का इस्तेमाल किया गया था। अमानिया के एक अणु के नाइटोजन परमाणु एक निश्चित दूरी के बीच प्रति सेकण्ड 2 387 बार कम्पित होते हैं। इस प्रकार नाइट्रोजन परमाणु अतिविश्वसनीय गति वाला लोलक माना जाता है। यह अपने दाए-बाए कम्पनो द्वारा ऊर्जा भेजता हे, जो क्वाट्ज-क्रिस्टल की ऊर्जा की तरह एक विद्युत-घडी मे भेजी जाती है। इस प्रकार यह पाया गया है कि अमोनिया परमाणु घडी 15 वप मे केवल एक सकिण्ड का अतर देती है।

अन्य प्रकार की परमाणु-घडियो मे सीजियम का गमीय रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। यह घडी अमोनिया घडी से अधिक परिशुद्ध होती हे।

समय नापने की विद्या म एक अन्य नया आविष्कार है-रेडियो कार्बन घडी। प्राचीन काल की वस्तुओ का काल निश्चय करने के लिए इस प्रणाली म नाभिकीय भौतिकी के सिद्धातो का उपयोग किया जाता हे। इस घडी की चालक ऊर्जा उस कार्बन-14 से प्राप्त होती हे, जो हजारो साल पूव पृथ्वी के वायु मडल मे से गुजरती अतरिक्ष किरणो द्वारा निर्मित किया गया था।

जब पृथ्वी पर आने वाली अतरिक्ष किरणे वायुमडल के ऊपरी परत मे स्थित नाइट्रोजन के परमाणुओ से टकराती हैं तो उनमे से कुछ रेडियोएक्टिव कार्बन-14 मे बदल जाती है। कार्बन-14 वायुमडल की आक्सीजन से सयोग कर कार्बन डाइआक्साइड मे बदल जाती हे। पौधे कार्बन डाइआक्साइड सोखते है। जीव-जतु पौधो को खाते ह। इस प्रकार कार्बन-14 उनके ऊतको मे पहुच जाता है।

पोधे या जीव-जतु के मरने या नष्ट होने के बाद शरीर मे मौजूद कार्बन-14 रेडियोएक्टिव कणो का उत्सर्जन करता रहता है। इसकी शक्ति को गीगरमूलर काउन्टर द्वारा ज्ञात कर लिया जाता हे। समय बीतते जाने पर इसके विकिरण की दर मे भी कमी होती जाती है। इस तरह ताजा कार्बन-14 के साथ इस कमजोर पडते जा रहे विकिरण की तुलना करके पाधे या जीव-जतु की उम्र निश्चित की जाती हे। रेडियो कार्बन घडी से करोडो वर्ष पुरानी वस्तुओ, जीव-जतुओ, पेड-पौधो आदि की उम्र ज्ञात की जा सकती है।

कृत्रिम सुगंध का आविष्कार

कत्रिम सुगध का आविष्कार सभवत सबस पहल भारत म हुआ। प्राचीन भारत म सुगंधित द्रव्या का निर्यात मिस्र बेबीलोन यूनान चीन तिब्बत जापान और इरान आदि देशो म हाता था। प्राचीन काल म ही भारत मे मंदिरो हवनो आदि म धूप चदन से बन सुगंधित पदार्थों के उपयोग की प्रथा रही हे। इसक बाद पारसिया क अग्नि-मंदिरो सूफिया क उपासना-गहो, बर्मा ओर जापान के पगोडा तिब्बत क लामा-मंदिरा आदि मे सुगंधित-द्रव्य जलाने की प्रथा प्रचलित हुइ।
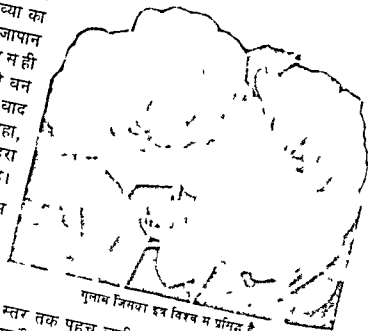
प्राचीन काल से ही भारत का पश्चिमी दशा म व्यावसायिक सबध रहा है। यहा स चदन कशर कस्तूरी अगुरु आदि अनक प्रकार क सुगधित पदाथ अनेक वस्तुओ के साथ बाहर भज जात थ। मिस्र, यूनान बेबीलोन, राम आदि दशा म इन सुगंधिया का उपयोग विलासिता की वस्तुआ के रूप म हाता था।

बेबीलोन ओर असीरिया के लाग बाला म सुगधित तल लगाया करते थे। राम म प्राचीन काल म इत्र क उपयाग का बडा रिवाज था। एथेन्स की शाही दावता म गुलाब अथवा अन्य सुगधित फूला क अर्क स मिश्रित मंदिरा का सेवन हाता था। रोम की इतिहास-प्रसिद्ध सम्राज्ञी क्लियापट्रा को इत्रा का बहुत शोक था।

रोमन साम्राज्य क पतन के बाद इत्रो का उपयोग यूराप के अधकारमय युग मे न जाने कहा विलीन हा गया। यूराप म जाग्रति के युग के आगमन क साथ इत्रा की निर्माण-कला फिर से पश्चिमी देशा मे पहुची। फ्रास तो लगभग पाच सो वर्षों से विभिन्न प्रकार की सुगंधियो के उत्पादन और उपयोग का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बना हुआ है।

भारत मे वैदिक काल मे सुगंधित पदार्थों का अग्नि-कुण्ड मे हवन किया जाता था और इस प्रकार आस-पास क वातावरण की वायु शुद्ध हो जाती थी। रामायण ओर महाभारत काल म नगरीय सभ्यता उच्च स्तर तक पहुच चुकी थी। स्त्रिया विभिन्न प्रकार की सुगंधिया का इस्तमाल शृगार क रूप म करती थी।

गुलाब जिसका इत्र विश्व म प्रसिद्ध है

गुलाब क इत्र का आविष्कार सभवत सबस पहल बादशाह जहागीर की बेगम नूरजहा न किया था। पानी स भरे हाज म तेरत हुए गुलाब क फूला क आसपास एक प्रकार क चिकने तल-पदार्थ का इकट्ठा हात देखकर उसक दिमाग म इसक इत्र का विचार आया था। उसन इस चिकन पदाथ का इकट्ठा किया और पाया कि इस कइ दिना तक सुरक्षित रखकर सुगंधि प्राप्त की जा सकती हे। उसक बाद उसने गुलाब क अर्क का निकालन का आदश दिया आर इस प्रकार गुलाब क इत्र का आविष्कार हुआ।

आजकल इत्र तेयार करन और उसकी सुगध का अधिक मनमाहक बनान की अनेक वेज्ञानिक विधिया ढूढ़ ली गयी हैं।

पहले लोग सुगंधित पौधो क फूल अथवा छाल की रस निकालकर उसे जेतून अथवा अन्य तेला म मिलाकर इत्र बनात थे। मध्ययुग मे अत्तारा का इत्र बनाने क लिए स्पिरिट के उपयोग का पता चला।

गलाब का इत्र बनाने की आधनिक विधि

इत्र बनाना एक बहुत बडी कला है। इत्र बनाने वाले इत्र बनाने की नयी-नयी चीजा की खोज मे रहते हैं और प्रयोग करते रहते हैं। कभी-कभी नये इत्र को तयार करने मे वर्षो लग जाते हैं।

फिलीपाइन के 'यलाल' फूल, जावा की 'वटिवर' जड, अल्जीरिया के 'जेरानियम' फूल, भारत आर अन्य देशा मे पाए जाने वाले गुलाब, चमेली, केशर रजनीगधा, कुमुदिनी, रात-रानी, चम्पा चदन आदि सेकडो चीजे इत्र बनाने के काम म आती हैं।

रासायनिक विश्लेषण से यह पता चला है कि किसी भी फूल अथवा पौधे के तल या अर्क मे विभिन्न सुगंधित तत्त्व लगभग निश्चित मात्रा मे मोजूद रहते हैं। आर अब तो कोलतार क्रूड ऑयल आदि सस्त पदार्थो से भी सुगंधित पदाथ बनाए जाते हैं। रसायनशास्त्रिया ने अनेक ऐसे सण्ट तैयार किए हैं, जिनकी सुगध प्रकृति मे प्राप्त नही ह।

इत्र तैयार करने के आज सबसे अनोखे आधार है—पशुओ के शरीर से निकले हुए पदाथ जिनमे कई तो वड दुर्गंधमय ह, व्हेल मछली से प्राप्त मोम, हरिण के शरीर से प्राप्त कस्तूरी, चूहे, बिल्ली आदि के ग्लेड (ग्रथिया)।

अमेरिका के न्यूजर्सी नगर मे 15 मिनट मे लगभग 60 गलन इत्र तेयार हाता ह। वहा की इत्र की फैक्टरियो मे कालतार पाइप ओक वृक्ष का तेल, लोंग, जायफल, सुगंधित घास, एसिड स्पिरिट तथा तारपीन के तेल आदि का इस्तेमाल किया जाता है।

गलाब का तेल एक बहुमूल्य सुगंधित पदाथ ह, जा आसवन सयत्र स निकाला जाता है। इसका उत्पादन बुलगरिया, रूस, टर्की, मोरक्को आर भारत मे कन्नौज, अलीगढ़ आर गाजीपुर मे किया जाता है।

भारत म इसे अब तक पुरानी विधि से ही निकाला जाता था, परन्तु लखनऊ की राष्ट्रीय प्रयोगशाला केन्द्रीय औषधीय और सुगध पोधा सस्थान ने आधुनिक और कारगर विधि ढूढ निकाली है और एक आसवन सयत्र तैयार किया ह। इसम बढ़िया किस्म का शुद्ध गुलाब का तेल तैयार किया जाता है। गुलाब का तेल सौंदय-प्रसाधना और चिकित्सा म भी प्रयुक्त किया जाता है।

कांच का आविष्कार

काच का प्रयोग मनुष्य प्राचीन काल म ही करता आ रहा है। अत यह कहना असभव है कि काच का आविष्कार सबसे पहल किसने और कब किया। मिस्र और बेबीलोन म काच से बनी कुछ ऐसी वस्तुए प्राप्त हुई हैं, जो लगभग 5000 वर्ष पुरानी है। इससे यह अदाजा लगाया जा सकता है कि काच का उपयाग प्रागैतिहासिक काल का मनष्य भी किसी न किसी रूप म करता रहा था। चीन, मेसोपाटामिया आर मिस्र म काच-निमाण की कला प्राचीन काल स चली आ रही है।

ई सन की पहली शताब्दी के एक रोमन इतिहासकार प्लिनी न वर्णन किया है कि बहुत पहले एक फोएनिशियन व्यापारी क्रुड साडा ला रहा था। एक रात के लिए वह बालू-तट पर रुक गया। खाना बनान क लिए उस बतन रखने क लिए उचित आधार नही मिन रहा था। उसने अपने जहाज के क्रुड साडा की इटे मगवाकर बर्तन को उस पर रखकर नीच से आग जलायी। आग के ताप से साडा गलकर बालू के साथ मिल गया। उसने देखा कि साडा और बाल क मिलन म काच बन गया। इस प्रकार काच ने जन्म लिया।

फरनी पर गला काच एकत्र करना

काच का यह आविष्कार आकस्मिक घटनावश हुआ, यद्यपि काच के आविष्कार की इस घटना का कोई ठास आधार नही है क्योंकि काच-निर्माण के लिए सिलिका (Sand), सोडियम ऑक्साइड (जो सोडियम कार्बोनेट म प्राप्त होता है) और कैल्शियम ऑक्साइड (जो कैल्शियम कार्बोनेट अथवा लाइमस्टोन से प्राप्त हाता है) क विशष अनुपात की आवश्यकता होती है। परतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उपर्युक्त घटनावश जो काच निर्मित हुआ, वह काच का प्रारम्भिक रूप था और वर्तमान काच से भिन्न था।

रोमन साम्राज्य के विकास काल म काच क बर्तन बनान का उद्योग स्थापित हो चुका था। राम क सभ्रात परिवारो मे काच के सुदर आकार वाले बतनो का उपयोग सामान्य रूप स होन लगा था। मध्यकाल म वनिस नगर काच उद्याग का प्रमुख कद्र बन चुका था।
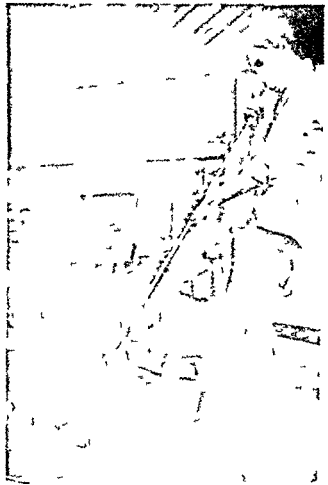
उन्नीसवी शताब्दी म काच बनान की प्रक्रिया म कुछ परिवर्तन हुए। अनेक वैज्ञानिक प्रयोगो क फलस्वरूप काच क अनेक प्रकारो का विकास हुआ। काच-निमाण कला और विभिन्न प्रकार के काच तैयार करन मे जमनी न उल्लेखनीय प्रगति की। ऑप्टीकल काच क उद्योग मे महत्त्वपूर्ण परिवतन हुए। जमनी के दा शोधकर्ताओ न नवीन काच तैयार करन म विशष सफलता प्राप्त की।
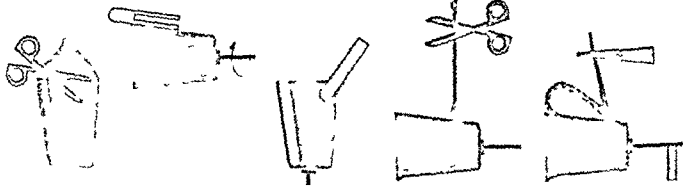
फालतू काच काटकर निकालना — अंतिम आकार देना — हैंडिल फिट करना

विश्व का अब तक का सबसे पतला काच 0 3 मि मी का बना है। इसे जापान की निप्पॅन ग्लास कार्पोरेशन न बनाया है।

काच के निर्माण मे सामान्य तौर पर सिलिका, सोडियम कार्बोनेट और केल्शियम कार्बोनेट का एक विशेष अनुपात म मिश्रण बनाया जाता है। इस मिश्रण का अच्छी तरह पीस कर ऊच तापमान वाली भट्टिया मे डाला जाता है। मिश्रण पिघलकर काच-द्रव मे बदल जाता है। इस काच को छडो और चादरो के रूप म ढाल लिया जाता है। इन छडो और चादरा मे काच की अनेक वस्तुए पुन पिघलाकर साचो म ढालकर बना ली जाती है।

काच को रगीन बनान क लिए इसक सामान्य मिश्रण म ताबा, लोहा, क्रोमियम, कोबाल्ट, सलेनियम आदि पदार्थो क आक्साइड मिलाए जाते है। इन पदार्थो म भिन्न-भिन्न रगो का काच बनाया गया है,जैसे-क्रोमियम या ताबा मिलान मे हरे रग का काच बनता है, कोबाल्ट क आक्साइड स नीले रग का काच बनता है।

काच का प्रयोग आज ससार मे विभिन्न प्रकार के बतन तथा प्रयोगशाला उपकरण बनाने म हो रहा है। इससे बहुत से प्रकाश स्रोत भी बनाए जाते हैं। काच का प्रयोग अतरिक्ष यानो तथा दूसरे वाहनो की खिडकी बनाने म भी हो रहा है। शायद ही जीवन का कोइ एसा क्षेत्र होगा, जहा काच का प्रयोग न हो रहा हो।

प्रेशर कुकर का आविष्कार
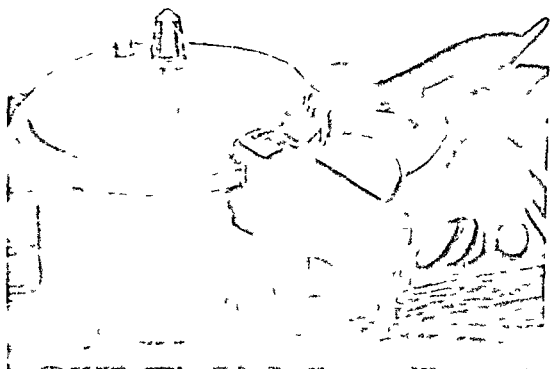
आधुनिक प्रेशर कुकर

प्रेशर कुकर का आविष्कार सन 1672 म फ्रास क डेनिस पेपिन नामक युवक ने किया था। जब डेनिस पेपिन इग्लैंड आए तो उन्हे प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर-रॉबर्ट बॉयल न अपन यहा सहायक के रूप मे रख लिया। पेपिन बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थ। उन्होने और भी कई आविष्कार किए।

एक दिन प्रयोग करते समय पेपिन के मस्तिष्क म विचार आया कि यदि पानी पर दाब बढाया जाए तो उसका क्वथनाक (Boiling Point) बढना चाहिए। उन्होने थोडा-सा पानी एक विशेष वातरुद्ध बतन मे लेकर उबाला। भाप रुकने से पानी का दबाव बढता गया। पेपिन ने देखा कि ऐसे बतन मे पानी को 100^0 स ग्रेड से अधिक तापमान पर उबाला जा सकेगा। इस प्रकार पानी के सामान्य क्वथनाक से अधिक तापमान पर खाद्य पदाथ पकाने से वे बहुत ही कम समय म अच्छी तरह पक जाएगे। इस प्रकार-वायु का दबाव बढने क साथ ही क्वथनाक भी बढता ह। इसी गुण का प्रेशर कुकर-मे इस्तेमाल म लाया गया।

एक ऐसे बतन म भाप रोकना बहुत ही खतरनाक था, जिसमे भाप की कही म भी निकासी न रहे। ऐसे बतन के भाप की शक्ति से धमाके क साथ टुकडे-टुकडे हो सकते थे। अत पेपिन ने बर्तन मे सुरक्षा वाल्व की युक्ति का उपयोग किया, ताकि अधिक दबाव की स्थिति मे भाप सुरक्षा-वाल्व से बाहर निकल सके। सुरक्षा वाल्व की जानकारी भी तब तक किसी को नही थी। पेपिन ने ही इसका उपयोग पहली बार किया था। इस वाल्व की व्यवस्था से बतन की भाप खतरे की स्थिति पर पहुचने स पहले ही बिना हानि पहुचाए बाहर निकल जाती थी।

डेनिस पेपिन ने अपन प्रेशर कुकर का नाम 'डाइजस्टर' (पचान वाला) रखा। इसका कारण यह था कि बर्तन म कड स क्डा माम या अन्य कडे खाद्य पदार्थ पकाने पर अल्प समय मे ही मलायम हा जाते थे। उच्च दाब पर भाप द्वारा पकने पर खाद्य पदार्थो क स्वाद और गुणा म कोई परिवतन नही होता था। इसक साथ ही समय और ईंधन भी कम लगता था।

आज तो बाजार मे विविध आकार प्रकार के प्रेशर कुकर उपलब्ध हैं जिनस थाडे ही समय मे भोजन पक जाता है।

ऊपर से दिखने मे प्रेशर कुकर एक सामान्य बतन की तरह ही दिखायी देता है। इसके ढक्कन वाल भाग मे अदर की ओर एक रबर का गास्केट (छल्ला) लगा हाता है। ढक्कन लगाने पर यह गास्केट बतन के किनारे पर अच्छी तरह बैठ जाता है और किनारे से भाप बाहर निकल नहीं पाती। ढक्कन के बीच मे एक छेद होता हे, जिसमे एक भारी कीलनुमा दाब-नियत्रक लगा रहता हे। इसी मे से भाप बनने पर सीटी की सी आवाज निकलती है, जिससे पता लग जाता है कि भाप बन गयी हे साथ ही खाद्य पदार्थ भी पक गया हे। ढक्कन के ऊपर एक ओर रबर का एक वाल्व भी लगा होता हे, जो अधिक भाप बन जाने पर खुल जाता है।
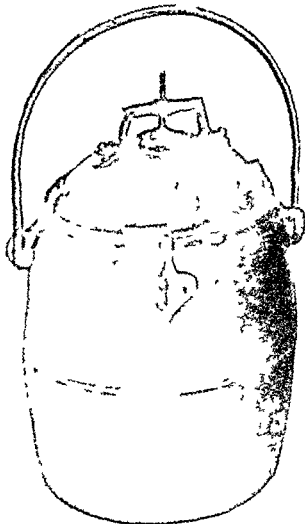
आरंभिक प्रेशर कुकर

कृत्रिम विद्युत

कृत्रिम तरीका से विद्यत पैदा करने और उसे अपने कार्यो म प्रयोग करते हुए मानव को अभी 120 वर्ष के लगभग ही हुए हैं। आकाशीय विद्युत का पता लगाने का कार्य सबसे पहले बेजामिन फ्रेकलिन न किया था। उन्होने तज वर्षा के समय पतग उडाकर और उसकी डोर मे धातु की चाबी बाध कर पहली बार विद्युत की शक्ति का अनुभव किया था।

लेकिन ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व से ही यूनान के लोगो को विद्युत के विषय मे पता था। वास्तव में इलेक्ट्रिसिटी शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के इलेक्ट्रोन शब्द से ही हुई हे। उन्हे ज्ञात था कि यदि एक अम्बर के टुकडे को समूर से रगडा जाए ता उसमे हल्के-फुल्के तिनको और कागज के टुकडा को उठाने की शक्ति आ जाती है।

लगभग 170 साल पहले इटली के एक वैज्ञानिक वोल्टा न विद्युत धारा पैदा करने की युक्ति का आविष्कार किया था। उन्होने ताबे की और जस्ते की छड को गधक के हल्के अम्ल मे डुबाकर विश्व की सबसे पहली विद्युत-सेल बनाई थी।

माइकेल फैराडे
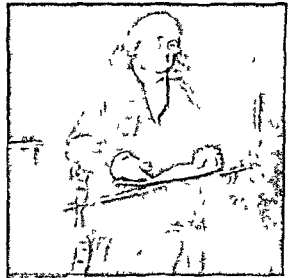
बेजामिन फ्रेंकलिन

इसके बाद ब्रिटेन के माइकेल फैराडे ने सन् 1831 मे विद्युत चुम्बकीय प्रेरणा का आविष्कार करके बिजली उत्पन्न करने वाले एक जेनरेटर का निर्माण किया। विद्युत का वास्तविक रूप मे उपयोग माइकेल फैराडे के इसी आविष्कार के बाद से होना आरम्भ हुआ।

जेनरेटर चुम्बक और तार की कुडलियो से बना होता हे। जेनरेटर मे आमतोर से एक चुम्बक होता है, जिसके ध्रुवो के बीच मे तार की एक कुडली तेजी से घूमती है। इसी से तार की कुडली मे विद्युत उत्पन्न होती हे। जेनरेटर को चलाने के लिए ऊचाई से गिरते पानी या भाप का इस्तेमाल किया जाता हे। वैसे जेनरेटर पेट्रोल या डीजल वाल इजन से भी चलाए जाते है।

पानी से जेनरेटर चलाकर विद्युत उत्पन्न करने के लिए बाधो और झरनो के पास बिजलीघर बनाए जाते हैं। गिरते पानी की धार से बडी-बडी टर्बाइना के पहिए घुमाए जाते हैं। इन पहियो की सहायता से जनरेटर की तारो की कुडली घूमती है, जिसस विद्युत उत्पन्न होती है। विद्युत-उत्पादन के लिए आजकल विशाल जेनरेटर प्रयुक्त होते हैं।
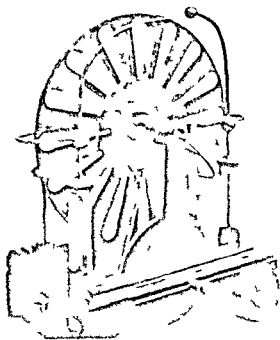
जनरटर

बिजली क्या ह, इस मरल रूप म यो समझा जा मकता ह। विश्व के सभी पदार्थ बहुत ही मूक्ष्म-कणो के बने होत ह। इन कणा को परमाणु कहा जाता ह। परमाणु ओर भी नन्हे नन्हे कणा से मिलकर बना हाता ह। इन्हे इलक्टॉन, न्यट्रॉन, प्रोटॉन आदि कहते ह। इलेक्टॉन एक नाभिक (न्यूक्लियस) क इद-गिर्द कछ निश्चित कक्षाआ म चक्कर लगाते ह। नाभिक प्राटॉन आर न्यूट्रॉन स मिलकर बना हाता हे। न्यूट्रॉन ओर प्रोटॉन ता अपने कद्र मे स्थित रहते ह, परतु चारा ओर घूमन वाले इलेक्टॉनो को जब तेजी स धक्का दिया जाता या ठला जाता ह, तो ये उछलकर एक से दूसरे परमाणु म जा पहुचते ह। विद्युत की उत्पत्ति मे यही क्रिया होती हे। विद्युत-धारा किमी पदाथ म मे दौडते हुए इलेक्ट्रॉनो का ही परिणाम हे। दो पदार्थो की घर्षण क्रिया मे भी यही होता है। एक पदार्थ के इलेक्टॉन रगड स उत्तजित होकर दसर पदाथ म पहुच जाते ह। वास्तव म इलेक्टॉना पर ऋणात्मक आवेश होता हे आर इस आवश की गतिशीलता ही विद्युत-धारा की जननी ह।

विद्युत-धारा को दोडान क लिए ताव के तारा का प्रयाग किया जाता ह, क्योंकि इसम हाकर विद्युत-धाग तेजी से दौडाइ जा सकती है। तावा विद्युत का एक अच्छा सुचालक हे। लकिन मुचालक पदार्थो क साथ कुचालक पदार्थो की भी आवश्यक्ता पडती ह, क्योंकि सुचालक पदाथ बिजली क लिए रास्ता वनात ह ओर कुचालक पदाथ उस इधर-उधर बिखरन म राकत ह। ताव क तार पर एक कुचालक पदाथ की तह चढाइ जाती हे।

विद्युत बिजलीघर म उत्पन्न हाकर तारा द्वारा शहर क कारखानो आर घरो मे पहुचती ह। यहा मशीनो, बल्बा, अगीठियो, रिफ्रिजिरेटरो, रेडियो आदि उपकरणा को चालू करन क लिए हम क्वल बटन दवाने भर की जरूरत पडती हे। विद्युत-धारा स इन्हे शक्ति मिलती ह आर इनके कल-पुर्जे अपना-अपना कार्य शुरू कर दत ह।

विद्युत-धारा का मापन के लिए एम्पियर इकाइ का उपयाग किया जाता है। इमे एमीटर कहत हें। विद्युत-विभवातर को मापने के लिए वाल्ट पमाने का उपयाग किया जाता ह। इस उपकरण को वोल्ट-मीटर कहते ह। विद्युत-व्यय का मापन के लिए वाटमीटर का प्रयोग हाता ह जो यह बताता है कि कितनी विद्युत-शक्ति काम म आई ह।

अमरीका के वैज्ञानिक टॉमस अल्वा एडीसन ने विद्युत बल्ब का आविष्कार कर विश्व के कान-कोने म प्रकाश फला दिया। एडीमन ने विद्युत-शक्ति से चलने वाले अनेक दूसरे यत्रो का भी आविष्कार किया।

जेसा कि ऊपर बताया जा चुका ह कि कृत्रिम विद्युत बनान के लिए बडे-बडे जेनरेटरो का प्रयाग किया जाता हे। डायनमा या जेनरेटरो म एक विशाल चुम्बक की व्यवस्था होती ह। इसक दानो ध्रुवा (नाथ पाल और साउथ पाल) क मध्य ताबे क तारो को लपेट कर बनायी गयी कुडली तेजी स घुमायी जाती ह। कुडली क दोनो छोरो का सम्पर्क धातु के दा छल्ला से हाता हे। प्रत्यक छल्ले का मम्पक कार्बन क ब्रशो से होता हे। कावन ब्रशा स विद्युत-धारा ल जाने वाले तारो का सबध हाता ह। ताबे क तार वाली कुडली जब तेजी से घूमती हे, ता विद्युत चुम्बकीय प्रेरण (Induction) क प्रभाव से विद्युत का उत्पादन हाता हे। यही विद्युत-धारा की महायता से हमारे घरा आर कारखाना तक पहुचती हे।

रिफ्रिजरेटर का आविष्कार

बर्फ के खाद्य-पदार्थो को सडने या खराब होने से बचाने का तरीका चीन के लोग लगभग 3000 वर्षो से जानते थे। सर्दी के दिनो मे जमी हुई बर्फ की सिल्लिया काटकर उन्हे सूखी घास या पुआल की तहो के बीच रख दिया जाता था, ताकि बर्फ जल्दी गल न पाए। फिर उनके ऊपर खाद्य पदार्थ रख दिए जाते थे। इससे बहुत दिनो तक पदार्थ ताजे बने रहत थे।

मध्यकाल मे यूरोप मे खाद्य परिरक्षण के लिए नमक, मसाले आदि का उपयोग किया जाता था। कुछ खाद्य-पदार्थो को सुखाकर भी रखा जाता था। 1500 वर्ष पहले यूरोप तथा अमेरिका के कुछ भागा मे बर्फ की सिल्लियो द्वारा खाद्य-पदार्थो को सुरक्षित रखने का तरीका अपना लिया गया था।

सन् 1800 के आस-पास खाद्य-पदार्थो के परिरक्षण के लिए सामान्य किस्म के आइस बॉक्स का इस्तेमाल होने लगा था। यह लकडी का बॉक्स होता था। इसके अदर जिंक धातु के खाने होते थे। बाहरी ओर के खाने म बर्फ भर दी जाती थी ओर बीच के खाने मे खाद्य-पदार्थ रखे जात थे।

अमोनियम को प्रयोग मे लाकर तापमान गिराने के सिद्धात को सबसे पहले ब्रिटिश वैज्ञानिक माइकेल फैराडे ने सन 1820 मे प्रतिपादित किया। तापमान को गिराने के लिए प्रशीतक के रूप मे अमोनिया पहला पदाथ था।

सन् 1834 म मेसाचुसेट्स के एक वेज्ञानिक जैकब पर्किन्स ने पहले वाष्प-सपीडन (Vapour Compression) रिफ्रिजरेटर का आविष्कार किया, लेकिन यह रिफ्रिजरेटर घरेलू उपयोग के लिए नही था। घरेलू उपयाग के लिए यह उपकरण कुछ वर्षो बाद ही बन पाया, लेकिन सिद्धात दोनो का एक ही थी। सन् 1870 म फैराडे के अमोनिया प्रशीतन सिद्धात के आधार पर पहला घरलू रिफ्रिजरेटर एक स्वीडिश ने तैयार किया।
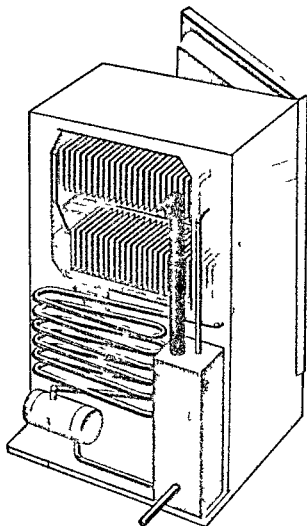
वाष्प सपीडन व्यवस्था वाला रिफिजरेटर

लगभग इसी समय अमेरिका मे भी वाष्प-सपीडन सिद्धात पर घरेलू रिफ्रिजरेटर का निर्माण किया गया, लेकिन ये बहुत ही महगे थे। इसके बाद 1950 के आस-पास ही सस्ते रिफ्रिजरेटर बनाए जा सके, जिन्हे लोग खरीद सकते थे।

रिफ्रिजरेटर कई प्रकार के होते हैं, लेकिन उन सबका सिद्धात लगभग एक ही है। रिफ्रिजरेटर के दो भाग होत हैं, एक जिसके अदर खाद्य-पदाथ रखे जाते हैं तथा
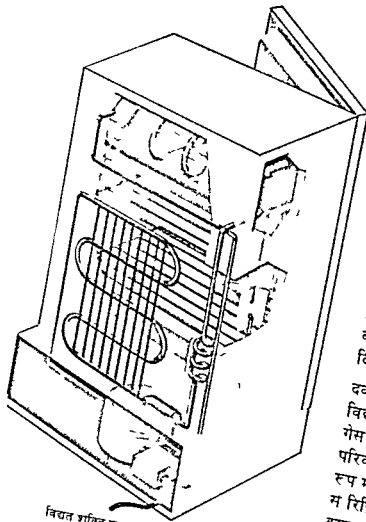
विद्युत शक्ति म चलने वाला रिफ्रिजरटर

दूसरा जिसम अदर की वायु को ठड तापमान पर वनाए रखन की व्यवस्था हाती ह। रिफ्रिजरेटर म जहा खाद्य-पदाथ रखने की व्यवस्था हाती है वहा ठडी वायु ऊपर स प्रवाहित की जाती ह क्याकि हवा ठडी हान पर नीच की आर आती है ओर गर्म हान पर ऊपर की आर उठती हे। ठडी हवा का पूर भाग म समान रूप स प्रवाहित हात रहन क लिए उस ऊपर की आर स भजा जाता है।

घरेलू रिफ्रिजरटर चार किस्म के हात हैं 1 पानी द्वारा ठडा किए जान वाल रिफ्रिजरटर, 2 आइस बॉक्स वाले 3 दवाव द्वारा ठडक उत्पन्न किए जाने वाले और 4 साखकर ठडक पेदा किए जाने वाले रिफ्रिजरटर।

पानी द्वारा ठड किए जान वाल रिफ्रिजरटर म पानी साखन क लिए फलालेन का इस्तमाल किया जाता है। फलालन का कपडा इसम ऊपर स मढ़ा हाता है और खाद्य-पदार्थ अदर रख जात है। फलालन क ऊपर लगातार पानी छिडक्त रहना हाता है, जिसस अदर का तापमान घटता जाता और ठडक लगातार वनी रहती है।

आइस-बॉक्स वाल रिफ्रिजरटर म बॉक्स क चारा किनारा पर खाने हात हे जिनम वफ भरी हाती ह। वीच की खाली जगह म खाद्य अथवा पेय पदाथ रख दिए जात ह।

दवाव म ठडक उत्पन्न करन वाले रिफ्रिजरटर विद्युत-शक्ति म चलाए जात है। इसम किसी विशप गेस का दवाव द्वारा सपीडित करक उम द्रव अवस्था म परिवर्तित किया जाता हे। यह द्रव गैस गर्मी से पुन गैस रूप म वदल जाती हे। इस क्रम के वरावर चलत रहन म रिफ्रिजरटर क अदर की हवा ठडी वनी रहती है। इसम गैस क रूप म फ्रीआन गेस का इस्तमाल किया जाता ह। अन्य पदार्थों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

चौथ प्रकार क रिफ्रिजरटर म गस की लो स अदर रखी अमानिया को गर्म किया जाता है। अमानिया गर्म हाकर ऊपर उठती हे ओर वहा म पम्प हाकर ठडी अवस्था म परिवर्तित हाकर मद तापमान स गुजरकर फिर द्रव क रूप म आगे वहकर हाइडाजन गेस से मिलती ह ओर भाप म वदलकर अपने पूव स्थान पर आ जाती है। अपन पूर्व स्थान पर आने से पहल इसस हाइड्राजन गेस अलग हा जाती ह। यही क्रम दुवारा शुरू हा जाता हे ओर चलता रहता ह ओर तापमान कम वना रहत

• • •

पुस्तकें कैसे मंगायें

पुस्तक वी पी पी पैक्ट द्वारा या पुस्तका की पूरी कीमत (डाकखर्च सहित) पेशगी भेजकर रजिस्ट्री पैकट द्वारा मंगाई जा सकती हैं।

1 3 83 म नई डाकदरा क लागू हा जान से डाकखर्च पस्तका की कीमत का लगभग 25% स 40% तक हा गया है।

17/ रु स 25/- रु तक की कीमत की पस्तका पर यह डाकखर्च असहनीय है जाकि 7/50 रु कम म कम आता है।

1 मार्च 1983 से बढ़े हुए डाकखर्च का असर

	औसत वजन	रजिस्टी चार्ज	वी पी चार्ज	वजन 2/ किलो	कुल
डाकखर्च मिलाकर 10/ तक की कीमन के पैकेट पर	(300 ग्राम)	0-65	1-00	0 60	2 25
डाकखर्च मिलाकर 20/ तक की कीमन के पैकेट पर	(600 ग्राम)	0-65	2-00	1 20	3 85
डाकखर्च मिलाकर 20/ से उपर कीमत क पैकेट पर	(750 ग्राम)	2 75	3-00	1 50	7 25

नोट इसके अतिरिक्त दस नय पैस का वी पी मनीआडर फार्म तथा पैकिंग व अन्य खर्च जाकि लगभग 1/50 प्रति पैकेट आता है प्रकाशक वहन करता है।

उपर्युक्त डाकदरा के अनुसार पुस्तका का वी पी द्वारा मगान पर निम्न डाकव्यय हागा

7/75 तक की पुस्तक पर डाकखर्च 2/25—25% To 30%
7/75 स 16/15 तक की पुस्तका पर 3/85—25% To 55%
16/25 स उपर की पुस्तकों पर 7/25—25% To 40%

(पुस्तक व्यवसाय म 20/ स उपर एक औसतन वी पी पैकेट की रकम 20/ स 30/ के बीच रहती है)

अब चूंकि पूरा डाकखर्च न तो पाठक ही वहन कर सकता है और न ही प्रकाशक—इसलिए हमन डाकखर्च की जो रकम इस सूचीपत्र म दी है वह औसतन आधी है—अर्थात् आधा डाकखर्च हम वहन कर रह हैं।

आर्डर देकर वी पी पी न छुडाने पर सारा डाकव्यय का भार प्रकाशक पर आ पडता है जो कि लिख डाकखर्च स औसतन दुगना हाता है।

उपर्युक्त बाता का ध्यान म रखत हुए अब अधिकतर हमन एडवास रकम मागनी शुरू कर दी है। वी पी पी द्वारा केवल वही आर्डर भज जात हैं जा हम समझते हैं छूट जायग—और अन्य दसर आर्डरा का भजन स पहल एडवास मगान क लिए उन्ह पत्र लिख दिया जाता है।

आपक आर्डर के प्रत्युत्तर म यदि आपस एडवास मागा गया है ता उस फौरन साथ भज गय मनीआर्डर फार्म म भरकर भज देव जिसस पुस्तक जल्द स जल्द भेजी जा सक।

पुस्तकें जल्द मगाने के लिए मनीआर्डर द्वारा एडवास रकम भेजकर रजिस्ट्री पैकेट से मगाइये

वी पी पी द्वारा पुस्तकें मगाने के लिए 25% रकम एडवास भेज।

हमारी प्रकाशित पुस्तक लगभग सभी प्रतिष्ठित पुस्तक विक्रेताआ एव ए एच व्हीलर के रेलवे बक स्टालो पर उपलब्ध हैं—डाक व्यय बचान क लिए आप अपन निकट के बकस्टाल स माग कर अन्यथा कहा मिलगी यह उनसे पूछकर वहा स खरीद ले।

Rs 5/-each
Postage 1/50
Asthma
Cystitis
Migraine
Allergies
On two and more Post free

Read your Hand yourself! Be your own Palmist !!

Practical Palmistry

Yes it is easy now Read Practical Palmistry whose Hindi edition has sold more than 40 000 COPIES

A book created by DR NARAYAN DUTT SHRIMALI a renowned astrologer and wizard of the Science of Other World Unravelling the mysteries of your future

Demy size
Pages 365

Highlights

- Giving you basic understanding of hand lines and their meanings
- Made easy through illustrations & sketches
- Offering you a peep into your personal life When you will marry! How successful will be your married life etc
- Telling you what is in store for you Which profession you will adopt Whether you will become a Doctor or an Engineer a Writer or a Politician When you will tide over your problems When you will be free of debt

PRACTICAL PALMISTRY—AN ANSWER TO HUNDREDS OF SUCH QUERIES

FIRST TIME more than 240 conjunctions telling you what to look forward in love and life **Budh yog** means you'll be rich and successful **Putra yog** guarantees a son **Anfa yog** promises a magnetic personality **Sunfa yog** suggests cleverness and industrious nature **Parvat yog** means you'll make your future your elf **Sash yog** predicts high places for a person of ord nary birth **Malavya yog** forecasts attractive and handsome presonal ty

Also available in Hindi

A NEW BABY

RUSH Be the first one to gift it

Looking for a gift for a new born? A tough choice! With gift shops coming up and market being flooded with them—toys dresses ornaments and what not

But you re looking for SOMETHING SPECIAL SOMETHING UNIQUE something that would go with him forever

Now BABY RECORD ALBUM brings you to the end of this long search A unique two in-one present—everyone or anyone would love to dip into any time

A TREASURE HOUSE OF MEMORIES IN WORDS AND PHOTOGRAPHS FROM THE FIRST DAY WITH YOUR NAME ON THE FIRST PAGE
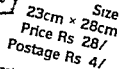
Size 23cm × 28cm
Price Rs 28/
Postage Rs 4/

- Every page full of all-colour lively illustrations with provision for photographs
- Keep a step-by step health record of baby s growth from the first day till he is five • Record details about teething when he first sat crawled and walked • Fill in the vaccination table • Record Date of birth weight & height at birth • Horoscope page
- Store memories of fun and games on his first five birthdays who came and brought what • Inventories of gifts significant National and International happenings on the birth • Naughty and stubborn actions
- Record details of Mundan and Naming ceremony • First festivals and so on
- A separate page each for mother and maternal grand mother
- Fill in the full spread of the family tree—maternal & paternal
- Fully illustrated month to-month growth chart for first 12 months • Teething chart Compare and see how your baby fares • Learn from vaccination table which vaccination to give and when

AND ABOVE ALL A BONUS OF BLANK PAGES TO AFFIX HUNDREDS OF PHOTOGRAPHS !

LEARN SPOKEN HINDI

Through Your Mother Tongue

The formula is

RAPIDEX
LANGUAGE LEARNING SERIES

About 25 double crown pages in each course

A 14 VOLUME series teaching you seven regional languages through Hindi & vice versa

Books of the series

Hindi Through Regional Language

- Bangla Hindi learning course
- Gujrati Hindi learning course
- Malayalam Hindi learning course
- Tamil Hindi learning course
- Kannada Hindi learning course
- Telugu Hindi learning course
- Marathi Hindi learning course

Each Course Contains

- 2500 sentences enabling you to converse in Hindi about day to day affairs
- 600 expressions of daily use
- Pronunciation of Hindi text in your own language
- Obvious differences & resemblances between your language and Hindi are explained properly

A novel concept to have working knowledge of Hindi through your Mother Tongue in NO TIME

A must for those

- Who while in service had been transferred to any Hindi speaking area
- Who wish to look for job opportunities in north

RAPIDEX COURSES Guarantee your success or a full return of Money if dissatisfied

प्रसिद्ध भविष्यवक्ता, प्रकाण्ड ज्योतिषी, हस्तरेखा विशेषज्ञ एव सिद्धहस्त तान्त्रिक-मान्त्रिक डा० नारायणदत्त श्रीमाली की अनमोल पुस्तके

पृष्ठ 348
मूल्य 21/-
डाकखर्च 4/-

वृहद् हस्तरेखा शास्त्र

आप खुद अपने हाथ की रेखाए पढ़कर अपना भविष्यफल जान सकते हैं। किसी पण्डित अथवा ज्योतिषी के पास जाने की आवश्यकता नही है। इस पुस्तक में पहली बार हस्तरेखा का प्रैक्टिकल ज्ञान चित्रों सहित समझाया गया है।

हस्तरेखा के 240 विभिन्न योगो का पहली बार प्रकाशन जैसे—आपके हाथ में धन सम्पति या गाग पुत्र योग विवाह योग अक्स्मात धन प्राप्ति योग विदेश यात्रा याग आदि हैं या नही? आपके हाथ की रेखाए क्या कहती हैं? कौन से व्यापार से आपको लाभ होगा? नौकरी मे तरक्की कब तक होगी? पत्नी कैसी मिलेगी? प्रेम में सफल होंगे या नही? विवाहित जीवन सुखी होगा कि नही कब होगा आदि। नेता बनेंगे या अभिनेता? लेखक बनेगें या प्रोफेसर? विदेश यात्रा पर कब जायेगे, मन की शान्ति एव कष्टों का कब अन्त है? इत्यादि सैंकड़ो प्रश्नों के उत्तर

पृष्ठ 266
मूल्य 21/-
डाकखर्च 4/-

प्रेक्टिकल हिप्नोटिज्म

• सम्मोहन क्षेत्र का अद्भुत प्रायोगिक प्रमाणिक ग्रथ जिसमें हिप्नोटिज्म के मूल सिद्धातों का सचित्र बेबाक प्रमाणिक विवरण है।

• ग्रथ मे भारतीय पाश्चात्य दोनो विद्याओ का अपूर्व सयोजन होने से पुस्तक प्रामाणिक एव सग्रहणीय हो सकी है।

• पुस्तक मे हिप्नोटिज्म को सरल सरस ढग से चित्रो द्वारा समझाया है जिससे साधारण पाठक भी एक अच्छा सम्मोहन विशेषज्ञ बन सकता है।

• पुस्तक मे हिप्नोटिज्म के प्रकार प्रयोग, शक्ति हिप्नोटिज्म के सिद्धात त्राटक, भावना इच्छा-शक्ति न्यास ध्यान सम्मोहन के तथ्य आदि पर पूर्ण प्रमाणिकता के साथ सचित्र विवरण है।

• रोग निवारण कष्ट दूर करने व जीवन में प्रतिदिन आने वाली बाधाओ समस्याओ व कठिनाइयों के निराकरण में इस पुस्तक का विवरण पूर्ण उपयोगी है।

पृष्ठ 380
मूल्य 24/-
डाकखर्च 4/-

मत्र रहस्य

मत्र-शक्ति के चमत्कारों का अभूतपूर्व ग्रथ

• मत्र मत्र का मूल स्वरूप मत्र की मूल ध्वनि व उसके सफल प्रयोगों पर एक प्रमाणिक सचित्र पस्तक।

• असख्य दुर्लभ मत्र व उसके प्रमाणिक प्रयोग जिसके माध्यम से साधक एक सफल मत्र शास्त्री एव ज्ञाता बन सकता है।

• जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए अद्भुत एव आश्चर्यजनक ग्रथ जिसके माध्यम से साधक स्वय के तथा लोगो के कष्टो को दूर करने मे समर्थ हो सकता है।

• तान्त्रिक मान्त्रिक एव अन्य सभी विद्याओं के प्रमाणिक मत्रों का अपूर्व सग्रह।

• मत्रों के मूल स्वरूप मत्र चैतन्य मत्र कीलन उत्कीलन मत्र ध्वनि मत्र प्रयोग मत्र विनियोग एव मत्रो के सफल प्रयोगों के लिए एक प्रमाणिक सचित्र ग्रन्थ।

पृष्ठ 192/
मूल्य 18/-
डाकखर्च 2/-

तान्त्रिक सिद्धिया

• तान्त्रिक क्रियाओं से सम्बन्धित समस्त गोपनीय रहस्यों का पहली बार रहस्योद्घाटन।

• दुर्लभ तान्त्रिक क्रियाओं का सरस सरल एवम् सचित्र विवरण जिससे सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकता है। मत्र अध्येताओं तान्त्रिको एव साधकों के लिए पथ प्रदर्शक पुस्तक जिसमें बगला मुखी साधना तारा साधना कर्ण पिशाचिनी साधना अष्टलक्ष्मी साधना सम्मोहन का प्रमाणिक वर्णन विवेचन।

• तन्त्र के क्षेत्र मे प्रेक्टिकल पस्तक। जिसमे तान्त्रिक सिद्धियो को प्राप्त करने के लिए प्रयोग मार्ग मे आने वाली बाधाए उनका निराकरण व सफलता प्राप्त करने के साधन बताए गए हैं।

कोई सी दो पुस्तकें एक साथ लेने पर डाक खर्च माफ।
चारों पुस्तकें का पूरा सैट लेने पर 84/- रु की बजाय 75/- रु में तथा डाक खर्च माफ।

पुस्तक महल खारी बावली दिल्ली 110006

नया शो रूम 10-B नेता जी सुभाष मार्ग, दरिया गज-1100002

आइये, मनपसन्द संगीत-वाद्य बजाना सीखें

प्रसिद्ध सगीताचार्य एव शिक्षक श्री रामावतार 'वीर' द्वारा लिखित

सचित्र एवम् सरलतम पद्धति पर आधारित अनूठे सगीत-कोर्स
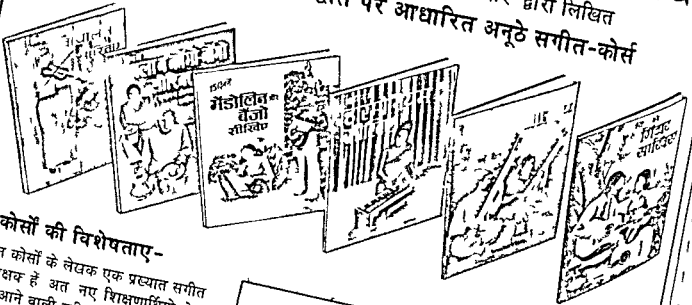
इन कोर्सों की विशेषताए-

1 इन कोर्सों के लेखक एक प्रख्यात सगीत शिक्षक हैं अत नए शिक्षणार्थियो के सामन आने वाली कठिनाइयो का उन्ह दीर्घकालीन अनुभव है और उन्ह ध्यान म रखकर ही ये कोर्स तैयार किए गए हैं।

2 समझ म न आन वाली अन्य सगीत पुस्तको स नितान्त अलग थलग य कोर्स एक ऐसी सरल पद्धति पर तैयार किए गए हे कि हर बात आसानी स अपन आप समझ आती जाए।

3 प्रत्येक कोर्स म—उस वाद्य क समस्त अगो, उन्हे पकडने तथा बजान का सही ढग सुर लय ताल व धुन निकालना तथा सरगम बाल राग रागनिया आदि बजाने की प्रैक्टिकल शिक्षा के साथ-साथ हर बात स्पष्ट चित्रो द्वारा समझाई गई है।

4 प्रत्येक कोर्स म कुछ अत्यन्त लाकप्रिय फिल्मी गानो की धुन बजान का प्रशिक्षण विशष रूप स और सरलतम ढग पर दिया गया है ताकि आप अपन प्रिय वाद्य पर उन्ह हू ब-हू बजाकर अपन मनोरजन क साथ महफिलो को भी रगीन बना

प्रत्येक का मूल्य 10/-
हारमोनियम 15/-
तबला व कोगो-बोगो 15/-
डाकखर्च 3/- प्रत्येक

15 दिन में

गिटार सीखिए
सितार सीखिए
हारमोनियम सीखिए
वायलिन सीखिए
तबला व कोगो-बोगो सीखिए
मडोलिन व बेजो सीखिए

सितार
गिटार
वायलिन
हारमोनियम
मेडोलिन व बेजो
तबला व कोगो-बोगो

युवा पीढी के चहेत वाद्य जिन्ह **बिना शिक्षक** के सरलता से सीखा जा सकता ह आर हमारे इन कोर्सो की मदद स आप कुछ ही दिनो मे फिल्मी व शास्त्रीय धुन निकालन लगेगे।

- अपना प्रिय वाद्य बजाकर जश्न और महफिलो मे छाकर वाहवाही लूट सकते हैं
- खाली समय मे उत्कृष्ट मनोरजन के लिए कोई भी वाद्य-सगीत सीखिए।

भारत की धर्म-परायण जनता के लिए पुस्तक महल की श्रद्धापूर्ण भेंट

अपने इष्ट देवी-देवताओं की महिमा जानिए

आज का मनुष्य सासारिक भोग-विलासो क्षणिक सुख-साधनो से ऊब चुका है। वह जान चुका है कि क्षणिक सुख से आत्मा को स्थायी रूप से शांति नही मिल सकती। यही कारण है कि आज ससार के लगभग सभी देशो के लोग सच्चे सुख की तलाश मे ईश्वर की उपासना, अध्यात्म,योग-साधना व प्राथनाओ की ओर झुक रहे है—
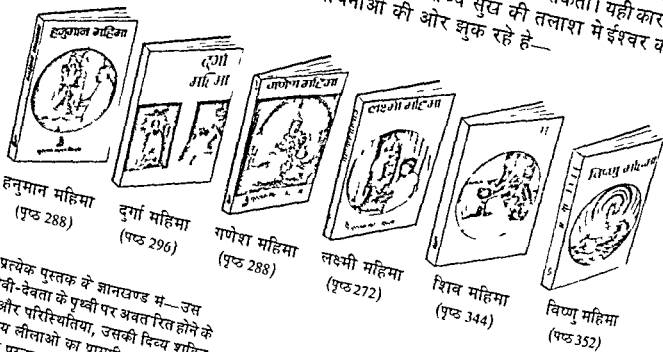
हनुमान महिमा (पृष्ठ 288)

दुर्गा महिमा (पृष्ठ 296)

गणेश महिमा (पृष्ठ 288)

लक्ष्मी महिमा (पृष्ठ 272)

शिव महिमा (पृष्ठ 344)

विष्णु महिमा (पृष्ठ 352)

१ प्रत्येक पुस्तक के ज्ञानखण्ड मे—उस देवी-देवता के पृथ्वी पर अवतरित होने के कारण और परिस्थितिया, उसकी दिव्य शक्ति और दिव्य लीलाओ का प्रामाणिक वर्णन है।

२ इन पुस्तको के भक्ति खण्ड मे—उनके महान भक्तो से सबंधित रोचक कथाए तथा उनकी भक्ति के चमत्कार वर्णित हैं जिन्हे पढ़कर आप गदगद् हो उठेगे।

३ उपासना खण्ड मे—शास्त्रसम्मत विधि-विधान से उनकी पूजा व उपासना करने का सरल ढग दिया गया है।

४ प्रत्येक पुस्तक के तीर्थ खण्ड मे—भारत तथा विश्व के अन्य देशो में स्थापित उनके प्रमुख मन्दिरो एव भव्य मूर्तियो से सम्बन्धित रोचक कथाए आदि हैं।

५ इनके अतिरिक्त—पूजन से सम्बन्धित मन्त्र तथा धूप, दीप नैवेद्य आरती आदि समर्पित करने के समय के मन्त्रादि भी दिए हैं।

- इस ग्रन्थ माला के अन्तर्गत हिन्दू धर्म के प्रमुख देवी देवताओ का जीवन-दर्शन सरल सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया है।
- ईश्वर के रूपो आविर्भाव जीवन दर्शन व्यापकता, प्रामाणिकता और उसकी अदृश्य शक्ति को जानने-समझने की जिज्ञासा प्राय मनुष्यो मे बनी रहती है। इन्ही जिज्ञासाओ का समाधान आपको इस ग्रन्थ माला मे मिलेगा।

प्रत्येक का मूल्य 12/ डाकखर्च 3/- पथक

प्रत्येक पुस्तक मन्दिरों तथा मूर्तियो के दुर्लभ चित्रो से सज्जित

किसी भी बुक स्टाल से खरीदें या वी पी पी द्वारा मगाने के लिये लिखें

गुजराती उडिया तेलुगु कन्नड मलयालम
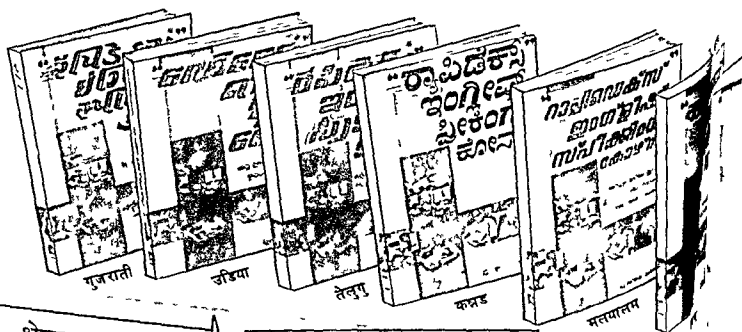
श्रेष्ठता का सबूत

रैपिडैक्स कोर्स' भारत भर के प्रसिद्ध समाचार पत्रों की राय में

रैपिडैक्स कोर्स ही एकमात्र ऐसा विस्तृत कोर्स है जो हर किसी को 60 दिन में अंग्रेजी बोलना व लिखना बिना किसी शिक्षक या स्कूल में गये सिखाने में सक्षम है। —नागपुर टाइम्स, नागपुर

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमे चुने हुए दैनिक उपयोग मे आने वाले शब्दों की उपयोगी सूची अर्थ सहित दी गई है।

प्रत्येक पाठ के अन्त में भाषा व व्याकरण सम्बन्धी कुछ आधारभूत बातें अलग से समझाने का प्रयास भी निस्सदेह प्रशंसनीय है। —युगान्तर, कलकत्ता

इसमें अंग्रेजी सिखाने की अभ्यास सामग्री इतने बढ़िया ढंग से दी गई है कि कान्वेंट स्कूलों में भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। —चिन्तामनी, मद्रास

वास्तव में यह एक बहुत ही उपयोगी कोर्स है। इसमें तमिल जानने वाले बगैर किसी परेशानी के ग्रेजुएट जैसी अंग्रेजी बोल सकते हैं। —सण्डे स्टैण्डर्ड, मद्रास

स्त्री पुरुष दोनों के लिए कद लम्बा करने का नया क्रांतिकारी सिद्वात

अपना कद बढ़ाइये

जो व्यक्ति लम्बा नही है वह जीवन का लुत्फ नहीं उठा पाता। लड़कियों की पसन्द लम्बा कद पुलिस मिलिट्री व बड़ी कम्पनियों मे प्राथमिकता भी लम्बे कद वालों को लड़की पसन्द करते समय भी लम्बा कद—अर्थात् ठिगने स्त्री पुरुष हर दौर में पीछे रह जाते हैं। अब भारत में पहली बार प्रस्तुत है असम्भव को सम्भव बनाने वाला—कद लम्बा करने का आजमाया हुआ वैज्ञानिक अनुसधान इसमें यूरोप और अमरीका में टेस्ट किया हुआ सचित्र कोर्स दिया गया है जिसकी मदद से केवल 15 मिनट प्रति दिन अभ्यास द्वारा कुछ ही हफ्तों में अपनी हाइट को 10 से० मी० तक निश्चित रूप से बढ़ा सकते हैं। यह पुस्तक हर उम्र के व्यक्ति के लिए एक वरदान है।

डिमाई साइज के 96 पृष्ठ

मूल्य **15/-**

डाकखर्च 3/-

मोटापा घटाइये

मोटापा भयकर बीमारियों की जड़ है, सैक्स-क्रीड़ा में बाधक है, सेहत के लिए अभिशाप है। केवल 15 मिनट नित्य का कोर्स लगातार 20 दिन तक करिए, आपको आश्चर्यजनक फर्क नज़र आएगा—आपका मोटापा कम हो जाएगा और आपका शरीर छरहरा व सुडौल हो जाएगा। अमरीका इगलैड जरमनी जापान आदि देशों में लाखों लोगो द्वारा आजमाए हुए सफल परीक्षण तथा योजनाबद्ध इस सचित्र कोर्स द्वारा अति शीघ्र अपना मोटापा घटाइए। साथ ही अपनी खान पान की आदतों में सुधार करके जि दगी भर चुस्त व तन्दुरुस्त रहिए। यह कोर्स आपके लिए एक सचित्र गाइड के समान है।
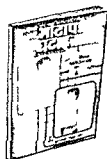
पृष्ठ 72

मूल्य **15/-**

जूडो कराटे

(जुजुत्सु एव बॉक्सिंग सहित)

हिन्दी में पहली बार प्रकाशित 300 से अधिक दांव पेचों का सचित्र कोर्स। इसकी मदद से आप अपने से चार गुना अधिक ताकतवर तथा चाकू, लाठी व भाला आदि के वार से अपना बचाव करके हमलावर को चुटकियो में धरा शायी कर सकते हैं। आप भी ये अद्भुत दाव पच सीखिए।

गुण्डों से अपना बचाव और बिना हथियार मारधाड की जापानी कलाए

डिमाई साइज के 128 पृष्ठ

सैकडों चित्र

मूल्य **15/-** • डाकखर्च 3/

डिजाइनर्स, ग्राफिक आर्टिस्ट, ड्राफ्ट्समेन, टाइपोग्राफर्स, चित्रकला-विद्यार्थियो, पेण्टर्स और लेटरिंग की आकर्षक विधिया सीखने के इच्छुक लोगों के लिए—

इंगलिश-हिन्दी माडर्न लैटरिंग

लेखक—ए० एच० हाशमी

85 अग्रेजी के तथा लगभग 100 हिन्दी के विभिन्न आकर्षक स्टायल्स

जरा पुस्तक की विशेषताओं पर नजर डालिए—

- लेटरिंग के काम आने वाले सभी उपकरणो का वर्णन तथा उनका सही उपयोग।
- अक्षरो की बनावट का वर्गीकरण तथा बेसिक बनावट, स्ट्रॉक्स लगाने के तरीके पेन स्टील तथा फ्लैट ब्रुश द्वारा लेटरिंग करना।
- अक्षराकन के मूल सिद्धात। सभी तरह के अग्रेजी हिंदी लैटरिंग करने की विधिया तथा सैकडा आकर्षक नमूने।
- हिन्दी अक्षरों को अग्रेजी स्टायल में लिखने की आकर्षक विधिया।
- अग्रेजी हिन्दी के मोनोग्राम तथा बोलते शब्दो के ढेर सारे नमूने।

विज्ञापन और प्रचार के लिए लुभावने लैटरिंग के कलात्मक डिजाइन बनाना सिखाने वाली एक अनुपम पुस्तक। सन् 1981-82 की नई-नई लैटरिंग के डिजाइन जो एडवरटाईजिंग एजेसीज तथा कर्मशियल आर्टिस्टो और पेण्टरो के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। एक ऐसा अनूठा कोर्स जिसमे लैटरिंग के मूल रहस्यो को अत्यन्त सरल सुबोध भाषा मे समझाया गया है जिसकी सहायता से आप शीघ्र ही सफलता के शिखर पर पहुच सकते हैं।

बड साइज के 172 पृष्ठ
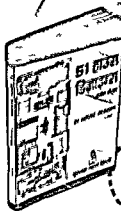
मूल्य **24/-** • डाकखर्च 3/-

कम खर्च में घर बनाएं व घर सजाएं
यदि आप नया मकान बनवाने जा रहे है या पुराने को ही नया निखार देना चाहते हे तो इन पुस्तको पर २०/- खर्च करके हजारों रुपये की बचत कर सकते है
लेखक अशोक गोयल (B Arch)
विभिन्न पत्र पत्रिकाओ के जाने माने लेखक एव मान्यता प्राप्त 'आर्किटेक्ट'
51 हाउस डिज़ाइन्स
सम्पूर्ण दोनो भाग 30/-
प्रत्येक का मूल्य 30/- डाकखर्च 4 00
नया मकान बनाने वालो के लिये शुभ सूचना
70 से 225 वर्ग मीटर तक के छोटे-बड़े विभिन्न साइजों के प्लाटों के लिये आकर्षक एव अनूठे नक्शा
प्रथम भाग 70 से 135 वर्ग मीटर
द्वितीय भाग 150 से 225 वर्ग मीटर
हर नक्शे के साथ डिजाइन सम्बधी पूर्ण विवरण
प्रत्येक नक्शा निम्न बातो को ध्यान में रखकर बनाया गया है
जगह का अधिक से अधिक सदुपयोग हो
सभी कमरे हवादार हों और उनमें अधिकतम कुदरती रोशनी प्राप्त हो
ड्राइंग डाइनिंग बेड व बाथरूम एव रसोईघर का उपयोगिता की दृष्टि से सही तालमेल हो
खिड़की दरवाज़ों व अल्मारियों की सही स्थिति क्या हो ताकि कमरों में स्थान नष्ट न हो
नक्शा बिल्डिंग बाई-लॉज(Bye Laws) के अनुसार हो लेकिन बनने के बाद कुछ रद्दो बदल करके उसे अधिक उपयोगी बनाया जा सके
ओपन एरिया में Projection आदि देकर कहा २ पर अल्मारिया दी जा सकती हैं या कवर्ड एरिया बनाया जा सकता है।
इसके अतिरिक्त
गृह सज्जा योजनाएं, जमीन-जायदाद की खरीद फरोख्त बिल्डिंग बाई-लाज
दिये गये नक्शों में क्या २ फेर बदल करके अन्यान्य सैकड़ो नक्शे सोचे जा सकते हैं
होम डेकोरेशन गाइड
मूल्य 20/-
डाकखर्च 4/-
डबल क्राउन साइज पृष्ठ सख्या 152
इस किताब की मदद से छोटी छोटी जगहा को भी अच्छी तरह सजा कर दर्शनीय बनाया जा सकता है। —नवभारत टाइम्स
इस पुस्तक मे गृह सज्जा सबधी प्राय सभी विषयो को विस्तारपूर्वक और चित्रो सहित समझाया गया है। —धर्मयुग
विभिन्न विषयो को विस्तार से सचित्र समझाने का प्रयास किया है। —सूर्या इण्डिया
A praise worthy effort by Ashok Goyal —Patriot
The book should be very useful to layman to understand the importance of interiors in the house —Architect s Trade Journal
इसमे घर के सभी हिस्सो के बारे मे जानकारी दी गई है और बहुत हद तक व्यावहारिक है। —गृह शोभा
लेखक चूकि स्वय वास्तुकार है अत उन्होने अपने विषय को तकनीकी दक्षता से प्रस्तुत किया है। —राष्ट्रदूत
आर्किटेक्ट व इटीरियर डिज़ाइनर अशोक गोयल की पुस्तक सही मार्गदर्शन करती है। —नई दुनिया
पुस्तक न केवल उपयोगी व जानकारीपूर्ण है बल्कि लेखक की प्रस्तुतीकरण की शैली काफी प्रभावशाली है। —मित्र
हम समझते है नया मकान बनवाने वालो या बनवाने की इच्छा रखने वालो को एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। —दैनिक हिन्दुस्तान
भारतीय घरो को ध्यान में रखते हुए पुस्तक के रूप में सारी बातो को बड़ तरतीब से बताने का यह पहला प्रयास है। —ब्लिट्ज
पुस्तक महल दिल्ली से प्रकाशित श्री अशोक गोयल द्वारा लिखित पुस्तक होम डेकोरेशन गाइड (गृहसज्जा) पर एक उपयोगी पुस्तक है। —मनोरमा
A very welcome and timely book —The Indian Architect
पुस्तक महल खारी बावली दिल्ली 110006